TEXT PROBLEM
WITHIN THE
BOOK ONLY

TEXT FLY
WITHIN THE
BOOK ONLY

UNIVERSAL LIBRARY
OU_182522
UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. 1831M19 GA Accession No. GH.1638

Author मुन्शी, क॰ मा॰

Title अभिशाप ।

This book should be returned on or before the date last marked below.

अभिशाप

[समाज का वास्तविक नग्न चित्रण]

लेखक—
गुजराती साहित्य के सर्वश्रेष्ठ
उपन्यासकार
श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी

प्रकाशक—
श्रीनाथ ब्रदर्स
पुस्तक प्रकाशक व विक्रेता
बनारस

प्रथम संस्करण

मूल्य सजिल्द पाँच रुपया

प्रकाशक—
श्रीनाथ ब्रदर्स
सस्ती साहित्य पुस्तक माला कार्यालय,
बनारस ।

अवश्य पढ़ें

विद्रोही (का० उपन्यास)	२)
गुरु-शिष्य-संवाद	३)
शुभदा (शरत् बाबू)	३॥)
सविता ,,	५)
विप्रदास ,,	३)
आहुति (कुशवाहा कांत)	३॥)
निर्मोही ,,	३॥)
घरकी लाज ,,	३॥)
गोरा (टैगोर)	४)

मुद्रक—
बाबू शिवनाथ प्रसाद,
गोपाल प्रेस, जालपादेवी रोड, बनारस ।

पूर्वाश्रम

प्रातःकाल के समय पृथ्वी आनन्द में हिलोरें ले रही थी। सूर्योदय के पूर्व का मंद शीतल पवन बहने लगा और सृष्टि की उत्पत्ति के समय के अनास्वादित आह्लाद के बचे खुचे रस का अनुभव सबको कराने लगा। समस्त रात्रि निराशा, दुःख अथवा उसके पश्चात् सुख में भी जिनकी आँखें पल मात्र के लिए भी नहीं झपी थीं उन स्त्री-पुरुषों को निद्रावश करने लगा। पवन अपनी लहरियों में प्रणयी के प्रथम चुम्बन की मिठास, लज्जा धृष्टता और आह्लाद का समिश्रण कर लोगों को आनन्द के नशा में सोना सिखा रहा था।

समीरराज की कृपा एक आठ वर्ष की बालिका पर पड़ी। वह एक छोटे किन्तु साफ सुथरे घर में सोई हुई थी। उसके बगल में उसके माँ बाप को चारपाई थी किन्तु वे खाली थीं।

इस कन्या का जन्म कहाँ हुआ और कहाँ माता-पिता के लाड़प्यार में बड़ी हुई यह बताने की आवश्यकता नहीं।

उसका पिता सरकारी नौकर था, उसकी माँ उनकी सेवा करती हुई आनन्द पूर्वक अपना जीवन व्यतीत कर रही थी। बालक का अभाव ही उन्हें केवल खल रहा था। पश्चात् उसका जन्म हुआ मानो उनके लिए पृथ्वी पर ही स्वर्ग की सृष्टि हो गई।

वह उनके आँख की पुतली थी, उसे हँसती-खेलती हुई देखने में ही उनके जीवन का साफल्य था। आठ वर्ष में उन्होंने उसे विवाह दिया, गणपति की पूजा हुई, देवी-देवताओं और

ऋषियों का आवाहन हुआ, शुभ मुहूर्त दिखाया गया और उसका सिंदूर बना रहे इसके लिए इह लोक एवं परलोक की समस्त शक्तियों की साक्षी ली गई। उसके माँ-बाप की छाती हाथ भर ऊँची हो गई।

उसके हृदय में भी कारण समझे बिना ही हर्ष का उद्रेक हुआ। लोग आते-जाते थे, मंगल गायन-वादन हो रहा था, जिसे देखकर उसकी सखी सहेलियाँ जल रही थीं। ब्राह्मणों की वेदध्वनि से प्रतिध्वनित धूएँ से भरे हुए आँगन में अग्नि के पास एक ग्यारह वर्ष के बालक को उसका हाथ पकड़ा दिया गया उसका बेड़ा पार हो गया, यह सभी ने अपने मन में समझ लिया। आनन्द की ध्वनि चारो ओर गूँज उठी, बारात वापस गई, गाँव में वाहवाही हो गई।

जिस प्रकार अनेक बालिकाओं का विवाह होता है वैसे ही उसका भी हुआ और ऐसे विवाह का जैसा परिणाम होता है हुआ भी वैसा ही। जिन माता-पिता ने मोह अथवा धर्म-भीरुता वश इन निर्दोष बालक-बालिकाका सम्बन्ध किया उन्हें ज्ञान नहीं रहा, समाज के स्तम्भों को जिन्होंने यह सम्बन्ध कराकर इसकी शोभा का आनन्द लूटा, भान नहीं रहा, पैसे के लिए विद्याविहीन विप्रों ने जिन्होंने ग्रह-नक्षत्र का योग लाकर, दैवी कृपा का विश्वास दिलाकर मुहूर्त निकाला उन्हें कुछ भी ज्ञान नहीं रहा, एवं गली कूचे में नंग-धड़ंग खेलनेवाले बालकों को जिन्होंने ऊँघ में आँख मलकाते हुए, हँसते कूदते हुए एक दूसरे का हाथ पकड़ा उन्हें भी ज्ञान नहीं रहा। किसी ने अपनी जिम्मेदारी नहीं समझी, और न किसी ने इसपर कुछ विचार ही किया; यह अज्ञानता का महोत्सव यों ही संपूर्ण हो गया ऐसे महोत्सव ही हिन्दुओं के सांसारिक जीवन के मुख्य स्तम्भ हैं। इस कन्या

के जीवन की नींव इसी प्रकार बाँधी गई।

कन्या ऊँघ में समीर-प्रणयी के चुम्बन से हँसी। उसके छोटे गठे हुए मुँह पर ऐसा मालूम हुआ मानों बिजली चमकी हो। उसने करवट बदली, उसके हाथ की चूड़ियाँ खनखना उठीं, एक महीने पहले उसका विवाह हुआ था, बुद्धिमान माँ-बाप ने विवाह के धूमधड़क्के में कोई बात उठा नहीं रखी थी। कन्या के कान में अभी भी बाजे-गाजे की आवाज गूँज रही थी, उसका हास्य भी वैसा ही बना हुआ था, उसके नन्हें से मस्तिष्क में विवाह संबंधी कितनी आशायें अठखेलियाँ कर रही थीं जिनकी पूर्ति के लिए स्वप्न में वह मंसूबे बाँध रही होगी।

महामाया सृष्टि का सौंदर्य बढ़ाने के लिए—जिसमें देव और देवियों की अपूर्व जोड़ी घूमे ऐसे विचार से, प्रायः पुष्प विखेरती है। इन पुष्पों का कर्तव्य पराग प्रसारने का होता है और इससे भी बड़ा कर्तव्य ऐसे अनेक पुष्पों का बीज उपजाने का होता है। यह कन्या ऐसे पुष्प की एक कली मालूम पड़ रही थी। खिलने पर इस जगत की किन-किन आशाओं की पूर्ति करेगी यही स्वप्न में शायद वह देख रही थी।

सहसा पास ही से एक चीखने की आवाज सुनाई दी, किसी के सिर और छाती पीटने की एवं किसी पुरुष के धाड़ मार कर रोने की आवाज आई। निर्दोष कन्या का हास्य ज्यों का त्यों बना रहा।

एक स्त्री दौड़ती हुई ऊपर आकर कन्या की ओर दौड़ी; क्रूरता से झकझोर कर उसे जगाने लगी और उसके सिर एवं माथे पर चुंबनों की वर्षा करने लगी, स्त्री की आँखों में से अश्रु-धारा बह रही थी। सिर पीटने से हाथ की उँगलियों के चिह्न शिर पर स्पष्ट पड़े हुए दिखाई दे रहे थे।

कन्या बौखला कर उठ बैठी।

बेटा! बेटा! माँ के छाती फाड़ने वाले आक्रंदन से कमरा गूंज उठा।

क्या है माँ? तुम रो क्यों रही हो?—आँख मसलते हुए लड़की ने पूछा।

हाय बेटा! क्या कहूँ? तेरा और मेरा भाग्य फूट गया! कहकर उसने पुनः अपनी छाती और माथा पीटना प्रारम्भ किया। फिर पुत्री को खींच कर छाती से चिपका लिया। वह तो हक्का-बक्का सी हो गई; बेचारी के विस्मय का ठिकाना नहीं रहा।

कृष्णा! चल, अब जल्दी कर। इस प्यार से अब क्या होना जाना है? एक प्रौढ़ा स्त्री ने आकर कहा। वह विधवा थी और अनुभवी सरदार जैसे शान्ति से रण में प्रवेश करता है वैसे ही उसने भी प्रवेश करते हुए कहा—मणि, चल उठ! जल्दी कर!

बड़ी मौसी, ओ बड़ी मौसी बात क्या है? मणि ने पूछा।

जवाब में मौसी ने नजदीक आकर मणि का हाथ झकझोर कर उसे खड़ा किया और कहा—इससे तुझे मतलब? कृष्णा चल, देख लोग अब नीचे इकट्ठा होने लगे।

मणि बड़े ही पशोपेश में पड़ी। ये सब लोग क्या पागल हो गये हैं? इन सब के अत्याचार पर रोऊँ अथवा इनके पागल-पन पर हसूँ? इन लोगों में बड़ी मौसी उसे कुछ बुद्धिमान् मालूम हुई। वह रोये-धोये बिना कैसा सदैव के समान बोल-चाल रही थी।

तीनों व्यक्ति नीचे उतर आये। मणि ने नीचे दस-बारह स्त्रियों को एकत्र बैठी हुई देखा जो उसे देखते ही रोने लगीं। पश्चात् सब खड़ी होकर छाती पीटने लगीं। कभी-कभी

जब स्त्रियाँ अपनी छाती पीटती थीं तब मणि भी खिड़की में अथवा दरवाजे पर खड़ी होकर उनका छाती पीटना सुनती थी और उन्हीं के ताल में ताल-स्वर मिला कर वह भी खड़ी-खड़ी धीरे-धीरे छाती पीटना सीखने का अभ्यास करती थी, इससे उसे तो इन लोगों का छाती पीटना देखकर आनन्द आ रहा था। लेकिन एक समय जब उसकी माँ ने उसे छाती पीटते हुए देखा था तो उसे बेलनों से खूब पीटा था अतः उसी डर से उसने अपनी माँ की ओर कनखी से देखा। वह तो अपनी छाती पीटने में व्यस्त थी इससे मणि को भी साहस हुआ। वह भी छाती पीटने लगी, इसमें उसे आनन्द आ रहा था। उसने सब को बारी-बारी से एक नजर देखा किन्तु जिस छटा से बड़ी मौसी छाती पीट रही थीं वह किसी में भी नहीं थी। इतनी अधिक उम्रमें उनका इस प्रकार छाती पीटना देखने ही योग्य था।

पश्चात् सब स्त्रियाँ बैठकर एक राग से रोने लगीं। बड़ी मौसी ने फिर तुरत कहा—कृष्णा! गहना कपड़ा ले आ न।

मणि पुनः विचार में पड़ी, ऐसे रोने के समय गहना! लेकिन कृष्णा तुरत गहना-कपड़ा ले आई और सबों ने मिलकर मणि को गहना और बढ़िया कपड़ा पहनाया। मणि अपने मनमें बड़ी प्रसन्न हुई। थोड़े ही दिन पहले उसने विवाह के समय इन्हें पहना था।

"किन्तु माँ! यह कड़ा तो मुझे नहीं अच्छा लगता, दूसरा ला न।" मणि बिना कहे न रह सकी।

"चुप बैठ न राँड़" यह कहते हुए बड़ी मौसी ने उसकी कोंख में चिकोटी काट दी।

मणि बेचारी चुप हो गई। "देख कृष्णा! टीका लगाना मत भूलना।" बड़ी मौसी ने कहा।

"अब कौन लगाता है?" पड़ोस की एक स्त्री ने कहा।

"न लगाता हो लेकिन मेरे यहाँ तो जैसी पहले से प्रथा चली आई है वैसा ही होगा।" कहकर बड़ी मौसी ने सिंदूर में उँगली बोर कर मणि के कपाल में टीका लगा दिया। इस प्रकार गहना-कपड़ा आदि से सजाकर दो औरतों ने उसका हाथ पकड़ कर आगे किया और सब रोते कलपते हुए नदी के किनारे चलीं। अनुभवी नारियों का रुदन ऐसा मालूम पड़ रहा था मानो वह किसी संगीतशाला में कठिन अभ्यास से सीखा गया हो न तो उसमें शोक-संतप्तता थी और न हृदय को विदीर्ण करने-वाली करुणा ही, केवल उसकी कला ही कर्णगत होरही थी।

दोनों हाथ पकड़े हुए ले जाकर मणिको नदी में नहला दिया गया, तत्पश्चात् उसकी चूड़ियाँ फोड़ डाली गईं।

"बड़ी मौसी! मौसी!! यह क्या कर रही हो?" मणि अब गहने को भी जाता हुआ देख कर फुक्का फाड़कर रो पड़ी और लड़ने की तैयारी कर ही रही थी कि बड़ी मौसी ने स्त्रियों के रोने का लाभ उठाकर धीरे से उसके कान में कहा—राँड़! खबरदार, देख अगर जरा भी चीं-चपड़ किया तो ठीक नहीं होगा। जो मैं कहती हूँ चुपचाप करती जा।

"लेकिन मेरे गहने क्यों—"

"अभागिनी! तेरा खसम मर गया इस—" धीमी लेकिन भयङ्कर आवाज में मौसी ने जवाब दिया।

"खसम" शब्द को सुनकर मणि की दृष्टि के सामने एक दस ग्यारह वर्ष का बालक नाच गया जो थोड़े ही दिन पहले जामा-जोड़ा पगड़ी पहने हुए घोड़े पर सवार उसके घर आया था जिसे उसने होमाग्नि से निकलनेवाले धूएँ में काजल से काले किये हुए नेत्रों से देखा था। इसके बाद वह उसके साथ पालकी

में बैठकर बाजा-गाजा के साथ गई थी। वही उसे याद आया—

"किन्तु इसमें मेरा क्या...?" मणि ने पूछा।

पर बड़ी मौसी को जवाब देने की फुरसत नहीं थी। मानो एडडमास्टरने अपनी छड़ी हिलाकर नया गायन प्रारम्भकरा दिया हो उसी प्रकार सभी औरतें गाने लगीं। अच्छी तरह गा न सकने के कारण बहुत सी विधवाओं के गले में से भाँय भाँय की आवाज निकल रही.थी। छाती पर ताल भी एक साथ पड़ने लगा। मणि अपनी बड़ी मौसी को ही ध्यान से देख रही थी और स्तब्ध होकर उसकी आवाज सुन रही थी। वह भी धीरे-धीरे छाती पर हाथ मारने लगी। भूल में एक बार ताल चूक भी गया। उसे गरभा गाने की बड़ी आदत थी।

थक जाने पर सब घर आई। मणि को आनन्द तो अत्यधिक आया अगर दुःख था तो केवल अपने गहना और चूड़ी जाने का।

२

कुछ वर्ष बीतने के पश्चात् वृद्ध पिताने अपना स्वमान भूलकर विधवा पुत्री को उसके ससुराल पहुँचा दिया।

किन्तु बाघ एवं भालू से भरे हुए भयानक वन में अकेली निराधार बाला को आश्रय मिल गया ऐसा कहा जा सकता है लेकिन उसे इतना भी आश्रय नहीं मिला। जानवर को भी दया है, पेट भरा होनेपर वह अपना घातक स्वभाव भले ही भूल जाय, एक छलांग में, अधिक विचार किये बिना दुःख का अंत भी वह शीघ्र ही कर दे किन्तु जिन जानवरों के पींजड़े में वह बन्द की गई थी उनमें दया न थी, भूलने की आदत न थी इसके विपरीत अच्छी तरह सोच-विचार कर निश्चल घातकपन से रुलाने की उनमें अद्भुत शक्ति थी। शब्द से, मौन से, नाक

सिकोड़ कर, आँख के इशारे से, हाथ मटका कर अथवा निरादर से, जिस प्रकार भी आघात हो सके, प्राणी सहम उठे, वैसी सभी प्रकार की आजमाइश उस पर होने लगी। ऐसा पींजड़ा प्रभु ने केवल उसी के लिये नहीं गढ़ा था, हिन्दुओं के घर में जहाँ विधवा बहू हैं उन सभी के लिए ऐसा ही पींजड़ा है। कोई पींजड़ा सोने का मढ़ा होता है, किसी में घातक अच्छे बुरे दोनों होते हैं, किसी में निर्दोष बाला को कुछ आराम मिलता है किन्तु पींजड़े की बनावट में कोई अन्तर नहीं होता।

इस पर खूबी तो यह है कि घातक समझते हैं कि उनके दुःख का अन्त नहीं है जिसका कारण वह बाला है। वे खाते हैं और वह बाला भूखी रहती है, वे सब प्रकार के आनन्द लूटते हैं और वह मजदूरी करती है, वे सोते हैं तब वह दाल दलती है, वे एक दूसरे के स्नेह में पागल हो जाते हैं उस समय वह निराश्रय अकेली बैठी हाय हाय करती है; इस पर भी वे कहते हैं कि वही उनके दुःख का कारण है और समझते हैं कि उसका मुँह देखने से अपशकुन होता है।

मुँह अँधियारे उठकर वह परिवार भर के लिए गेहूँ पीसती, अकेली कुएँ पर कपड़ा धोने के लिए जाती। कपड़ा धोकर पानी लाती। दिन निकलते ही गाय की सानी-पानी करती और उसे दुहती। दुहकर रसोई की सामग्री तैयार करने के लिए जाती और भोजन बनाने के बाद गोबर पाथने चली जाती। गोबर पाथकर दोपहर को भूखी प्यासी वापस आती उस समय सब लोगों का जूठन जो थोड़ा बहुत ठंढा उसके लिए ढँका रहता उसे खाती।

बासन माँजना भी उसी का काम था, पश्चात् पुरुषों का कपड़ा धोने का काम पूरा होते होते सन्ध्या हो जाती, उससे

छुट्टी पाकर दीपक जलाकर बिछौना बिछाने चढ़ जाती। उसके पश्चात् घड़ी आध घड़ी जरा पैर सीधा करती कि दूसरी स्त्रियों के भोजन कर लेने के पश्चात् स्वयं भोजन करती और पुनः बर्तन माँजती।

बर्तन माँजकर, दरवाजा बन्दकर, दीपक बुझाकर, लकड़ी की कोठरी के सामने चटाई बिछाकर सो रहती। इस समय तक आधी रात बीत जाया करती कभी कभी सबेरा होने की नौबत आ जाती।

बिना किसी रद्दोबदल के निरन्तर उसके दिन इसी प्रकार बीतते। दूसरे सब काम करने का ढोंग करते, हँसी-मज़ाक करते, गप्प लड़ाते किन्तु एकदूसरे से कहते कि वह आलस में समस्त दिन बिताती है। वह चौका बर्तनकरने वाली मजदूरिन, ग्वालिन एवं मिश्राणी तीनों का काम करती। घर की कुतिया के समान भोजन करती, फटा-पुराना कपड़ा पहनती इसपर भी वह आलसी है, पेटू है, कर्कशा है निम्न श्रेणी के माँ बाप से उत्पन्न है, कम-जात है, ऐसे ऐसे कटुवचन वह हँसते हुए सुना करती। एक पैसा किसी को उस पर व्यय नहीं करना पड़ता। इस पर सास को संसार में यश मिलता कि वह एक निराधार विधवा बहू का पालन-पोषण तथा जतन कर रही है।

(३)

अत्यन्त रूपवती किन्तु म्लान और फीके बदन की एक युवती काला कपड़ा पहने हुए अकेली बैठी है। उसके अंग पर एक भी गहना नहीं है। मुहल्ले में सन्नाटा छाया हुआ है। विवा-होपलक्ष में होने वाली जेवनार में सब लोग जीमने चले गये थे, मुहल्ले भर में केवल यही एक युवती ऐसी थी जो जाने योग्य

नहीं समझी गई। उसका रूप, उसकी मोहक आँखें, उसके ललित एवं भरे हुए अंग से मालूम होता था कि वह पूर्ण युवती है।

हथेली पर सर रखे हुए वह रो रही थी, आँसू के बूँद झर रहे थे। क्या कोई उसका पोंछने वाला नहीं था? कहाँ से हो? प्रकृति ने उसे आनन्द-भवन-स्वरूप रचा था किन्तु मनुष्यों ने उसे नरक की अधिकारिणी बना दिया है। कारण वे बनाने वाले भी जानते नहीं थे।

वह रोती रही, इतनेमें दूर किसीके पैरकी आवाज सुनाई दी। एक पुरुष आया और युवतीको रोता हुआ देखकर खड़ा होगया।

"मणि! तू रो क्यों रही है?"

युवती चौंकी, उसने सिर उठाकर ऊपर देखा, आँसू पोंछने लगी।

"कुछ नहीं भाई।"

"सबलोग नेवते में गये हैं। मैं भी परजात की बारात में गया था अब कपड़ा बदलकर जा रहा हूँ। किन्तु तू रोती क्यों है?" पुरुष की आवाज दया और खिन्नता पूर्ण थी।

मणि ने कुछ उत्तर नहीं दिया।

"दिल में दुःख क्यों न आवे? खैर, साहस रख, साहस।"

युवती की आँखों में जहर उतर आया, उसने रोष से अपना सिर ऊँचा किया। 'परोपदेश कुशल बहुतेरे' दूसरे को उपदेश देने सबको आता है किन्तु स्वयं कोई साहस नहीं करता।"

इतना कहते ही उसकी आँखों के सामने अन्धेरा छा गया और खंभे का सहारा लेकर वह बैठ गई। पुरुष नजदीक आया। मणि के बैठने की छटा पर वह लट्टू हो गया।

"क्यों, क्या हुआ?"

"कुछ नहीं, आज चार दिन से उपवास कर रही हूँ, इसी से ऐसा हो गया।"

"उपवास! क्यों?"

"भाई, मेरी पीड़ा तुम क्या समझ सकते हो ? तुम सबलोग बिवाह करते हो और हम अबला भट्ठी में जलती हैं। हमारा तो इसीलिए जन्म ही हुआ है। हमारे भी क्या हृदय है ? इतना उपवास न करूँ तो संसार में हमारा जन्म लेना ही व्यर्थ है !" रोष आ जाने से युवती ने कहा।

"जरा धीरे बोल ! कहीं पीछे कोई सुनता न हो !" कहते हुए उसके सुन्दर हाथ की ओर वह पुरुष देखने लगा।

"किसी तरह मर भी तो नहीं जाती कि इस नरक की पीड़ा से छुट्टी मिले।"

"ऐसा क्यों कहती हो ? कुछ खा ले नहीं तो बीमार हो जायगी। जा उठ ! यदि तेरे घर में कुछ न हो तो अपने यहाँ से ला दूँ। बोल कुछ दूँ ?"

"नहीं जी नहीं ! जाइये, आपको नेवते में जाने की देर होती होगी।"

"कुछ नहीं, तू पहले कुछ खाले तो मैं जाऊँ—" किन्तु मणि की आँखों के आगे फिर अन्धेरा छा गया, उसने फिर खम्भे का सहारा लिया और कुछ देर तक वह चुप बैठी रही।

"मणि, कैसी तबियत है ?" कहकर पुरुष ने उसके हाथ पर अपना हाथ रखा।

उसके हाथ के स्पर्श से युवती चौंककर खड़ी हो गई, उसके मुँह पर का फीकापन जाता रहा। उसने अपना हाथ खींच लिया।

स्त्री के इस प्रकार चौंकने का कारण पुरुष समझ गया और वह थोड़ा हँसा। उसकी आँखों में एक भिन्न प्रकार का ही नशा था।

"घबड़ा नहीं मणि ! अभी तू बालक है इसलिए ऐसे ऐसे विचार तेरे मन में उदय होते हैं। आदमी यदि मन में सुख रखे तो दुःख कभी उसे सता ही नहीं सकता, समझी !"

दोनों होठ पर होठ दबाकर, अचिन्त्य विचारों को अपने मन से दूर करने के लिए मणि वहाँ से उठकर भीतर चली गई।

पुरुष बहुत देर तक चुपचाप दरवाजे की ओर देखता खड़ा रहा। उसके मन में क्या क्या विचार उदय हुए। थोड़ी देर बाद एक ठंढी साँस लेकर वह अपने घर चला गया किन्तु बहुत समय तक उसके मस्तिष्क से मणि की छवि दूर नहीं हुई।

इन दो हृदयों में अचिन्त्य आकर्षण हुआ। आकर्षण मैत्री का प्रथम चरण है।

पाप से पतन। जो मनुष्य निश्चलता से अपने स्वास्थ्य की रक्षा करता है वह योगी है, जिसे स्वास्थ्य रक्षा में कठिनता पड़े, कुछ गिरे और पीछे पुनः खड़ा हो जाय वह सदाचारी है। यह स्थिति-स्थापकता यदि संचित न रखी जा सके तो अनीति का प्रारम्भ होता है। यह मार्ग बड़ा ढालू होता है, जरा सा पैर फिसला कि मनुष्य गिरा और अन्त में नीचे पहुँचा। मणि रोई, पुरुष का हृदय दया से भरा, दोनों गिरे।

मनुष्य चाहे कितने ही कृत्रिम नियम बनाए किन्तु मनुष्य-स्वभाव की महाशक्तियों के सामने वह पलभर भी टिक नहीं सकता। हम बाँधको बाँध सकते हैं और ऐसा करके नदीका प्रवाह रोक सकते हैं किन्तु क्या उसके बीच में तनकर खड़े रह सकते हैं? ऐसा करने पर हम अवश्य फिसल कर गिरेंगे। मनुष्यत्व का प्रवाह हो अथवा नदी का, दोनों का अन्तिम फल समान ही होता है। भगवान महादेव यथासाध्य प्रयत्न करके जटा विस्तार करके गंगा की प्रबल धारा को धारण कर सके किन्तु क्या वे उसे अपने मस्तक पर रोक कर रख सके?

इसी शक्ति ने दोनों को गिराया, यहाँ तक कि धरातल पर आकर ही उन्हें शरण मिली। अन्त में पतन पूरा हुआ।

प्रथम खण्ड

१

अतिथि

बी० बी० एण्ड सी० आई० रेलवे के......ग्राम का स्टेशन अन्य स्टेशनों से छोटा है। इस स्टेशन पर केवल एक झोपड़ी मात्र है। फ्लैग स्टेशन (Flag station) होने से केवल स्टेशन मास्टर और चपरासी रहते हैं। केवल एक गाड़ी आती और एक ही जाती थी। सच तो यह है कि इस स्टेशन का उपयोग रूई के मौसिम में ही होता था। दूसरे महीनों में शायद ही कोई आता हो।

किन्तु दो गाँव के फासले पर मीठाकुआँ नामक गाँव का जोरा भगत प्रतिदिन संध्या समय स्टेशन पर आये बिना नहीं रहता था। खेत से लौटते समय अथवा घर से ही अपने पोता-पोती को लेकर आता और रेलगाड़ी के चले जाने के पश्चात् अपनी गाड़ी में बैठा हुआ भजन गाता लौट जाता।

जोरा भगत अपने जमाने का आभूषण था। अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार होने के पूर्व का भगत था। किसानोद्धारक कानून 'डेक्कन एग्रिकलचरिष्ट रिलीफ एक्ट' पास होने के पहले की नीति की शिक्षा प्राप्त होने से ईमानदार,सच्चा, कर्तव्यपरायण और बात का धनी किसान था। उच्च कुल का, पैसे से सुखी और

मन का साफ होने से अमलदारों के त्रास से निडर रहता था। उसकी धाक सब पर जमी हुई थी और गाँव के सबलोग उसे पिता तुल्य मानते भी थे।

अब जमाना नया, सुधार और शिक्षा का है। किसानों के लिए उपरोक्त किसी गुण की आवश्यकता नहीं है। इस समय तो जोरा भगत जैसे रत्न ढूँढ़ने से भी कहीं नहीं मिल सकते।

एक दिन संध्या समय जोरा भगत पाँच बालकों को लेकर स्टेशन पर आया। सिगनलर को राम-राम करके गाड़ी की बाट जोहता हुआ खड़ा हो गया। रेलगाड़ी आकर खड़ी हुई। प्रति दिन स्टेशन पर जोरा पटेल को देखने से गार्ड ने उसे नमस्कार किया।

जोरा पटेल ने गाड़ी की ओर देखा, उसमें से कोई उतरता हुआ उसे दिखाई नहीं दिया तो उसने गार्ड से कहा—सीटी दीजिये साहब !

"देखो, वह कोई उतर रहा है" यह कहकर गार्ड ने जनाने डब्बे की ओर हाथ से संकेत किया। दरवाजा खुला और उसमें से एक स्त्री हाँफती हुई नीचे उतरी।

टिकट माँगते हुए गार्ड ने हाथ फैलाया। स्त्री घबड़ाहट और क्षोभ से काँप रही थी, ऐसा मालूम हो रहा था कि अब गिरना ही चाहती है। बड़ी कठिनता से काँपते हुए हाथ से टिकट निकालकर गार्ड के हाथ पर रखा।

टिकट देखकर गार्ड चौंक उठा, बोला—बहन ! यह टिकट तो अहमदाबाद का है और यह तो......गाँव है।

"मुझे मालूम है" स्त्री की आवाज घबड़ाई हुई किन्तु मधुर थी। जोरा पटेल को अचम्भा हुआ। आसपास के गाँवों की

प्रायः सभी स्त्रियोंको वह जानता था, यह इधर के किसी गाँव की नहीं मालूम पड़ती थी।

गार्ड ने सीटी दी और रेलगाड़ी चल पड़ी।

आगन्तुक स्त्री जल्दी से आगे बढ़ी पर आह भरकर पास ही में पड़े हुए एक पत्थर पर बैठ गई। उसने अपने मुँह पर से कपड़ा हटा दिया जिससे उसका सुन्दर सफेद चेहरा बाहर निकल आया। उसपर असह्य वेदना के चिह्न स्पष्ट दिखाई दे रहे थे। जोरा भगतने उसके पास आकर धीमे स्वरमें पूछा—बहन! तुम कौन हो? कहाँ जाओगी?

स्त्री के मुँह से कोई जवाब नहीं निकला। मुँह से फेंचकुर बहने लगा, आँख की पुतलियाँ घूमने लगीं, वह वेदना से चिल्लाने लगी। बड़े परिश्रम से जी कड़ा करके बोली—मेरे पेट में दर्द हो रहा है।

भगत ने ध्यानपूर्वक स्त्री को देखा और वह समझ गया कि वह गर्भवती है। उसने पूछा—जाना किसके यहाँ है?

दुःख से आँख फाड़ते हुए स्त्री ने जवाब दिया—'कहीं नहीं' और पश्चात् अकेलापन जतानेके लिए अपनी एक उँगली दिखाया, एवं उसका आधार केवल परमेश्वर है यह बताते हुए आकाशकी ओर देखा। भगतजी सब समझ गये।

"सिगनलर, ओ सिगनलर" भगतजीने जोर से आवाज दी। पैरा सिगनलर आया।

"रावजी पटेल! आप जरा अपनी स्त्री को बुला लीजिये। इस बहन का पूरा दिन—"

"किन्तु मेरे घर में!"

"भैया! भगवान का काम है। कल सबेरे मैं इसे अपने यहाँ ले जाऊँगा, आज भरकी बात है। इसमें कौनसा हर्ज है?"

बेटा! अपने पौत्रको सम्बोधन करके भगतने कहा–जा अपनी माँ को बुला ला, गाड़ी जल्दी हाँकना; कहना एक कोई निराश्रय बहन के लिए कुछ काम है, समझा?"

बालक समझ गया, वह बोला—हाँ दादा, अभी आया। यह कहकर वह गाड़ी लेकर गाँवकी ओर चला।

सिगनलर की पत्नी आई। उसमें पति की अपेक्षा परोपकार-वृत्ति अधिक थी। वह उस स्त्री को पकड़कर बड़ी कठिनाई से अपने घर में ले गई और उसकी सेवा शुश्रूषा में लगी।

जोरा भगत बाहर बैठे बैठे माला जपने लगे। थोड़ी ही देर में उसकी पतोहू और पुत्री दो गाड़ियों में बैठकर आ गईं। वे भी अनजान स्त्री की सेवाटहल में लगीं।

रावजी ने बाहर चूल्हा जलाकर पराठा करके जोरा भगत का आतिथ्य सत्कार किया।

रात में दस ग्यारह बजे के समय भगतजी वृक्षके नीचे सोने की तैयारी कर रहे थे कि इतने ही में बहू शिष्टाचारके साथ उसके पास आई।

"बाबूजी!"

"क्या है बहू! उस स्त्री की तबियत कैसी है?"

"स्त्री को तो लड़की हुई—अभी ही—किन्तु—"

"किन्तु क्या? दोनों सुखी तो हैं न?'

"हाँ! किन्तु इस बला को लेकर क्या करूँगी? यह किसके यहाँ की है?"

"मुझे क्या खबर बहू! जितना तू जानती है उतना ही मैं भी जानता हूँ। अपने गाँव की तो है नहीं किन्तु कोई अच्छे घराने की मालूम पड़ती है। दो चार दिन में सब बातें आपही मालूम हो जायँगी।"

"किन्तु—"

"किन्तु क्या ?"

"क्या इन्हें अपने घर ले चलना ठीक होगा ? गाँव में कोलाहल मच जायगा, इसके बाद आप जानें" घर में बड़े बेटे की बहू ही सास की मृत्यु के पश्चात् घर की मालकिन हो गई थी—अतः उसने अपने अधिकार की भगत को सूचना दी।

"क्यों इसमें गाँव वालों का क्या जाता है ?" भगत ने पूछा

"स्त्री चाल चलन की अच्छी नहीं मालूम पड़ती" धीमे स्वर में उसने इस प्रकार कहा मानों बहुत बड़े अपराध की बात कहने से वह काँप रही हो।

"क्यों ?" अचम्भे से भगत ने पूछा—

"वह विधवा है।"

भगत को कँपकँपी आ गई। दो क्षण उसने राम का नाम लिया। पीछे जरा सख्ती से बोला—बहू ! जो भी हो लेकिन विपद् का मारा जो कोई भी आवे उसके लिए जोरा भगत का घर खुला हुआ है।

गंगा बहू ने चकित होकर अपना सिर जरा ऊँचा किया किन्तु मर्यादा के कारण कुछ उत्तर न दे सकी। दूसरे दिन जोरा भगत जब घर जाने लगे तब रावजी पटेल ने उन्हें रोका।

"भगत ! आपने यह बला अपनी बात रखने के लिए मोल ली है। इसे आप जल्दी ही यहाँ से हटाइयेगा।"

"हाँ भाई, हाँ !" भगत को जरा बुरा लगा। "मैं इस समय उसी तजबीज में जा रहा हूँ। मेरा बस चले तो एक क्षण भी उसे यहाँ न रहने दूँ किन्तु बेचारी की स्थिति पर तो जरा विचार करो।"

"भैया, बुरा मत मानना किन्तु आप बड़े आदमी हैं आप

जो कुछ करें आपको कोई उँगली नहीं उठा सकता लेकिन हम गरीब को तो लोग कच्चा ही चबा जायँगे—!"

"बिलकुल ठीक" कहकर भगतजी तेजी से चले। स्टेशन से दो तीन कोस की दूरी पर एक बैरागी बाबा का मन्दिर था जहाँ एक पालकी पड़ी हुई थी, यह उन्हें याद आ गया। नौ बजते बजते भगतजी उस पालकी को उठवा ले आये और उस आगन्तुक अनाथा स्त्री को नवप्रसूता बालिका के साथ अपने घर ले गये। जाते समय रावजी पटेल के हाथ में भगतजी एक रुपया रखने लगे किन्तु सिगनलर ने मनुष्यता की मर्यादा रखने के लिए उसे लेने से इन्कार कर दिया।

२

आगन्तुक स्त्री

जोरा भगत के घर की एक कोठरी में आगन्तुक स्त्री सोई हुई थी। यहाँ आये हुए उसे आज तीन दिन हुए थे।

इस स्त्री का स्वरूप एक बार देख लेने के पश्चात् उसे कोई जीवन पर्यन्त नहीं भूल सकता था। उसका शरीर साधारणतः कुछ लम्बा और सुगठित था। उसके मुख पर सौंदर्य के उपरान्त कुछ अजीब मोहकता थी जो वर्त्तमान स्थिति के परिणाम स्वरूप अधिक आकर्षक हो गई थी। उसकी आँखें श्रम से आधी मींची हुई थीं जो इस अवस्था में भी अत्यन्त सुन्दर मालूम पड़ रही थीं। कपाल पर मानसिक वेदना की छाप मात्र पड़ी हुई थी।

ऐसे देहाती सहवास में उसका रूप विचित्र रूप से खिल

रहा था। किसी महल में रहने वाली ऐसी परम रूपवती सुन्दरी को ऐसे पहरावा व वेश में, ऐसी तंग कोठरी में पड़ी हुई देखकर किसी को जोगमाया का भ्रम हो सकता था। यह सब कुछ होने पर भी उसके ललाट पर काले दाग पड़े हुए थे। उसके सिर का एक एक बाल चुन लिया गया था। वह विधवा थी। समाज ने उसके सिर पर अपनी सत्ता की मोहर छाप दिया था।

उसकी गोद में उसका बालक—उसकी पुत्री पड़ी हुई आनन्द के अवतार के समान मालूम पड़ रही थी—ऐसा मालूम पड़ रहा था मानों अपनी बड़ी बड़ी आँखें फाड़कर आनन्दहीन संसार से उसका दुःख पूछ रही हो। माँ गम्भीर, गहरे विचार में पड़ी हुई थी। विचार में लीन होने से आँखों से बहने वाली अश्रु-धारा की ओर उसका कुछ भी ध्यान नहीं था। कभी कभी वह उसासें लेती और बालिका की ओर देखती। बालिका गूँगे मुँह से पूछ रही थी—"यहाँ आनन्द क्यों नहीं है? स्त्री ने सफेद सारस के समान हाथ से आँसू पोंछा। तैसे ही बाहर जोरा भगत अपनी पतोहू के साथ बात करता हुआ सुनाई दिया।

"बहू! लड़के कहाँ गये?"

"कौन लड़के?" थोड़ा क्रोधयुक्त स्वर गंगा बहू का सुनाई दिया।

"दूसरे कौन? बच्ची राम और—

"उन्हें तो कल उनके मामा आकर लिवा ले गये, कहीं जीमने जाना है।"

"और तेरे लड़के?"

"वे भी मेरे चाचा के एक मित्र हैं उनके यहाँ गये हैं।"

"यह बात है? बहू! मेरे ये पैंसठ वर्ष पानी में नहीं बीते हैं, मैं सब समझता हूँ।" भगत ने जरा आन्तरिक वेदना से कहा।

"यदि आप सब समझते हैं तो ऐसा काम करते क्यों हैं ?" एक नई आवाज स्त्री और भगतको सुनाई दी "आज तीन दिन से गाँव भर के लोग सब आप ही की चर्चा कर रहे हैं।"

"पंडितजी महाराज !" बोलने वाले को संबोधन करते हुए जोरा भगत ने कहा—"गाँव के लोग तो सब पागल हो गये हैं। भगवन् ! प्रति दिन तो माला जपें और एक दिन यदि किसी की सेवा करने का अवसर मिले तो वह भी न करें ? देव और दुःखिया एक समान माने जाते हैं।"

"किन्तु भगत, सच्ची बात कहना, मैंने सुना है कि वह किसी अच्छे घराने की है।"

प्रसूता स्त्री ने अपना होंठ काटा।

"हाँ, भाई ! मालूम तो यही पड़ता है, लेकिन है दुःख की मारी हुई। होगी किसी कलमुँहे की करतूत, बेचारी बड़ी ही भली मालूम होती है।"

"क्या उम्र होगी ?"

"अट्ठारह बीस की होगी, ठीक कैसे बताया जाय ?"

"देखना ! बदजात न हो।"

स्त्री की आँखें क्रोध से लाल हो गईं। सद्भाग्य से उसे कोई देखने वाला न था।

"जो कुछ हो, क्या उसे मुझे जन्म भर रखना है ? यह तो मेरी बहू घबड़ाती है और आज तीन ही दिन में न जाने क्या क्या कर डाला है, लेकिन इस दशा में–मझधार में–उसे कहाँ निकाल दूँ ?"

"किन्तु इसका क्या कोई सगा नहीं है ? उसे बुला न लो।"

"पंडितजी ! गंगा बहू ने बहुत पूछा लेकिन वह तो कहती है कि सगे सम्बन्धी में वही परमेश्वर है, दूसरा कोई नहीं है। मैंने

भी निश्चय किया है कि चालीस दिन उसे यहाँ रखूँगा, इसके पश्चात् जहाँ उसकी इच्छा होगी चली जायगी।"

"उससे कहो कि किसी बड़े शहर में जाकर रहे, वहाँ न कोई कुछ पूछेगा न जाँचेगा।"

"जो उसकी इच्छा में आवेगा, करेगी। लेकिन यह तो बतलाइये आपकी बदली का क्या हुआ ?"

"भाई, मैं तो बदली न करने के लिए बहुत प्रयत्न कर रहा हूँ किन्तु मामलतदार साहब जी को पड़ गये। देखो उनका भी कोई उपाय खोज निकालूँगा। अच्छा अब चला, राम राम।"

"राम राम, भाई !"

अन्दर लेटी हुई स्त्री ने ये बातें सुनकर जोरा भगत की शुभ-कामना के लिए भगवान से प्रार्थना की। गत आठ वर्षों में यह पहला अवसर था जब कि इस सज्जन पुरुष ने उसे चार दिन के लिए विश्राम-स्थान दिया था। उसने बालिका को फिर छाती से लगा लिया।

लेकिन जोरा भगत की सच्ची परीक्षा हो रही थी। उसके लड़के और बहू षड्यन्त्र रचकर अतिथि को तरह तरह के कष्ट देते थे, मुँह लटकाये हुए घूमते थे और अपने लड़के लड़कियों को उनके ननिहाल में भेज दिया था। गाँव में भी बहुत दिनों बाद ऐसी घटना घटने से लोगों में खलबली मची हुई थी और जोरा भगत को लोग तिरस्कार की दृष्टि से देखते थे।

इसी प्रकार गाँव की स्त्रियों ने भी महाभारत मचा रखी थी। बहुत सी स्त्रियाँ नया नया बहाना निकाल कर गंगा बहू से मिलने के लिए आतीं और जिस कोठरी में आगन्तुक स्त्री रहती थी उसी के बगल में बैठतीं और उसे लक्ष्य कर अनेक प्रकार की बातें

करतीं। निराश्रय स्त्री ये सब बातें सुनती और प्रभु से मृत्यु की कामना करती।

जैसे जैसे उस स्त्री में शक्ति आती गई वैसे ही वैसे गंगा बहू का अत्याचार भी बढ़ता गया। उच्च कुल की बधू होने से रीत-रिवाज आदि में वह जबरी थी और यथाशक्ति मूल्य चुकाने में वह चूकती नहीं थी।

आगन्तुक स्त्री के इस प्रकार बीस बाईस दिन बीत गये। एक दिन बात बहुत बढ़ गई।

"लो! धो" कहकर गंगा बहू ने कुछ जमीन पर और कुछ स्त्री के हाथ पर पानी डालते हुए कहा—"अब हुआ?"

"इतना कष्ट मत दो, बहन!" धीमी भारी आवाज में स्त्री ने कहा, और वह जरा फीकी हँसी हँस पड़ी। "मुझसे जहाँ तक जल्दी हो सकेगा यहाँ से चली जाऊँगी, मैं आप लोगों को जरा भी कष्ट नहीं देना चाहती, करूँ क्या! इस समय लाचार हूँ।"

"बहुत ठीक, तू क्या करेगी? यह तो भाग्य में जितना बदा है मौज उड़ा ले। मेरे श्वसुर ही ऐसे हैं जो इतना कर रहे हैं!"

"गंगा बहन! करके कहना नहीं चाहिये।"

"अरे कहूँ क्या? यदि मेरी जैसी माँ हो तो जहर की पुड़िया खिला दे, क्या इस प्रकार रहने देती? यह तो भगत भी मुफ्त का पाप बटोरते हैं!"

पाठक आपने पहचाना यह नवागन्तुक स्त्री कौन है? दूसरी कोई नहीं यह अभागिनी मणि ही है। मणि के मुँह पर इस घाव की वेदना स्पष्ट दिखाई दी, उसकी आँखों में से पुनः आँसू टप टप गिरने लगे।

"मेरा पाप मेरे सिर है" उसने अवरुद्ध कंठ से कहा "इसमें

आपको क्या करना है जो इस प्रकार मार रही हैं ? अपने किए का फल मैं भोगूँगी।"

"तू ने क्या भोगा !" क्रोध के आवेश में आकर गंगा बहू ने कहा "यदि तेरे समान कोई दूसरी होती तो बावली, कूएँ में जाकर डूब मरती, क्या इस प्रकार दूसरे के घर में जाकर पड़ी रहती ?" यह कहकर उसने ऐसी अश्लील गालियाँ दीं जिन्हें लिखते पढ़ते और सुनते हुए लज्जा आती है। मणि का कोमल हृदय उत्तरोत्तर खिन्न होता गया। उसने कान में उँगली लगा ली, उसका माथा घूमने लगा।

"गंगा बहन ! क्षमा करो, कहो तो पैर पड़ूँ। मुझ मरी हुई को किस लिए मार रही हो ? जैसे तुम्हें लड़के हैं वैसे ही मेरी भी यह अनाथ लड़की है। इसी के लिए जी रही हूँ।"

यह सुनते ही गंगा बहू के तो तन बदन में आग लग गई। उसका शब्द-प्रवाह सीमोल्लंघन कर बह चला। अपशब्दों की बौछार से मणि का मुँह बन्द कर दिया। अपना क्रोध दर्शाते हुए वह बोली—यह तेरी लड़की और मेरे लड़के बराबर ?...... खबरदार जो फिर ऐसा कहा, जीभ निकाल लूँगी—यह कहकर मारने के लिए उसने हाथ उठाया। दुःख और न सह सकनेके कारण मणि जमीनपर गिर पड़ी, और गंगा के उठाये हुए हाथको उसके पतिने अचानक पीछेसे आकर पकड़ लिया।

शिवा पटेल जोरा भगतका जेष्ठ पुत्र था, वह स्वभावका बड़ा उग्र था। उसका पिता जब मणिको ले आया तब वह बहुत क्रुद्ध हुआ, बड़बड़ाया और भगतजीको भी उसने भलाबुरा कहा। किन्तु ज्यों ज्यों गाँवके लोगोंके मुँह भगतकी बदनामी सुनता गया त्यों त्यों वह अपने पिताका पक्ष लेने लगा। पक्ष लेते लेते भगतजी ने ठीक किया होगा ऐसा उसने मान लिया। स्त्रियोंके मुँहसे

मणिके रूपकी प्रशंसा सुनकर उसको देखना भी चाहता था। आज वह बाहरसे जारहा था कि पत्नी और उसकी आवाज उसे सुनाई दी। पत्नीको गाली देते हुए सुना—मणिकी सुशिक्षित आवाज सुनकर कुछ आकर्षण हुआ। उसने भीतर झाँककर देखा और प्रार्थनाके लिए मणिके दुःखपूर्ण सुन्दर मुँहको देखकर उसके हृदयमें दयाका सञ्चार हुआ। गंगाका ऊँचा किया हुआ हाथ उसने पकड़ लिया और आँखें लाल लालकर पत्नीको घूरने लगा।

"खबरदार—कुब्जा !" मुक्का दिखाते हुए उसने कहा। "आज तूने कहा तो कहा फिर यदि तूने कुछ कहा तो समझ लेना। मेरा पिता जिसे घरमें रखे उसे तू गाली देनेवाली कौन है ?"

"अरे यह राँ—"

"क्यों, फिर तू बोली ?" कहकर शिवापटेलने एक तमाचा कसकर मुँहपर जड़ दिया "ले और बोल !"

"भाई ! यह मत करो, मेरे कारण अपने घरमें कलह मत करो" मणिने आँसू पोंछते हुए कहा।

"बहन, तू घबड़ा मत, शांतिपूर्वक जबतक तुम्हें यहाँ रहना हो रहो, देखता हूँ अब कौन तुम्हें दुर्बचन कहता है ?" यह कहकर शिवापटेल फिरा तो उसकी दृष्टि खटोलेपर लेटी हुई बालिकापर पड़ी।

बालिकाको देखकर उसका हृदय और भी पिघल गया, नीचे झुककर उसने सिसकारी दी, बालिका हँसी।

"मुझे दोगी ?"

"प्रसन्नतासे" कहकर मणिने बालिकाको पटेलके हाथमें दे दिया। जमीनपर हाथ बाँधकर बैठी हुई गंगाबहू घुड़कती ही रह गई। पटेलने ऐसे सुन्दर, ऐसे निर्मल वर्णका बालक आज ही

हाथमें लिया था, उसके हर्षका पारावार नहीं रहा। उसने दुलार-कर बालिकाको वापस कर दिया।

"जाता हूँ, देखना जो कभी कुछ कहा तो।" कहकर शिवा-पटेल आश्रयविहीन मणिको सान्त्वना देकर आँखें मलकाता हुआ बाहर चला गया। गंगा तो क्रोधसे भीतर ही भीतर जल मरी किन्तु अपने पतिके डरके आगे उसका कुछ वश न चला। "बंसी बजी है" कहकर वह वहाँसे उठकर चली गई।

मणिकी स्थिति सुधर गई। अब उसे कोई भी कटुवचन कहने का साहस नहीं करता था।

३

अड़तीस दिन सब कुछ चुपचाप सहन करते हुए मणि पड़ी रही। वह कहाँ जायगी, उसका क्या होगा, वह कौन है आदि प्रश्न भगत और उसके पुत्रकी धाकसे कोई मुँहपर भी नहीं लाता था किन्तु मणि दिन रात इसीपर विचार किया करती थी, वह स्वार्थी थी। वह जानती थी संसार मेरे लिए निर्जन अरण्य-वन है इसलिए इस विश्रामस्थानमें रहकर जितनी भी अधिक शक्ति संचित की जा सके उतना ही लाभप्रद होगा। उसका दूसरा स्वार्थ बालिकाका था। किसी सुरक्षित स्थानमें उसे रखकर ऐसे स्थानमें जहाँ उसे कोई जानता न हो, उसे अपना नवीन जीवन प्रारम्भ करना था। आठवर्षसे अकेले दुःख सहन करते हुए उसके मनमें हजारों प्रकारके विचार उत्पन्न हुए थे, उन्हीं विचारोंके आधारपर अपना जीवन शुरू करनेका उसने संकल्प किया था। वह गाँवकी स्वच्छ हवा लेती, पक्षियोंका कलरव

सुनती, किसी किसी समय बाहरसे आनेवाले गानेकी तानको सुनती एवं उनसे आनन्द अनुभव करनेकी इच्छा करती। यह सब होते हुए भी यहाँ अब ठहरना उसे अच्छा नहीं लगता था, वह दरवाजेकी ओर देखती हुई बैठी थीं, उधरसे जोरा भगतको जाते हुए देखकर उन्हें उसने बुलाया।

"भगतकाका! जरा इधर आइयेगा; मुझे आपसे कुछ कहना है। शिवाभाईको भी बुला लेते तो अच्छा होता।"

"क्यों क्या बात है?" कहते हुए भगतजी अन्दर आगये और इसके पश्चात् ही शिवापटेल भी आ गया।

"काका! मेरी विनती है कि आप मुझे जानेकी आज्ञा दीजिये। मैंने आपको बहुत कष्ट दिया।"

"जल्दी क्या है?" शिवाने कहा।

"आपको भले ही न हो भाई! किन्तु मुझे तो है। अभागिनी हूँ, भाग्य खराब है। गाँवभरमें मेरी चर्चा होती है। आपलोगोंको क्या क्या सुनना पड़ रहा है, यह सब मैं जानती हूँ"

"बेटी!" भगतने कहा "इसकी चिन्ता तू जरा भी न कर। गाँवके बापका क्या मैंने देना खाया है?"

मणिने अपना सिर हिलाकर कहा—यह आपकी कृपा है, लेकिन इस प्रकार कितने दिन तक चलेगा? मै अपने दिन तो किसी प्रकार काट लूँगी लेकिन मुझे आपके सलाहकी आवश्यकता है।

"क्या?"

"मुझे अब कहाँ जाकर रहना चाहिये, भगतकाका? आपलोगोंके मनमें चाहे जो भी विचार आये हों किन्तु मैं बिलकुल अधम नहीं हूँ और न कुलटा ही हूँ। भूल किससे नहीं होती?"

"मैं कहाँ कहता हूँ? बेटी, भगवानकी केवल कृपा चाहिये।

किन्तु क्या तेरा कोई भी सगा सम्बन्धी नहीं है ? तेरे ससुराल या नैहर में ऐसा कोई नहीं है जो तेरी देखभाल कर सके ?"

"काका ! ससुराल और नैहरका तो नाम मत लो, वहाँ तो केवल परमेश्वर हैं। यह बात तो जाने दो।"

"तब तू कहाँ जाकर रहेगी ?"

"यही तो मैं आपसे पूछ रही हूँ ? मुझे कहीं निश्चिन्त रहकर अपने इस अधम पेटके लिए कुछ करना ही है। मैं कुछ पढ़ना लिखना भी जानती हूँ इससे कोई विशेष कष्ट नहीं होगा।"

"बेटी! भोजनके लिए तो मेरे मोघाराम तलाटी ही हैं वे कह रहे थे कि उन्हें भोजन बनानेके लिए एक स्त्रीकी आवश्यकता है।

"काका ! यह तो ठीक काम नहीं है। इस कामसे तो जन्म भर चूल्हा फूँकते ही बीतेगा।"

"तब कहाँ जायगी ? तो हरि का भजन करो जिससे इहलोक और परलोक दोनों सुधरे। एक योगी महाराज हैं उनके यहाँ जायगी ?"

"ये कैसे हैं ?"

"बड़े हरिभक्त हैं और बहुतसे मनुष्य उनकी शरणमें जाते हैं। वहाँ तुझे बड़ी शांति मिलेगी।"

"जी हाँ, मैंने भी उनकी ख्याति सुनी है। पास ही के शहरमें तो उनका मन्दिर है ?"

"हाँ, वहाँ यदि तू चली जा तो बड़ा अच्छा हो।"

"किन्तु यदि वे मुझे शरण न दें तब ?"

"कभी भी नहीं, वे तो महात्मा हैं। हजारों मनुष्य उनका उपदेश सुननेके लिए रोज जाते हैं।"

"किन्तु मेरी बालिकाका क्या होगा ?"

"इसे भी अपने साथ लेती जा, और क्या होगा ?"

"काका ! इसे मैं अपने साथ लिए लिए कहाँ फिरूँगी ? अपने शत्रु पुरुष-वर्गसे न मालूम क्या क्या कष्ट अभी भोगना बाकी है। अब तो कहीं मेहनत मजदूरी करके पेट पालना है। आपने जैसे इतने दिनतक अपने यहाँ रखा वैसे दूसरा कोई क्या रखेगा ? भगतकाका, ऐसी कष्टप्रद अवस्थामें अपनी इस कच्ची कली जैसी बालिकाको कहाँ रखूँगी ? यह मर भी नहीं जाती कि सन्ताप कटे !" कहकर बालिकाको पिता पुत्रके सामने लिटा दिया। थोड़ी देर तक सब चुप रहे।

"काका !" मणिने धीमे स्वरमें कहना प्रारम्भ किया "जहाँ जाऊँगी मेरा पाप मेरे आगे आगे दौड़ेगा किन्तु इस बालिकाने क्या अपराध किया है ? यह तो ईश्वरकी देन है, यह तो कमसे कम स्वच्छ वायुमें पले।"

"तब किया क्या जाय ? शिवापटेलने पूछा।

"यदि आप दोनों स्वीकार करें तो इसे यहीं छोड़ जाऊँ, लड़कोंके साथ यह भी पल जायगी। ठीक ठिकाना लग जानेपर मैं तुरत ही इसे ले जाऊँगी। इसे छोड़ जाने मात्रसे मेरा कलेजा फटा जाता है, किन्तु करूँ क्या ?

"बेटी, मेरी जरा भी अनिच्छा नहीं है किन्तु इस शिवाकी बहूका मिज़ाज जरा गरम है।"

"अरे पिताजी ! मैं उसकी सब गरमी निकाल दूँगा। मुझे भी इसकी बात ठीक जँचती है। माँके पापसे पुत्री क्यों कष्ट उठाये ?"

"मेरे लाल, तुम्हारी आयु सौ बरसकी हो।"

"गंगाबहू ! ओ गंगाबहू !!" भगतजीने आवाज दी।

"गंगाबहू तुरत घूँघट काढ़ती हुई आई।

"देखो बहू ! यह मणि बहन जाना चाहती है, इनकी पुत्रीको

रखोगी ? यह भी अपने घरमें रहकर दूसरे बालक बालिकाओंके साथ पलेगी।"

"यह उठ-बैठ इस उम्रमें मुझसे नहीं होगी।"

"घरमें दूसरी बहुएँ भी तो हैं न ?"

"वे सब भी क्या खाली बैठी हैं ?" गंगाबहूने उत्तर दिया।

"कोई खाली नहीं है तो मणिको भी अपने साथ रखो" शिवापटेलने चिल्लाकर कहा। पिताका ख्याल कर उसने इससे अधिक और कुछ कहना उचित नहीं समझा किन्तु उसका क्रोध बढ़ता गया। "माँ और उसकी पुत्री दोनों अब यहाँ रहेंगी, इससे सबको सन्तोष होगा न ?"

गंगाबहूने देखा कि यदि बालिकाको रखना अस्वीकार करती हूँ तो माँ भी रहेगी। अतः उसने बुद्धिमानीसे काम लिया, उसने पूछा—मणि कहाँ जारही है ?

"यह तो महायोगी महाराजके मन्दिरमें जाकर रहेगी; बादमें कोई ठिकाना लग जानेपर पुत्रीको आकर ले जायगी।"

"अरे वह अगर यहीं रहेगी तो कौनसा अनर्थ हो जायगा ?" शिवापटेलने कहा।

"तब जैसी आपकी इच्छा" कहकर गंगाबहू चली गईं।

"पिताजी ! ये सब आपसे नहीं मानेंगी, मुझसे ही ठीक रहेंगी।"

"हाँ, तब ऐसा ही करूँगा।"

"बहुत ठीक ! परसों आप अपनी गाड़ीपर मुझे शहर भेज दें।" मणिने कहा—

"अच्छी बात है, मुझे भी जाना है। तलाटी भी आनेवाले हैं।" भगतने कहा।

मणि निश्चिन्त हो गई। उसकी पुत्री अब सुरक्षित स्थानपर

रहेगी इससे उसे शान्ति मिली। संसार विशाल है, कहीं किसी एक कोनेमें पड़ी रहकर अपने दुर्दिन सरलतापूर्वक काट सकूँगी। ऐसा उसे विश्वास हो चला था।

दो दिन तक उसकी आँखके आँसू नहीं रुके। इन दो दिनोंमें बालिकाको साथ लेजानेके लिए कई बार उसके मनमें विचार आये किन्तु वह बड़ी दृढ़प्रतिज्ञ थी साथ ही उसे यह भी ख्याल आया कि जबतक मेरा कुछ प्रबन्ध न हो जाय तबतक बालिकाको यहाँ छोड़ जानेमें ही लाभ है, अतः उसने पुत्रीको वहीं छोड़ जानेका निर्णय किया।

जानेके एक दिन पूर्व उसने भगतजीको पुनः बुलाया। उसके पास एक कंगन और गलेका हार था जिसे बालिकाके पालन-पोषणके लिए ले लेनेका मणिने बहुत आग्रह किया किन्तु भगतजीने उसे किसी भी तरह लेना स्वीकार न किया।

प्रातःकाल पाँच बजे सबलोग सोकर उठ गये। मणिने अपनी पुत्रीको अन्तिम बार चूमा, गंगाबहूसे क्षमा माँगी और बालिकाके प्रति दया रखनेकी याचना की। गंगाबहूने बालिकाको पालनेका वचन दिया। रोनेसे लाल हुई आँखोंसे अश्रुधारा बहाती हुई हतभागिनी स्त्री जिस बालिकाके लिए घरद्वार छोड़कर भटकती फिरी उसे दूसरेको सौंपकर भगतजी और मोघाराम तलाटीके साथ शहर चली। "गंगा बहन!" चलते चलते उसने कहा— "मेरे जीवन-धनकी रक्षा करना और यदि मैं न आऊँ या किसी को न भेजूँ तो भी चौदह वर्षकी अवस्थाके पूर्व इस बालिकाको देना मत, समझी बहन।"

"बहुत ठीक, बिलकुल निश्चिन्त रहो!" शिवा पटेलने उत्तर दिया।

"और इसका नाम सुरेखा रखना।"

"अच्छा।"

घुँघरूकी आवाजके साथ बैल चल पड़े, माँ और पुत्रीके बीच धीरे धीरे अन्तर बढ़ता गया।

४

शहरके अग्रिम भागमें एक पुरानी किन्तु विशाल हवेलीमें महायोगी महाराजका मन्दिर था। आज कितने ही वर्षोंसे यह महात्मा शहरमें जमे हुए थे और गाँवके शिष्योंके अतिरिक्त समस्त गुजरातसे भक्तजन उनके पवित्र पदपंकजका स्पर्श करनेके लिए आया करते थे। प्रति दिन हजारों नरनारी उनका चरण स्पर्शकर पवित्र होते थे, हजारों रुपये प्रतिदिन उनकी भेंट चढ़ते थे, अनेक मनुष्य उनके शिष्य बनकर उनके उपदेशके अनुसार चलनेका प्रयत्न करते थे, बहुतसे उनके साथ ही रहकर उनकी सेवा टहलकर अपने मनमें सोचते कि महायोगी महाराज अपने साथ उन्हें भी स्वर्ग ले जायँगे।

मन्दिरका आगेका कमरा कथा-वार्ताके उपयोगमें आता था। बीस खिड़कियाँ कमरेमें वायु और प्रकाश करती थीं. महापुरुषोंके चित्र और छतका नक्काशीका काम कमरेकी रमणीयताको बढ़ाते थे और एक तरफ रखा हुआ चन्दनका सिंहासन देव मन्दिरकी भव्यता प्रकट कर रहा था। इस स्थानपर प्रतिदिन प्रातः पाँच सौ स्त्री-पुरुष कथोपदेश सुननेके लिए आते थे।

महायोगी महाराजकी ख्याति सकारण थी। गुजरातके भोले भाले निवासियोंको वशमें करनेके लिए उनका डीलडौल और भव्य शरीर ही यथेष्ट था। उनका शरीर चरबीसे मोटा नहीं था

बल्कि सुगठित, सुडौल और सुन्दर था। एक भी नसें दिखलाई नहीं देती थीं। उनके चेहरेपर तेज था जिसे लोग उनकी सिद्धिका तेज समझते थे। आँखोंमें से निरन्तर एक शांत, मीठा तेज निकलता रहता था। वे गत दस वर्षोंसे चालीस वर्षके ही दिखाई देते थे और जब वे नहा धोकर, शरीरमें चन्दन लगाकर, सफेद बहुमूल्य वसन धारणकर, चाँदीके मढ़े हुए खड़ाऊँपर चढ़कर, हाथमें भगवद्गीता लेकर, पैरपर पड़नेवाले भक्तजनोंके बीचमें से होकर निकलते थे तब लोगों में विचित्र शांति छा जाती थी, श्रद्धालु लोगोंमें अपने आप ही भक्ति पैदा हो जाती थी—भक्तजन विमूढ़ होकर इस तेजस्वी मूर्त्तिको निहारते ही रह जाते थे। जब वे अपने मोतीके समान सुन्दर दाँत निकालकर हँसते थे तब सबको सच्चिदानन्दका स्वाद आता था।

विद्वत्तामें भी उनकी ख्याति चारो ओर फैली हुई थी। उन्हें क्या नहीं आता था। पाँच वर्षतक लगातार उनकी सेवामें रहकर भी कोई उनकी भूल नहीं निकाल सकता था। उनके यहाँ एक दो शास्त्री और एक दो ग्रेजूयेट चटाई बिछाकर पड़े रहते थे किन्तु वे महाराजको पढ़ाते थे या महाराज उन्हें सिखाते थे यह कोई भी बता नहीं सकता। किन्तु उनके प्रवचनसे उनकी विद्या अथाह मालूम पड़ती थी।

जोराभगत, मोघाराम और लज्जासे मुँह ढाँके हुई मणि, ये तीनों आकर एक किनारे खड़े हो गये। अभी साढ़ेसात बजनेमें कुछ देर थी। महायोगी महाराज एकक्षण भी अपने क्रममें फेरफार नहीं करते थे। घड़ी भले ही कमवेश हो जाय किन्तु महाराज सदैव ठीक समयपर कार्य प्रारम्भ करते थे। साढ़ेसात बजते ही दरवाजा खुला और तेजस्वी महात्माने पदार्पण किया। मणिने महाराजका बड़ा यशगान सुना था किन्तु उनकी भव्यता देखकर

वे यशगान भी उनके सामने तुच्छ मालूम पड़ने लगे। उसका दुःखी हृदय कुछ शांत हुआ। इनके चरणका आश्रय ग्रहणकर क्या उसका दुःख दूर होगा?

महाराज बैठ गये। एक मीठा–रससे भीना कहा जाय तो ठीक होगा—हास्य भक्तजनोंकी ओर उसी प्रकार फेंका जैसे कोई धनी, भिखारीकी ओर पैसा फेंके। दो पार्षद पंखा झलने लगे। एक दो भक्तोंने आगे बढ़कर महाराजको चन्दनका टीका लगाया और आरती उतारी। वहाँ पर उपस्थित सभी लोगोंने आरती ली। ठीक आठ बजे प्रवचन प्रारम्भ हुआ।

मणि चित्रलिखी सी देखती रही, महाराजके मुखसे मीठा, शान्त, मोहक प्रवाह निकला, जिसने श्रोताजनके कोलाहलको दबा दिया। हिन्दी वे शुद्ध, स्पष्ट और सरलता पूर्वक बोलते थे। इसके अलावा संस्कृत, अंग्रेजी आदि दूसरी भाषायें भी जानते थे। थोड़ी थोड़ी देरमें छोटे छोटे चुटकुले भी छोड़ देते थे जिन्हें सुनकर लोग हँसते हँसते लोट-पोट हो जाते। कोई खेदयुक्त प्रसंगके आ जानेपर सबकी आँखें सजल हो जातीं। इसपर भी उनकी आवाज! मणिको तो उसमें बंशीका माधुर्य मालूम पड़ रहा था। उसके हृदयमें कैसे कैसे भाव उदय हो रहे थे।

महाराजकी परिमार्जित आवाज नदीके प्रवाहके समान पलमें शान्त, पलमें उछलती हुई और पलमें अपनी तरंगमें सबको खींचती हुई आगे बढ़ी:—

"कुछलोग—विद्वान किन्तु क्षुद्र बुद्धिवाले—पश्चात्य शिक्षासे संस्कार-च्युत होकर कर्म करना चाहते हैं-किन्तु नियत-शास्त्र-विहित नहीं। अपने शहरमें ही समाजोद्धारका प्रयास कुछ समय से प्रारम्भ हुआ है। संसार सुधारना है किन्तु उसके लिये शास्त्रकी सहायताकी आवश्यकता नहीं है, घर बनाना है किन्तु

नींवके नियमोंको बिना स्वीकार किये हुए, समुद्रको पार करना है किन्तु नावका त्याग करके; इस रेतीसे बंगला बनानेका नींव स्त्रियोंकी स्वतन्त्रतापर डालना चाहते हैं। कैसी मूर्खता है! सब काम सन्तोषके लिए किया जाता है किन्तु—

न तु प्रतिनिविष्ट मूर्खजन चित्तमाराधयेत्।

प्रचंड तरंगोंसे भयंकर बनी हुई नदी पार की जा सकती है, फुत्कार मारनेवाले सर्पको भी मस्तकपर रखा जा सकता है किन्तु भर्तृहरि महाराज कहते हैं कि 'न तु प्रतिनिविष्ट मूर्खजन चित्त-माराधयेत्।'

स्त्री यह संसार-तारिणी है। जगत उद्धारिणी है। जगदम्बा का अवतार है। उसके आचार-विचारपर ब्रह्माण्डका आधार है—उसके स्वातन्त्र्यसे प्रलयकाल उत्पन्न होता है। इसीलिए मनु महाराज कह गये हैं—

'न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति'

मणिका हृदय उछलने लगा। उसे ऐसा मालूम होने लगा मानो महाराज उसीको सम्बोधन करके कह रहे हैं। घड़ी भर अपने विचारोंको भूलकर महाराजके सूत्रोंकी सत्यताको देखती रही।

"किन्तु हमारे स्वतन्त्रता-पूजक समाजोद्धारकगण स्त्रियोंको स्वतन्त्र बनानेमें एक मत हो रहे हैं और समझते हैं कि विध-वाओंके पुनर्विवाहसे ही यह स्वतन्त्रता मिल सकती है। किन्तु वे इस बातको भूल जाते हैं कि वैधव्यमें सौभाग्यकी अपेक्षा कहीं अधिक विमलता है!

शास्त्रमें कहा हुआ विधवा-विवाहका निषेध सकारण है। समाजमें विधवाओंको रहने दो अन्यथा प्रत्येक घरमें कुमारी कन्या रखनी पड़ेगी। जो दशा विलायतकी है वही दशा हमारी

होगी। संसारमें दुःख तो है ही किन्तु अधिक दुःख छोड़कर कम दुःख स्वीकार करनेमें ही विवेक बुद्धिका ज्ञान होता है।

'नारी निन्दा करो नहीं, नारी रत्नकी खान।
उनसे पैदा हुए, ध्रुव प्रह्लाद महान॥

किन्तु यदि विधवा-विवाहके प्रचलित हो जानेपर समाज अविवाहित कुमारियोंसे भर जाय तब समाजकी क्या दशा होगी? या तो इस खानसे रत्न ही न निकलेंगे और निकलेंगे भी तो पत्थर। अर्जुनने श्री गीताजीमें ऐसा ही कहा है।

महाराजकी शिक्षासे उस समय मणिके मस्तिष्क पर नया प्रकाश पड़ा। उसे ज्ञान हुआ कि उसने कैसा घोर पातक कर्म किया है। महाराज आगे बढ़े:—

"पूर्वकालमें एक त्रिया-राज्य था। वहाँ कुँवारी कन्यायें ही राज्य करती थीं। वहाँ की रानी कुमारी थीं, वहाँकी सेनामें भी कुमारी कन्यायें थीं। एक बार उस राज्यमें महागुरु मत्स्येन्द्रनाथ पधारे और जिस महान तपस्वीका मन उर्वसी, मेनका आदिको देखकर विचलित नहीं हुआ था उनका मन कुमारियोंमें जा फँसा और उन्हें योगभ्रष्ट कर डाला।

"इसी कारणसे त्रिकालज्ञ महर्षियोंने कन्याको अविवाहित रखनेका निषेध किया है; और यदि कन्याओंको अविवाहित रखना आप लोगोंको स्वीकार न हो, वर्णाश्रमकी पवित्रताका पालन करना हो तो 'विधवा विवाह' आपको रोकना पड़ेगा। इन सब समाजशास्त्रके नियमोंसे अनभिज्ञ बिचारे समाज उद्धारकोंको शास्त्र-वचन देखने सुननेका भला कहाँ अवकाश है?

इस पर भी विधवाकी स्थितिमें जो विमलता है वह भला किसमें मिल सकती है? निश्चल तपसे विभूषित ये मातायें तो अवनि का आधार रूप हैं। वे ही सच्ची पुण्यशाली हैं, सच्ची

वेदान्ती हैं। उनके कुटुम्ब जालमें एक कुटुम्ब नहीं है बल्कि पूरी वसुधा है। उन्हें एक घरका आँसू पोछना नहीं है बल्कि संसार भरके दुःखोंको दूर करना है एवं उनका सम्बन्ध सिर्फ अपने सगे सम्बन्धियोंसे ही नहीं है बल्कि समग्र जगत से है।

महाराजने एक पद गाकर सुनाया, उनके गानेकी कला भी बड़ी अद्भुत थी जिससे यह पद पूरा करते करते लोगोंमें एक समाँ सी बँध गई।

इसके पश्चात् जैसे ही नौ बजना प्रारम्भ हुआ कि सहसा जैसे पर्वत परसे गिरनेवाला जल-प्रवाह भूमिमें समा जाय वैसे ही उनका प्रवचन भी समाप्त हो गया। आशीर्वाद देनेके लिए हाथ ऊँचाकर महाराज बोले—'शांतिः शांतिः शांतिः।'

श्रोताओंने गहरी निश्वास ली, शब्द जालका जादू समाप्त होते ही मानो उनकी जीवन डोरी टूट गई हो ऐसा मालूम हुआ। महाराजको पुनः हार पहनाया गया और वे उठकर अन्दरके कमरेमें चले गये।

लोग छटने लगे, कुछ ही लोग रह गये। नौ से दस बजे तक जिस किसीकी भी इच्छा हो उससे महाराज एकान्तमें मिलते थे और उसके मनका समाधान करते थे। इन रह जाने वालों में मणि, मोघाराम और जोरा भगत भी थे उनके सद्भाग्यसे खास मिलनेवालोंकी संख्या आज बहुत कम थी। जो पार्षद दरवाजेके बाहर खड़ा था वह जोरा भगतको पहचानता था जिससे मणिका नम्बर जल्दी ही आ गया।

उस पार्षदने जोरा भगतको आँखसे संकेत किया जिसे देखकर उन्होंने मणिको भीतर जानेके लिए कहा। ऐसे तेजस्वी पवित्र महात्मासे भेंट करनेके लिए जाते समय मणिके हृदयमें उसका पाप पुनः ताजा हो गया, अपना अधःपतन स्मरण हो आया,

जाऊँ कि न जाऊँ यह शंका मनमें उत्पन्न हुई। किन्तु अब न जाना ठीक न होगा क्योंदि पार्षद दरवाजा आधा खोलकर खड़ा था अतः घबड़ाहटके साथ वह भीतर गई और उसके पीछे दरवाजा बन्द हो गया।

वह दरवाजेके पास स्तब्ध होकर खड़ी रही। सामने पीढ़ेपर महायोगी महाराज पद्मासन लगाकर बैठे थे। पद्मासन होनेपर भी त्यागीकी अपेक्षा श्रीकृष्णका ज्ञान वे अधिक करा रहे थे। मणि क्षोभसे ठिठक गई, यह देखकर महात्माजीने अपने तेजस्वी चक्षुओंसे उसे पास आनेके लिए संकेत किया।

उनके चक्षु गम्भीर, तेजस्वी, सत्तात्मक थे—उनमें मणिको विशेष चमक दिखाई दी और उसे ऐसा मालूम हुआ मानो आत्मविस्मृत होकर उसके प्राण उन दो ताराओंकी ओर ही उड़ते चले जारहे हैं। आकृष्ट होकर वह उनकी ओर देखती रही। वह कौन थी, क्या थी, उसका हृदय किस भारसे दबा जाता था, यह सब कुछ वह भूल गई, वह आगे बढ़ी उसके हृदय में एक प्रकारकी स्फूर्ति थी।

"बैठ जाओ बेटी !"

कुछ कहे बिना पैर छूकर मणि बैठ गई।

"क्या दुःख है बेटी ? तुझ जैसोंको ईश्वर दुःखी रहनेके लिए संसारमें नहीं भेजता।" मीठे शब्दोंमें महात्माजीने कहा। दुःख सम्बन्धी प्रश्न होनेपर मणि झिझककर होशमें आई; महात्माकी आँखों द्वारा प्रसारित जादूके जालसे उसे छुटकारा मिला।

"महाराज ! मेरा दुःख अकथनीय है।"

"कहनेकी आवश्यकता नहीं है" धीरेसे महात्माने कहा और अपनी आँखें मणिकी आँखोंपर जमाकर बोले "मैं जानता हूँ !"

"हूँ !" कहकर मणि चौंककर पीछे हट गई।

"घबड़ा मत, संसारमें मुझसे कोई बात छिपी नहीं है। तू बाल विधवा है?"

मणि ने सिर हिलाकर 'हाँ' कहा।

"सगे सम्बन्धियोंसे दुःखी है, पुरुषोंकी अधमताकी भोग्य बन गई है, इस समय निराधार होकर आश्रय ढूँढ़ रही है।" इस प्रकार महाराज बोलने लगे मानो उसके अन्तरसे एक एक शब्द खोजकर बाहर निकाल रहे हैं।

मणि विमूढ़ सी सुनती रही।

"क्या सब सच है?"

"हाँ, प्रभु! महाराज! आप सर्वज्ञ हैं।" घबड़ाकर मणिने कहा। महात्मा जरा हँसे।

"सर्व अन्तर्यामीसे अपना भेद क्या छिपाना। अब बताएँ, मेरे दुःख कब दूर होंगे? अथवा जीवन भर इसी प्रकार रो रोकर दिन काटना होगा?

"जब पाप कट जायँगे तब?"

"पाप! महाराज! आप भी पाप कहते हैं?"

५

मणिकी आत्मकथा

"हाँ पापके बिना दुःख नहीं होता?"

"मैंने कौनसा पाप किया? इसके साथ ही भूला दुःख ज्यों ज्यों ताजा होने लगा त्यों त्यों उसे संसारकी क्रूरता याद आने लगी। महाराजके व्यक्तित्वका प्रभाव कम हो गया और जो

विचार उसके हृदयमें मृत पड़े हुए थे वे जाग्रत होकर बाहर आने लगे।

"तू कब विधवा हुई ?"

"महाराज ! विवाहके समय आठ वर्षकी थी और एक महीने पश्चात् ही विधवा हो गई। मेरा बाल-विवाह हुआ; यह क्या मेरा दोष है ? वर कहाँसे आया, पता नहीं, किसने मेरा उसके साथ गठबन्धन किया, यह भी पता नहीं, वह कौन था इसकी भी खबर नहीं, इसपर भी दोष मेरा है ? लोग भले ही कहें, वे सब तो पापके पुतले हैं, किन्तु आप भी ऐसा कहते हैं ?"

महात्मा मणिकी बात सुनकर मुस्कुराये।

"वैधव्यको दुःख क्यों मानती है ?"

"क्यों मानती हूँ ?" आश्चर्यसे मणिने पूछा—

"हाँ बहन ! सौभाग्यकी अपेक्षा वैधव्य बहुत विमल है" मधुर स्वरसे महात्माने कहा।

"विमलता ! तब तो यदि सभी सौभाग्यवती स्त्रियाँ इस विमलताको ग्रहण कर लें तो बड़ा अच्छा हो। महाराज मैं पापी हूँ, मुझे क्षमा कीजियेगा, किन्तु ये सब बातें बड़ी ही बुद्धिमत्ता-पूर्ण मालूम पड़ती हैं किन्तु जब किसीपर आ पड़ती है तब पता चलता है।"

"दुःख तो संसारकी पहली सीढ़ी है।"

"महाराज मैं आपकी तरह ज्ञानी नहीं हूँ, बताएँ मुझे यह दुःख क्यों हुआ ?"

"इस दुःखसे पवित्र होकर संसारका उद्धार करनेके लिए।"

"मुझे पवित्र नहीं होना है। मुझे सुख प्राप्त करना है। बड़ी होनेपर रगे-रग सौभाग्यके लिए तरसने लगी। पतिके साथ घूमने फिरनेकी, बोलने हँसनेकी, अपना घर बसाकर महलमें

रहनेवाली रानीके समान रहनेकी, अपने बालबच्चोंको खेलानेकी, नहलाने धुलानेकी, इन सब लालसाओंको भुलाकर दुःख किस-लिए अङ्गीकार करूँ ? मैंने कौनसा अपराध किया है ?"

"विवाह किया ?" शांतिसे मानो थोड़ा टाह लेते हों इस प्रकार महात्माने पूछा।

विवाह हुआ ; पाणिग्रहण करनेवालेका मुँह तक नहीं देखा। एक दिन उसका हाथ पकड़नेका अपराध अवश्य किया किन्तु उसके लिए क्या इतने दिन तक कष्ट उठाना होगा ? यह अपराध तो मेरे माँ बापका है जिन्होंने इतनी छोटी उम्रमें मेरी गर्दनमें फाँसी लगाई।

"बेटी ! दुःखी होनेका यह प्रथम चरण है। बीती हुईको बिसार देना ही बुद्धिमानीका काम है। इससे व्यर्थ उद्वेग बढ़ता है।"

"उद्वेग तो बहुत हुआ और अभी आगे होगा। पहले तो मैं भोली थी, व्रत उपवास करती थी एवं संसार प्रचलित नियमोंके अधीन थी।"

"बाद में ?"

"बादमें मैंने सब कुछ छोड़ दिया। किसलिए किसीके अधीन रहूँ ? मेरे स्वभावमें जब सुखकी लालसा है तब दुःख किसलिए सहन करूँ ? मैं भी जीवित प्राणी हूँ—युवावस्थाका गर्म लोहू मेरे शरीरमें भी दौड़ता है। किसलिए मैं मौज न करूँ ? हाँ ! मुझे कुलटाके समान आचरण नहीं करना है किन्तु विवाह क्यों न करूँ ?"

"विवाह करनेवाला क्या कोई मिला ?"

"महाराज मैं उसीकी खोजमें हूँ। एक दुष्टने मुझे फँसाकर नष्टभ्रष्ट कर दिया। कोई चिन्ता नहीं, दुनिया बहुत बड़ी है।

अभी भी कोई मिल जायगा जो मेरी इच्छाकी पूर्ति करेगा। उसीके लिए तो घरबार छोड़कर भटकती फिर रही हूँ। मुझे और कुछ नहीं चाहिये—केवल सुखसे, नीति पूर्वक घर बसा लेने दीजिये।"

"बेटी! यह तेरा भ्रम है। इस संसारमें तुझे कोई नहीं मिल सकता।"

"क्यों नहीं मिलेगा?"

"अपने समाजकी रचना विचित्र है। देख! यदि कुछ समयतक मेरे कथनानुसार चलनेका प्रयत्न करे तो तेरा रोग दूर हो सकता है।" महात्मा ने कहा।

"किस प्रकार?"

"सुख दुःख यह मनकी भ्रमणा मात्र है।"

"किन्तु यह मन मारा कैसे जाय?"

"सदुपदेशसे, सत्संगसे।"

"दस वर्षसे बहुत कुछ प्रयत्न करनेपर भी फल कुछ भी नहीं हुआ।"

"होगा, संसारमें जबतक मनुष्य रहता है तभीतक वह दुःखी रहता है। संसारके तीरपर जाकर खड़ा हुआ कि वह सब कुछ भूल जाता है।

"किन्तु यह होगा कैसे?"

"रास्ता मैं बताऊँगा।"

"आप तो समर्थ हैं किन्तु मेरा मन संसारी है, लिप्सावाला है। आपका उपदेश निरर्थक न हो जाय?"

महाराज जरा हँसे। "बेटी! जल्दी करनेकी जरूरत नहीं है। तू किसके साथ बातें कर रही है इसका तुझे ज्ञान नहीं है। बाहरसे लोग आते हैं, प्रवचन सुनते हैं और चले जाते हैं किन्तु

मेरे प्रभावका ज्ञान किसीको नहीं है। तू संसारी है, जल्दबाज है, दुःखी है, मैं योगी हूँ, आनन्दस्वरूप हूँ। थोड़े ही दिनमें तू सुखी और सन्तुष्ट हो जायगी। तेरेमें बुद्धि और साहस है। तेरी जैसी स्त्रियाँ बहुत कम हैं। तू असाध्यको भी साध्य बना सकेगी।" वाग्जाल चलता जाता था। महात्माकी आवाज कभी गम्भीर और कभी मृदु हो जाती थी। उनकी आँखें पुनः निश्चल हो गईं। मणि पहिले ही की तरह फिर अचेत होने लगी। ऐसा मालूम हुआ कि वह मूर्च्छित हो जायगी। उसका माथा घूमने लगा।

उसे महात्माकी मूर्त्ति अधिक तेजस्वी और लम्बी चौड़ी मालूम हुई। उसे उनकी आँखोंमें अखिल विश्वका तेज समाया हुआ मालूम पड़ने लगा।

मणिसे वह तेज असह्य हो गया—उसने अपनी आँखें मींच लीं, वह दो क्षण मूर्च्छित रही। उसके कानमें महात्माका शान्त प्रश्न सुनाई दिया। वह पुनः होशमें आ गई।

"तेरे साथ कौन है ?"

मणिने आँखें खोलकर देखा, महात्मा ज्योंके त्यों बैठे हुए थे।

"मीठा कुआँके पटेल और तलाटी।"

"मोहन !"

"जी हाँ" कहकर पार्षदने दरवाजा खोला।

"जोरा भगत तथा उनके साथीको भेजो।"

"जी !"

तुरत मोघाराम और जोरा भगतने आकर साष्टांग प्रणाम किया।

"भगत ! इस महिलाकी व्यथा मैं समझ गया हूँ इसे यहीं छोड़ जाओ। धीरे-धीरे इसका दुःख दूर हो जायगा। मोहन ! इस महिलाको बगलके कमरेमें बैठा दे।"

सबने झुककर पदरज लिया। महाराजने आशीर्वाद दिया और सबलोग बाहर निकल आये। मोहन दूसरे लोगोंको प्रवेश करनेके लिए घूमा।

"बेटी!' जोरा भगतने कहा "मैंने क्या कहा था? महाराज तो बड़े पहुँचे हुए हैं। काम पड़नेपर मुझे जरूर बुला लेना, यहाँ किसी बातका अन्देशा तो नहीं है किन्तु........."

"भगतकाका! मैं आपको और क्या काम सौंपूँ? मेरी सुरेखाका ख्याल रखना और चौदह वर्षके पहले उसका विवाह मत करना।

"बहुत अच्छा बेटी! बहुत अच्छा।"

"यदि मेरी आवश्यकता पड़े तो मेरा भैरवफलियामें भी घर है।"

"काका! मेरे भाग्यमें अकेले ही रोना बदा है। यदि हो सका तो मिलूँगी नहीं तो राम राम!" मणिकी आँखोंमें आँसू भर आए।

मोहनने आकर कहा—चलिये श्रीमतीजी।

"हाँ भाई!" कहकर मणि फिरी और बगलके एक कमरेमें चली गई।

६

दीवालमें भी आँखें होती हैं

जीवनके खेलका एक एक परदा मानो उठता हो इस प्रकार मणि इस नवीन घरमें आई। उसके मनमें अपने पुराने जीवन को भुलाकर नया जीवन प्रारम्भ करनेकी उत्कट इच्छा थी जिससे एक प्रकारसे यह प्रबन्ध उसे कुछ जँचा। यदि दो तीन महीना

यहाँ किसी बाधाके रह सकूँ तो अवश्य ही मेरी चिन्ता दूर हो जायगी ऐसा उसके मनमें पूर्ण निश्चय हो गया। महात्मा विद्वान तेजस्वी पुरुष हैं। क्या उनके पवित्र आश्रममें रहनेसे सुख नहीं मिलेगा? महात्माके व्यक्तित्वके जादूने उसपर अपना ऐसा प्रभाव डाला था, उनकी मूर्त्ति जब कि उन्होंने अन्तिम बार सम्बोधन किया उस समय ऐसी प्रभावशाली प्रतीत हुई थी कि वह अब भी उसकी आँखोंके सामने नाच रही थी। महात्माको पुनः देखनेकी उसे उत्कण्ठा होरही थी।

इस कमरेमें आकर उसने उसकी बनावट देखी। कमरा सादा किन्तु सुन्दर था और इधर उधर दो एक चाँदीके पीढ़े पड़े हुए थे। मणि एकपर बैठकर अपने भविष्यपर विचार करने लगी।

थोड़ी देर बाद सिर ऊपर उठाकर उसने इधर उधर देखा।

सामने एक बड़ा शीशा लगा हुआ था जिसमें अपना चेहरा देखनेकी उसे इच्छा हुई, अतः उठकर उसके सामने वह जाकर खड़ी हो गई। उसके माथेपर छोटे छोटे बाल निकल रहे थे, बहुत दिन पश्चात् उसने अपनी आकृति देखा था। देखकर शर्माती हुई कुछ हँसी। उसका सुन्दर मुख कुछ सूख गया था और सिरपर काले भ्रमर जैसे बाल अद्‌भुत शोभा दे रहे थे। उसके गर्वका ठिकाना नहीं रहा—अपना रूप देखकर वह हँसी।

शीशेको देखकर वह घबड़ाई। आरसीके सफेद सतहपर एक काला दाग दिखाई देता था जो क्षणभरमें पारदर्शक हो जाता था। कुछ देर तक देखनेके पश्चात् मणिकी समझमें आ गया। आरसीके पीछे कोई खड़ा था जो पीछेसे, जहाँपर कलई छूट गई थी देख रहा था। मणिने उसे आनेका संकेत किया। पीछेसे वह व्यक्ति हट गया और कुछ ही क्षण बाद शीशा हटा। वह शीशा

दरवाजेपर जड़ा हुआ था जिससे उसके हटतेही दरवाजा खुल गया।

मणिके समझमें नहीं आया कि क्या करे। वह पीछे हटी। दरवाजेमें से एक स्त्री निकली जिसके मुखपर रूप,स्वस्थता, यौवन और लावण्य स्पष्ट दिखाई देरहा था। मणि तो उसे देखकर दंग रह गई। किन्तु नवीना स्त्रीकी आँखोंसे घबड़ाहट टपकती थी—क्षोभसे उसने चारो ओर आँखें दौड़ाईं और दाँत पीसकर धीरे से कहा—"यहाँसे भाग जा।"

मणि स्वभावसे ही चंचल थी। नवीन स्त्रीकी आकृति, इसके पूर्व कि शीशाके पीछे गायब हो, उसने शीशेको पकड़कर अपनी ओर खींच लिया। दरवाजा थोड़ा और खुल गया साथ ही मणिने उस रूपवती स्त्रीको एक साँस सीधे सँकरी गलीमें भागते हुए देखा, उसके हाथसे दरवाजा छूट गया। दरवाजेमें स्प्रिंग लगा हुआ था जिससे वह अपने स्थानपर जाकर बैठ गया।

मणि विचारमें मग्न स्वप्नवत् ज्योंकी त्यों खड़ी रह गई। इस स्त्रीकी सुन्दरता, उसके शब्द और उसके अन्तर्ध्यान होनेके कारणपर विचार करने लगी।

"भागजा" तब क्या कुछ छल है? मणि हँसी। संसारमें उसे लज्जा नहीं थी, कोई सगा सम्बन्धी नहीं था तब कोई दगा क्यों देगा? वह बिना किसी प्रकारकी घबड़ाहटके खड़ी रही। साथ ही इस भेदको जाननेकी उत्कण्ठा भी हुई।

वह पुनः उस दागको देखने लगी किन्तु उसमेंसे अब आर-पार दिखाई देरहा था। जिस दरवाजेसे वह आई थी वह खुला और महात्मा भीतर आये, उनकी आँखें हँस रही थीं।

"बेटी! तेरा नाम क्या है?"

"मणि।"

महात्माके कपालपर जरा सिकुड़न आई जो तुरत दूर हो गई। "ठीक है, चल, जिस कमरेमें तुम्हें रहना है उसे बता दूँ। लेकिन देखो मेरे यहाँ एक बहुत कड़ा नियम है कि जो कोई विचित्र बातें दिखाई दें उस सम्बन्धमें कभी कुछ पूछताछ मत करना। यहाँ अनेक रोगोंके रोगी रहते हैं।"

"जैसी आपकी आज्ञा।" मणिकी आँखके सामने उस स्त्रीका चित्र नाच गया। तुरत ही वह महात्माके पीछे भीतर चली।

——

७

देशोद्धारकी योजना

शहरके मध्यभागके मुख्य बाजारमें लगा हुआ एक बड़ा साइनबोर्ड लोगोंके ध्यानको अपनी ओर आकृष्ट कर रहा था।

उसपर बड़े सफेद अक्षरोंमें लिखा हुआ था:—"मदनलाल प्र० मारुति बी० ए० एल० एल० बी० एडवोकेट हाईकोर्ट" इस मकानमें विद्वान वकीलका आफिस था।

आफिसके कमरेमें एक बड़ा टेबुल पड़ा हुआ था जिसपर कागजके पुलिन्दे रखे हुए थे। वकील साहबने अभी नाश्ता किया था क्योंकि तश्तरी और बिस्कुटका चिकना कागज टेबुलके एक कोनेपर पड़ा हुआ था। आज रविवार था जिससे इस मन्दिरके देवता टेबुलके पीछे नाकपर चश्मा चढ़ाये हुए, मुँहमें सिगरेट दबाए, टेबुलपर दोनों पैर रखकर हाथमें कापी लिए हुए अपने आय-व्ययका हिसाब देख रहे थे। हिसाब अत्यधिक सन्तोषजनक मालूम पड़ता था जिससे वकील साहबके मुँहपर मुस्कुराहट दिखाई पड़ रही थी। टेबुलपरसे पैर उतारकर उसपर हाथ पट-

करते हुए वह बोल उठे—खूब ! यदि इसी प्रकार चले तब तो बन्देका बेड़ा पार हो जाय।

उनका शरीर ठिंगना, स्थूल और काला था, आँखें बड़ी, मुँह जरा चौड़ा भद्दासा था, आवाज बुलन्द, नाक घिसते घिसते बैठी हुई फैलकर ओंठको छू रही थी। अपनी बड़ी बड़ी मूछोंको मरोड़ मरोड़कर कैसरकी मूँछोंके समान बनानेके प्रयत्नमें उसका एक कोना ऊपर उठ गया था जब कि दूसरा कोना टससे मस नहीं होता था जिससे ऐसा मालूम होता था कि नाटकके किसी पात्रने झूठी मोंछ लगाई हो जिसका एक कोना खींच जानेसे नीचे गिर गया हो।

नवीन शिक्षा एवं नवीन कहे जाने वाले जोश—इन दोनोंके ये ठीक ठीक प्रतिमूर्ति थे। बम्बईके कालेजमें जब ये अध्ययन कर रहे थे तभीसे अपनी महत्वाकांक्षाओंकी पूर्त्तिके साधन एकत्र करते आरहे हैं। कभी ये बम्बईके प्रार्थना समाजमें होनेवाले भाषणोंके नित्य श्रोता थे एवं रानडे, तेलंग, चन्दावरकर आदि द्वारा उच्चारित यथेष्ट सुधारसूत्रोंको इन्होंने कंठस्थ कर लिया था। साथ ही ये यह भी मानते थे कि अपने गिरे हुए सांसारिक-जीवनको भूतकालके अंग्रेजी लेखकोंके परामर्शके अनुसार पाश्चात्य सभ्यता के समान बनाना अत्यावश्यक है। इनकी बातचीतसे यह भी तुरत ज्ञात होजाता था कि जीवन-सुधारकी अनेक संस्थाओंके मंत्रियोंपर अनुग्रह करनेकी सदिच्छासे बिना वेतन कार्य करनेकी अभिलाषा भी ये कईबार कर चुके हैं और परिणाम स्वरूप अपने सहपाठियोंके लोकसे उठकर नेताओंके स्वर्गमें पहुँच जानेका अधिकार भी इन्होंने प्राप्त कर लिया था।

स्वयं पुराने विचारानुसार पारिवारिक जीवन बितानेवाली स्त्रीका पति होते हुए भी इनके पास प्रतिदिन मुसलमानी पावरोटी

पहुँचती थी। यद्यपि इन्होंने पुराने विचारकी अंधश्रद्धा छोड़ दी थी किन्तु नये विचारकी उदारता अथवा निस्वार्थता ग्रहण नहीं की थी। इनकी पाल रहित जीवन-नौका पवनके झोंकेसे इधर-उधर डोलती फिरती थी।

वकालत पास करनेके पश्चात् गरीबी एवं उच्च आकांक्षाओंके बीचमें जकड़े जाकर बम्बई हाईकोर्टके न्यायाधीशपर अपनी बुद्धिमत्ताकी छाप बैठा न सकनेके कारण यहीं अपने घरपर बड़ा साइनबोर्ड लगाकर रहेमू नामक छोकड़ेको 'बॉय' बनाकर अपना कार्य इन्होंने प्रारम्भ किया। वकालत चल गई अतः सरकारी वकील एवं नगर-सुधारक—इन दोनों पदोंकी प्राप्तिके लिए मारुति साहब दृष्टि लगाये हुए बैठे थे।

मि० मारुति उठकर खिड़कीकी ओर गये और दो चार व्यापारियोंको मकानकी तरफ आते हुए देखकर सोचने लगे कि ये मुकदमेबाज हैं या नहीं किन्तु इतने ही में वे लोग इनके मकानके दरवाजेके पाससे होकर निकल गये और प्रश्नका निर्णय गहरे निश्वासके साथ अधूरा ही रह गया। इसके पश्चात् एक गृहस्थको दरवाजेमें घुसता हुआ देखकर मि० मारुति चौंक उठे, तुरत पीछे हटे और बिजलीके समान आकर टेबुलके पास कुर्सीपर बैठ गये, दोचार फाइलोंको टेबुलपर फैलाकर उनमेंसे एकको उठाकर पन्ना उलटकर सिरपर हाथ देकर, सिरपर बल डालकर मानो बड़े ध्यानसे पढ़ रहे हों, इस प्रकार उसपर आँख गड़ाकर पढ़ने लगे। उस मनुष्यने दरवाजेके पास आकर पूछा—क्या मैं भीतर आ सकता हूँ?

मारुतिने इसका कुछ भी उत्तर नहीं दिया। वे दिखावटी रीतिसे उस फाइलमें ही आँख गड़ाये हुए बैठे रहे। आगन्तुकने पुनः अधिक जोरसे पूछा।

मारुति मानो इस प्रश्नसे चौंक उठे हों इस प्रकार कपालपर और भी बल डालकर सिर ऊपर उठाकर बोले—कौन......ओ हो डाक्टर, आप हैं! धन्यभाग!

"हा, हा, हा" करते हुए डाक्टर धनेशचन्द्र सर्पगतिसे भीतर आये। डाक्टर भी मारुतिका समवयस्क किन्तु सूखा, चिन्ताग्रस्त, घबड़ाया हुआ, थोड़ी कमाईपर बड़ा आडम्बर करनेवाला, कुछ उन्नतिशील एवं जल्दी ही आवेशमें आजानेवाला व्यक्ति था।

"हलो मिस्टर मारुति! तुम्हें तो दिन रात जब देखो तब कामही काम रहता है। नौन्सेन्स! जरा दूसरा कामकाज भी देखना सुनना चाहिये। आज रविवारके दिन भी यह......"

"क्या करूँ?" मि० मारुतिने फाइलको दूर रखनेका आडम्बर रचते हुए कहा "मुझे तो तुम्हारी तरह दो चार पानीकी बोतलें भरकर रख लेनेका काम है नहीं? मेरा काम तो बड़ी मगजपच्चीका है।"

"बस-बस रहने दो! इस समय मैं बहुत ही जरूरी कामसे आया हूँ। समस्त प्रजाके लाभकी बात है। अपने शहरमें भी तो कुछ करना चाहिए।" डा० धनेशचन्द्र इस प्रकार बोले मानों शब्द पर शब्द मुँहसे उछल उछलकर निकले पड़ते हों।

"मेरा भी यही अभिप्राय है। किन्तु दोस्त करो तो कोई ऐसा काम करो जिससे स्वार्थ और परमार्थ दोनों सधे। केवल परमार्थमें मुझे श्रद्धा नहीं रही।"

"जाओ! हटो! यह क्या बक रहे हो? कोई सुन ले तो क्या कहेगा? पहले तुम्हें रुपये कमानेकी इच्छा थी वह तो पूरी हो गई; अब तो कुछ परमार्थ करना चाहिये।"

"हा, हा, हा!" कुर्सीपर उछलकर बैठते हुए मारुतिने कहा

"डाक्टर ! ये सब भाषण तो प्लैटफार्मके लिए हैं। अब साफ साफ बात कहो नहीं तो रात हो जायगी।"

"बहुत ठीक ! किन्तु अगर कोई हमारी बातें सुन लेगा तो सब काम ही बिगड़ जायगा।"

"कौन सुनेगा ? यह बिलकुल 'प्राइवेट' रूम है। देखो डाक्टर ! अब हमें कोई काम शीघ्र ही शुरू कर देना चाहिए।"

"बेशक ! इसीसे मैंने विचार किया है कि एक 'जिला एसोसिएशन' कायम किया जाय। आजकल इसकी विशेष आवश्यकता मालूम होती है। तरफदारसे भी कहता आया हूँ।"

"कैसे पागल हो गये डाक्टर ! तुम्हें तो सरकारकी परवाह नहीं है किन्तु मुझे तो......"

"तुम्हें भी क्या मुंसिफ होना है ? भाग लो पोलिटिक्समें; कांग्रेसमें सम्मिलित हुए बिना काम नहीं चलने का।"

"क्षमा करो ! छः महीनेमें सरकारी वकीलकी जगह खाली होने वाली है। हाँ, इसे छोड़कर और दूसरी कोई योजना हो तो मैं तैयार हूँ ; इसमें तो काम किए बिना ही सरकारकी आँखोंमें गड़ने लगूँगा ? यदि ऐसा ही है तो एक 'समाज उद्धारिणी सभा' कायम की जाय, इससे नाम करनेका अच्छा अवसर हाथ लगेगा।"

"जाओ ! बस ! यह किस कामका ? तुम वकीलों को तो केवल बातें करने आता है। कोई 'प्रैक्टिकल' काम करना चाहिये।"

"प्रैक्टिकल' को जाने दो, अभी तो केवल पैसा पैदा करनेमें ही समय लगाना चाहिये।" वकील साहबने जवाब दिया।

"नहीं, देखो मेरा विचार यह है कि एक अनाथाश्रम खोला जाय इससे हम लोगोंको भी सुख होगा और यश भी मिलेगा। क्यों, समझे ?" डाक्टरने कहा।

"जी हाँ ! जिससे चन्दा माँगनेके बहाने तुम्हारे रोगियोंकी संख्या बढ़े।

"तो क्या समाज उद्धारिणी सभा बनाकर तुम्हें भाषण करने के लिए स्थान दिया जाय।"

"अवश्य ! नहीं तो व्यर्थ यह काम ही कोई क्यों करेगा ?"

"नहीं, यह तो नहीं हो सकता। ऐसी बेकामकी संस्थाको तो मैं किसी प्रकारकी सहायता नहीं दे सकता।"

"तब कृपानिधान ! कौनसा सत्यानाश हो जायगा ?" कहकर मारुतिने अपनी टाँगे टेबुलपर लम्बी फैला दी।

"किसका सत्यानाश होगा ?" कहता हुआ एक तीसरा गृहस्थ आया।

"कौन ? तरफड़दास !" दोनों एक साथ बोल उठे।

"जीहाँ ! स्वयंसेवक हाजिर है।" सिर नमाते हुए तरफड़-दासने पूछा "क्यों, क्या बातें हो रही हैं ?"

"हमारे बीचमें झगड़ा चल रहा है" डाक्टर धनेशचन्द्रने कहा "मैं कहता हूँ कि अनाथाश्रम खोला जाय और ये कह रहे हैं कि समाज-उद्धारिणी-सभाकी स्थापनाकी जाय। इसमें सम-झौता होनेकी कोई गुञ्जाइश नहीं है। हमारी सब योजना नष्ट हो गई। मि० मारुति दिनोंदिन अत्यधिक स्वार्थी होते चले जारहे हैं।

"नौन्सेन्स डाक्टर !" मि० तरफड़दास कुर्सीके बदले टेबुल के एक कोनेपर बैठते हुए बोले "संसारमें स्वार्थ जैसा तो पदार्थ ही मेरे देखनेमें नहीं आता। मैं भोजन करता हूँ तो वह भी संसारके लाभके लिए। किन्तु तुम्हारा झगड़ा क्या है यह तो बताओ।"

"बोलो डाक्टर ! मि० तरफड़दास चौथी राज्यसत्ताके प्रति-निधि हैं।"

"क्यों भाई, यह क्या ?" तरफड़दासने पूछा "मेरा ज्ञान तो अपने कार्यालयके बाहर गया ही नहीं।"

"आपके आत्मज्ञानके लिए धन्यवाद ! समाचारपत्रको चौथी राज्य-सत्ता कहते हैं।"

"जी, आगे कहिये।"

"वही जो डाक्टरने कहा है।"

"उसका रास्ता बताऊँ ?"

"क्या है ?" डाक्टरने पूछा।

"एक समाज-उद्धारिणी-सभाकी स्थापना करो जिसके अंतर्गत एक अनाथाश्रम खोलो, कहो ठीक है ?"

"बहुत ठीक, मेरे मित्र तरफड़ीया !"

"खबरदार मारुति ! बेवक्तका मजाक मुझे अच्छा नहीं लगता।"

"तब यही ठीक रहा ! क्यों मिस्टर धनेशचन्द्र, तुम क्या कहते हो ?"

"बात तो ठीक है, किन्तु 'प्रैक्टिकल' काम कौनसा करोगे ?"

"ओ हो ! यह बात है ?" तरफड़दासने कहा "समाज-उद्धारिणी सभाकी तरफसे मेरे 'मार्त्तण्डप्रकाश' में एक विज्ञापन दो।"

"क्या ?"

"कि एक अच्छे घरकी रूपवती विधवाकी आवश्यकता है, विधुर एक सम्भ्रान्त उच्चकुलके युवक हैं।"

"बादमें यदि कोई आवेदन पत्र भेजे तब ?" डाक्टरने पूछा

"अरे, ऐसा निठल्ला कौन बैठा है ! अच्छे कुलकी कोई विधवा आवेदन पत्र भेजेगी ही नहीं और यदि कोई भेजे तो वह अच्छे कुलकी नहीं !"

"शाबाश, शाबाश" टेबुलपर हाथ पटकते हुए मारुति ने कहा।

"और यदि सचमुच कोई आ भी जाय, तो उसके लिये हमारा डाक्टर तैयार है।"

"कौन ? मैं !" चिल्लाते हुए डा० धनेशचन्द्रने कहा "मैं विधवाके साथ विवाह करूँगा ?"

"प्रैक्टिकल काम डाक्टर !" मि० मारुतिने कहा।

"चूल्हेमें गया तुम्हारा 'प्रैक्टिकल' काम ! किन्तु कोई हर्ज नहीं। कोई आ गया तो मण्डलीमें से कोई खोज निकालूँगा। तो अपने आगामी अंकमें निकाल दो।"

"हाँ, किन्तु पहले मीटिंग करके समाज-उद्धारिणी-सभाकी स्थापना करनी पड़ेगी। सब काम नियमानुसार करना होगा साथ ही समाचार पत्रमें विज्ञापनके लिए मुझे पैसा भी चाहिये।

"बिलकुल ठीक बात है।" मि० मारुतिने कहा "किन्तु देखो भाई, मैं और डाक्टर सहमंत्री रहेंगे।"

"मैं खजाञ्ची रहूँगा।" तरफड़दासने कहा "मार्त्तण्डप्रकाशको इस समय रुपयेकी बहुत आवश्यकता है।"

"चलो, तब ठीक रहा।" डाक्टरने कहा।

"और सभापति कौन बनेगा ?"

"रायसाहब गम्भीरलाल, क्यों कैसी रही ?" डाक्टरने पूछा।

"हाँ, यह भी ठीक है। इन्होंने मुझे कलेक्टर साहबके पास ले जानेका वचन दिया है।"

मारुतिने कहा "चलो, यह भी बहुत ठीक कहा। बोय ! बोय !"

बड़ी कठिनतासे सामने पानवाले की दूकानपर बैठकर बीड़ी पीता हुआ मीयाँका छोकरा, जो मारुति द्वारा 'बोय' की पदवी

धारण करता था, बुलाया गया और उसीके द्वारा निकटस्थ होटलवालेको समाज-उद्धारिणी-सभाके जन्म-महोत्सवके उपलक्ष्य की आवश्यकीय सामग्री प्रस्तुत कर भेज देनेका तीनोंने आदेश दिया।

"इन होटलोंसे कैसा लाभ है!" डाक्टरने कहा।

"हाँ जी! यदि मेरा वश चले तो अपनी सभाका सभापति रेवाशंकर होटलवालेको बनाऊँ। वे बहुत 'प्रैक्टिकल' काम करने वाले हैं।" मारुतिने कहा।

"खबरदार! मेरा मजाक उड़ाया तो...।" डाक्टरने कहा।

८

महायोगीके आश्रम में

महायोगीने मणिको अन्दर लेजाकर एक पार्षदको सौंपते हुए कहा—रघुनाथ इस महिलाको १२ नम्बरका कमरा दिया गया है, इन्हें वहाँ पहुँचा दे।

"जैसी आज्ञा महाराजकी!" कहकर रघुनाथ मणिको ले गया। वह नौकर जरा मसखरा मालूम होता था, महाराज का गुणगान करता हुआ आगे बढ़ा।

मणिको एक बात अत्यधिक विचित्र मालूम हुई। घरकी बनावट ऐसी थी कि जिस मार्गसे वह जारही थी उस ओर किसी कमरेका भी दरवाजा नहीं पड़ता था। बीचमें एक सीढ़ी आई जिसे दिखाते हुए रघुनाथने कहा—यहाँसे नीचे जानेपर भक्तोंको पढ़नेके लिए एक पुस्तकालय मिलेगा, उसके दूसरी ओर अन्य भक्तोंका निवास-स्थान है।

"तब यहाँ कौन रहता है?"

"यहाँ तो बड़े भक्त रहते हैं, यह आपका बड़ा भाग्य है जो एकदमसे महाराजने यहाँ ला रखा। महाराजकी कृपा चाहिये।" कहकर वह नौकर हँसने लगा।

"किन्तु यहाँ तो कोई दिखाई नहीं पड़ता ?"

"वह दिखाई कैसे दें ? सभी बड़े सिद्ध योगी हैं। कोई किसीसे मिलता जुलता थोड़े ही है।"

यह सुनकर मणिको आनन्द हुआ। उसने महात्माका बड़ा उपकार माना। उसे एकान्तमें ही रहना पसन्द था उसकी दृष्टिके सामने पहलेके अनुभवके चित्र आये जिससे उसने एक ठण्ढी साँस ली।

जो कमरा मणिको दिया गया था वह छोटा होने पर भी हवादार और सुन्दर था। उसमें सर सामान कम लेकिन अच्छे थे। पास ही में छोटी कोठरी थी जिसमें रसोई बनानेका प्रबन्ध था।

"क्या मुझे यहीं भोजन बनाना होगा ?"

"श्रीमतीजी ! महाराजके जो महाभक्त होते हैं वे सब इस मकानमें उनके चरणारविन्दके पास रहते हैं, वे सभी संयमी होते हैं जिससे दूसरेके हाथका बनाया हुआ भोजन करना वे पसंन्द नहीं करते। दूसरी ओर सामान्य भक्त जनोंके लिए एकत्र भोजन बनानेका भी प्रबन्ध है।"

"ठीक है, मैं निश्चिन्त हुई। ओहो !" दरवाजा खोलकर मणि बोली "इसके पीछे तो एक छोटीसी अलग बगिया भी है।"

"जी हाँ !" कहकर रघुनाथ वहाँसे चला गया।

सुखका स्वाद लेनेके लिए मणि दरवाजेसे पीठ लगाकर बैठ गई। जन्म लेनेके पश्चात् आज ही पहले पहल ऐसा सुखदायी आनन्द उसे मिला था। वह वायु सेवन करने लगी साथ ही

धीमे स्वरमें कुछ गाने भी लगी। सुरेखा की याद आनेपर धीरे-धीरे गाना बन्द कर वह कुछ सोचमें पड़ गई। यदि महाराज आज्ञा दें तो उसे भी मँगवाकर अपने पास रखनेका विचार हुआ। दृष्टिके सामने महाराजकी मूर्त्ति आ खड़ी हुई। वह बड़ी ही आकर्षक लगी, पल भरमें उसने उस मूर्त्तिको मनमेंसे निकाल बाहर करनेका प्रयत्न किया किन्तु मन मानों किसीकी आज्ञाके वशीभूत होकर एक ही प्रवाहमें बहता हो ऐसा उस मूर्त्तिको याद करनेमें ही ध्यानस्थ रहा। धीरे-धीरे वह स्तब्ध होकर दरवाजेके बाहर देखने लगी। उसे वहाँ पर सदेह महाराज खड़े हों ऐसा दिखाई देने लगा फिर भी यह स्वप्नवत् मालूम होता था। आध घंटे तक मणिकी यह स्थिति बनी रही।

इसके पश्चात् ही मन एकदम जैसे स्वतन्त्र हो गया हो ऐसा ज्ञान हुआ, स्वप्नावस्था जाती रही। उसने अपने आसपास चारो ओर देखा—वह अकेली थी। उसका मन ऐसा निर्बल हो गया है यह उसे पहले ही पहल आज ज्ञात हुआ। उठकर उसने इधर उधर कुछ चहलकदमी की। थोड़ी ही देर पश्चात् रघुनाथ भोजन बनानेकी सामग्री ले आया।

"रघुनाथ! महाराजका नाम क्या है?"

"श्रीमतीजी! उनका असली नाम क्या है यह कौन जाने? बालाराम या ऐसा ही कुछ था। क्या आप पढ़ लिख सकती हैं?"

"हाँ"

"महाराज ने, जो पुस्तक आप चाहें लाकर आपको देनेके लिये हुक्म दिया है।"

"इस पुस्तकालयमें से?"

"जीहाँ, न हो तो आप ही स्वयं जाकर अपने पसन्दकी ले आइयेगा।"

"नहीं, नहीं तुम्हीं ले आना, जो लाओगे उसीसे काम चल जायगा।"

भोजन बना, खा पीकर मणि सो गई, संध्या समय वह भजनमें गई, रात्रिमें आरतीमें उसने भाग लिया और पीछे अपने कमरेमें आ गई।

वह सोने जारही थी कि पुनः उसका मन अस्थिर होकर महाराजकी मूर्तिकी ओर खिंच गया। प्रातःकाल जो दशा हुई थी उसीकी पुनरावृत्ति हुई। मणिने बड़ी दृढ़ताके साथ उस असर को दूर करनेका प्रयत्न किया किन्तु उस अद्भुत कांतिवान महात्माकी भव्य-मूर्त्ति इस प्रकार उसके मनमें रमी रही मानों सामने उपस्थित हो। थोड़े ही समय बाद वह मूर्त्ति एकाएक अदृश्य हो गई और उसका मन पुनः इससे मुक्त हो गया।

महाराजके प्रति उसे कुछ घृणा हुई साथ ही अपने निर्बल मनको भी वह धिक्कारने लगी। इस प्रकार वह उनका क्यों चिन्तन करती है ? रात्रिमें स्वप्नमें भी उसे महाराज दिखाई दिये।

दूसरे दिन भी मणिने इसी प्रकार अपना जीवन प्रारम्भ किया। सबेरे प्रवचनमें, संध्या समय भजनमें और रात्रिमें आरतीमें वह महाराजको देखती, उनके शब्द सुनती और दिन भर पुस्तकालयकी पुस्तकोंका उपयोग करती थी। प्रातःकाल महाराज रघुनाथ द्वारा कुछ गोलियाँ और मिश्री प्रसादके तौर पर भेजते थे जिसे वह खाती थी। इसके अतिरिक्त महाराज कुछ भी ध्यान उसकी ओर देते हों ऐसा मालूम नहीं होता था।

मणिको प्रायः उस रमणीके विषयमें सब बातें जाननेकी उत्सुकता होती थी किन्तु प्रवचन अथवा भजनके समय वह दिखाई नहीं देती थी और यदि वह वहाँ उपस्थित भी रहती हो तो उसे पता नहीं लगता था क्योंकि वहाँ बहुत सी स्त्रियाँ घूँघट

काढ़कर बैठी रहती थीं उनमें वह भी एक हो सकती थी। उस कमरेमें भी वह कई बार गई किन्तु शीशेवाले दरवाजेको उसने कभी हटते हुए नहीं देखा और साथमें सदैव मोहनके रहनेसे शीशामेंसे देखनेका उसे अवसर भी नहीं मिलता था।

दो तीन दिनमें मणिके शरीरमें आश्चर्यजनक परिवर्त्तन होने लगा। रगरगमें खून दौड़ने लगा। पीलापन दूर होकर ललाई आने लगी। उसके अंग अंगमें सौन्दर्यकी छटा छूटने लगी। उसे भी बड़ा आश्चर्य हुआ। महाराज द्वारा भेजे जानेवाले प्रसादमें कुछ औषधि होनेका उसे सन्देह हुआ किन्तु इस नवीन जीवनमें उसे कुछ ऐसा आनन्द मिल रहा था कि उस ओर उसने विशेष ध्यान नहीं दिया। समस्त दिन भजन और पुस्तक-पठनमें बितानेसे उसके मनकी शांति भी कुछ बढ़ी। दस ही दिनमें उसके मानसिक शक्तिकी मर्यादा बहुत कुछ बढ़ गई।

६

समाज उद्धारिणी सभाको स्थापना

लगभग पाँचबजे शहरके प्रसिद्ध पुस्तकालयके हॉलमें कुर्सियाँ लगाकर मि० तरफड़दास और डा० धनेशचन्द्र अधीर हो सभाजनोंकी वाट जोहते हुए बैठे थे। डाक्टर साहब तो बिलकुल ही अधीर.होकर बारबार उठकर इधर उधर चहलकदमी करने लगते थे, फाटकके पास जाकर खड़े होते थे और पुनः तरफड़दास की ओर मुड़ते थे।

"तरफड़दास! आज जो 'फार्स' (प्रहसन) होनेवाला है, उसमें कोई आया क्यों नहीं? विज्ञापन तो तुमने ठीक ठीक दिया था न?" पचीसवीं बार डाक्टरने पूछा।

"तब क्या मजाक किया था ?" यदि कोई नहीं आया तो फजीहत होगी तुम्हारी, मेरा क्या।"

"लोग भी कैसी समझके हैं ? सुधारके लिए प्रयत्न किया जाता है तो लोग सुधरते नहीं। किन्तु यह तो बताओ कि अब किया क्या जाय ? मैं पाठशालाके हेडमास्टरसे कह आया हूँ जिससे वे कुछ लड़कोंको साथ लेकर अवश्य ही आवेंगे।"

"तब कोई आता क्यों नहीं ? रावसाहब गम्भीरलाल तो आते ही होंगे, देखना मजा।" यह कहकर तरफड़दास जरा हँसे।

"और देखो वह मारुति भी अभी तक दिखाई नहीं देता, न मालूम कहाँ मुँह छिपाये बैठा हुआ है ? ऐसे समय भी आलस !"

साथ ही वरका बड़ा बाप बननेके लिए हमेशा सबसे पहले तैयार रहता है। अच्छा, हार तो लाये हो न ?"

"हाँ, लेकिन इसका होगा भी क्या ? कोई आया तो है ही नहीं।"

"लो ! यह सद्गृहस्थ आ गया।"

एक दस वर्षका बालक, मुँहमें धूल पोते हुए, एक हाथमें बाइसिकिलकी टूटी हुई पहिया और दूसरेमें उसे दौड़ानेके लिए छड़ी लिए हुए आया।

"हाँ, इसे तो मैं जानता हूँ, मगन ! ओ मगन !"

"क्या है ?" घबड़ाता हुआ वह बालक आगे आकर खड़ा हो गया। उसने एक दो बार दरवाजेकी ओर भी देखा, वह मनमें सोच रहा था कि अगर डाक्टर मारे अथवा धमकावे तो रफूचक्कर होनेमें कुछ सुगमता मिल सकती है या नहीं।

"मगन ! तेरे संगी-साथी कहाँ हैं ?"

"कौन जाने ?" प्रश्नका कारण न समझकर नकारात्मक उत्तर देना ही उसने उचित समझा।

"सबको जहाँ हों तहाँसे बुलाला तो एक पैसा दूँ" तरफड़दास बीचमें बोल उठे।

"हाँ!" डाक्टरने कहा "जा जितने लड़कोंको ले आवेगा उतना पैसा दूँगा, लेकिन जल्दी कर।"

बालक उनकी ओर देखता रहा। खेलाड़ी लड़कोंका मूल्य इतना बढ़ गया है यह देखकर उसके आश्चर्यका ठिकाना न रहा। वह मुँह बाये वहीं खड़ा रहा।

"देख क्या रहा है?" तरफड़दासने एक हलकी चपत मारते हुए कहा "जा ले, यह एक पैसा पहलेसे दिये देता हूँ, दौड़" इधर उधर देखे बिना लड़का पैसा लेकर भागा।

"डाक्टर! क्या बजा?"

"पाँच बजकर बीस।"

"तब क्या किया जाय। अच्छा, तुम यहाँ खड़े रहो, मैं अभी आता हूँ।" तरफड़दासने कहा।

"अरे! मुझे यहाँ क्या अकेला छोड़ जाओगे?" डाक्टरने कहा "तो मैं भी चला, मुझे क्या अपने लड़केका विवाह करना है?"

"नहीं, बल्कि तुम्हें स्वयं अपना विवाह करना है न।" तरफड़दासने उत्तर दिया "जरा ठहरो, मैं सामने होटलमेंसे कुछ आदमियोंको बुला लाऊँ।"

यह कह तरफड़दास वहाँसे तेजीसे चले गये। उनकी बुद्धि तीव्र थी। वे सामनेके विश्रांतिगृहमें गये, एक कप चा का आर्डर दिया। आसपास बैठे हुए लोगोंपर एक नजर डाली। लगभग दस-बारह मनुष्य भिन्न-भिन्न प्रकारकी सामग्रीका उपयोग कर रहे थे।

"दोस्त गुमानसिंह! मीटिंगमें चलते हो क्या?" बुलन्द आवाजमें तरफड़दासने एक व्यक्तिको संबोधन करते हुए कहा।

उसने आइसक्रीमकी रकाबीमेंसे सिर ऊपर उठाकर देखा।

"कौन ? अधिपति साहब ! नहीं मिहरबान, मुझ गरीबको मीटिंगसे क्या सरोकार ?"

"किन्तु आज तो बड़ा मजा है।"

"क्या ?"

"उस महायोगी महाराजका आज भण्डाफोड़ होनेवाला है न'

"हाँ !" कहकर गुमानने फिर ऊपर देखा, साथ ही वहाँपर बैठे हुए सभी लोगोंका ध्यान उस ओर आकृष्ट हो गया, वे भी कान लगाकर सुनने लगे।

"हाँ, मि० मदनलाल मारुति और डाक्टर धनेशचन्द्र आज उसका सब भंडाफोड़ करने वाले हैं। मैंने तो यह भी सुना है कि कोई विधवा आज भाषण करनेवाली है।"

"क्या कहते हो ?" कहते हुए एक दो व्यक्ति टपाटप पैसा देकर अपना हिसाब चुकाने लगे।

"नहीं बाबा ! मैं तो सरकारी नौकर हूँ" गुमानने अपना भय प्रकट करते हुए कहा "व्यर्थ यदि किसीको मालूम हो गया कि पब्लिक मीटिंगमें गया था तो वेतन-वृद्धि भी रुक जायगी।"

"अरे पागल हो गये हो ? यह मीटिंग तो सरकारकी तरफसे ही की गई है। स्वयं मामलतदार साहब इसके सभापति हैं।"

"ऐसा ? तब तो अवश्य आऊँगा।"

"हाँ ! अवश्य, ऐसी सभा फिर दस बीस वर्ष तक देखनेको भी न मिलेगी।" कहकर तरफड़दास वहाँसे चले।

वहाँ बैठे हुए व्यक्ति एक दूसरे का मुँह ताकने लगे। सबके मनमें उत्कण्ठा थी, यह स्पष्ट दिखाई दे रहा था। धीरे धीरे सभी उठ गये और पुस्तकालय के सभाभवनमें गये। सभी की नजर हॉल में चारो तरफ तरफड़दास द्वारा कही हुई विधवाकी

खोजमें थी किन्तु दिखाई न पड़ने से लोगों को कुछ निराशा हुई फिर भी उसे देखनेकी आशासे लोग धीरे धीरे बैठ गये।

इसके पहले ही हेडमास्टर और मामलतदारसाहबके आफिस के कार्यकर्तागण, जो साहब बहादुरको किसी भी प्रकारसे प्रसन्न करनेके लिए सदैव तत्पर रहते थे, आ गये थे। मगन ने भी अपना काम सफलतापूर्वक पूरा किया था। आठ-दस लड़कोंका महान सैन्य-दल एक एक पैसा पानेकी आशासे आकर पीछे बैठ गया था। इस तरह सभामें तीस पैंतीस व्यक्ति एकत्र हो गये। थोड़ी देरमें मदनलाल मारुति कोटका बटन खोले, मुस्कुराते हुए, बन्दरमें जैसे स्टीमर आवे, उसी प्रकार आये। आकर उन्होंने वहाँ एकत्रित सब लोगोंपर एक दृष्टि डाली, किसीको संकेतसे तो किसीको हास्यसे, किसीको हाथ उठाकर तो किसीको सिर हिलाकर नमस्कार किया और सभापतिके लिए रखी हुई कुर्सीके पासवाली कुर्सीपर जाकर जम गये। उसने ऐसा ठाठ बनाया मानों यह सभा उन्हींके सम्मानार्थ ही वहाँ एकत्र हुई थी।

पौने छः बजे सभापति महोदय पधारे। रायसाहब गम्भीर-लाल ऊँचे कद शुभ्रवर्ण और भव्य कांतिवाले व्यक्ति थे। उनका रोब शहर भरमें था; साथ ही अपनी चिकनी-चुपड़ी मीठी बातोंसे उच्च अधिकारीवर्गको भी वह प्रसन्न रखते थे। इन्हीं कारणोंसे पैंतीस वर्षके इस छोटी उम्रमें ही उन्होंने अच्छा यश प्राप्त कर लिया था और लोगोंकी धारणा थी कि अभी वे और ऊँचा पद पावेंगे। उनके आते ही सभाके सभी लोग—मगनकी सेनादलको छोड़कर खड़े हो गये।

सभाका कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ। हेडमास्टरने सभापति महो-दयसे सभापतिका पद ग्रहण करनेकी प्रार्थना की, अहलकारोंने अनुमोदन किया और गम्भीरलाल सभापतिके आसनपर जाकर

विराजमान हो गये। इसके पश्चात् मदनलाल मारुतिने गंभीर स्वरमें भाषण प्रारम्भ किया, सभा करनेका कारण सबको समझाया। इसी समय मगन और उसके एक साथीमें कुछ कहा-सुनी होती हुई सुनाई दी किन्तु तुरत तरफड़दासके वहाँ पहुँच जानेसे यह विग्रह शान्त हो गया। मारुतिने पश्चात् अपनी अधोगतिपर विवेचन किया, प्रैक्टिकल कदम न बढ़नेकी भर्त्सना की, विधवाओंके दुःखपर कुछ आँसू बहाया, सभाजनोंको सूचित किया कि यदि संसार उनकी उत्तम बुद्धि—अर्थात् मारुति, धनेशचन्द्र और तरफड़दास रूपी त्रिमूर्त्तिकी बुद्धिके अनुसार कार्य नहीं करेगा तो अवश्य पछताना पड़ेगा। सद्भाग्यसे इस शहरके लोगोंकी भी सद्बुद्धि उत्पन्न हो गई जिससे यह सभा आज यहाँ हुई है और भविष्य में अपना सांसारिक-जीवन कुछ सुधर जाने की आशा है इस प्रकारके भी अपने कुछ विचार उसने प्रकट किया।

इसी समय होटलमें से आये हुए दो गृहस्थ अपनी धारणाके अनुसार कार्यक्रम न होते देखकर जानेके लिए उद्यत हुए। तुरत तरफड़दासने, जैसा कि पहले उन्हें सूचित किया था, महायोगी पर आक्षेप करना प्रारम्भ किया और आध घण्टेमें अपने वाक्जालसे, श्रोताजनोंकी संपूर्ण सहानुभूतिके साथ, उन्हें विश्वास दिला दिया कि सभी साधू पाखण्डी और झूठे हैं और सिद्ध किया कि वे सच्चे सेवक हैं जिससे दुनियाका उत्थान हुए बिना अब रह नहीं सकता। इन सिद्धान्तोंको कहनेके पश्चात् समाज-उद्धारिणी-सभा का उद्देश्य बताते हुए उसकी स्थापनाके लिए प्रस्ताव किया। सभाजनोंने तालियाँ पीटकर और मगनके सैन्यदलने चिल्लाहटके साथ उनका साथ देकर इस प्रस्तावका स्वागत किया।

धनेशचन्द्रने भी इस प्रस्तावका अनुमोदन किया। जो कुछ

कहना था वह झटपट कह गया और अंतमें यह भी कहा कि इस समाज-उद्धारिणी सभाके अन्तर्गत एक अनाथाश्रम खोलनेका भी आयोजन है जिसके द्वारा कुछ प्रैक्टिकल कार्य भी करके लोगोंको दिखाना है। सभापति महोदयने इसके बाद अपना कार्य प्रारम्भ किया और घोर परिश्रमसे तैयार किए हुए, अत्यधिक पठनके परिश्रम स्वरूप, बड़े-बड़े विद्वानोंके कठिन शब्दोंसे भरपूर एक भाषणको इस विद्वान् और अपनी जिम्मेदारी समझनेवाली सभाके सामने पढ़ा।

तरफड़दासने सभापतिको धन्यवाद दिया। किसीने उसे भी धन्यवाद दिया या नहीं यह लोगों की गड़बड़ीमें सुनाई नहीं दिया। मारुतिने सभापतिजी को हार पहनाकर धीरे से पूछा—क्या आपको कलेक्टर साहबके यहाँ चलनेका अवकाश है ? होतो आऊँ।

"हाँ, जरूर" कहकर सभापतिजीने अभिवादन किया, सभाभवन गूँज उठा और इस प्रकार शहरके उद्धारके लिए किये गये भगीरथ प्रयत्नका ढोंग समाप्त हुआ।

वहाँ केवल तरफड़दास और डाक्टर रह गये। तरफड़दासने हाथ बढ़ाकर कहा—"क्यों मित्र ! कैसी सफलता मिली, इसका तो मुझे पहलेसे ही पूरा विश्वास था।"

"हाँ जी, सत्यमेव जयते।"

"हाँ, और क्या; अब मैं चला, मुझे कल इस सभाकी रिपोर्ट पत्रमें निकालना है।"

"देखना, सब ठीक ठीक निकालना।"

"इसकी तनिक भी चिन्ता मत करो" कहकर मगनको पैसा देते हुए तरफड़दास प्रेस चले गये।

× × ×

दूसरे दिन 'मार्तण्ड प्रकाश' में पाँच पृष्ठोंमें इस सभाका विस्तार पूर्वक विवरण प्रकाशित हुआ। ऊपर मोटे अक्षरोंकी हेडिंगमें 'गुजरातमें सुधार का डंका' 'समाज उद्धारिणी सभाकी स्थापना' छपा था। सभामें कैसे महान, विद्वान्, ज्ञान-वृद्ध, वयोवृद्ध पुरुष आये थे; किसने क्या कहा—अथवा नहीं कहा तो भी कहनेका विचार रखते थे—और यदि कहनेका विचार न भी रखते हों तो भी तरफड़दास उनसे कैसे भाषणकी आशा रखते थे—इन सभी बातोंकी रिपोर्ट पूरी पूरी छपी हुई थी। स्थान-स्थानपर मिल, स्पेंसर, रानडे, तेलंग आदिके वाक्यों का छिड़काव किया गया था, साथ ही यह प्रश्न भी किया गया था कि ऐसी देशोपकारक सभाके सभासद देशभरके अथवा समस्त संसारके मनुष्य बनकर क्यों नहीं एक दूसरेकी, प्राणीमात्र की, सहायता करते!

यह समाचार गुजरातके सभी पत्रोंमें प्रकाशित हुआ, बंबईके भी सभी छोटे बड़े समाचारपत्रोंने इसका सारांश छापा। अंग्रेजी समाचारपत्रोंने भी छापकर सहयोग दिया। संसारसुधार कमिटीकी तरफसे गंभीरलालको अभिनन्दनपत्र मिला; एडवोकेट्स एसोसिएशनके एक सदस्यने मारुतिको उनके सत्साहस और उत्साहके लिए धन्यवाद दिया। कलेक्टर साहबने समाज उद्धारिणी सभाके फण्डमें चार रुपये चन्दा दिया एवं 'मार्तण्ड प्रकाश' की बारह प्रतियाँ अधिक बिकीं।

तुरत ही इन आशावादी नर-रत्नोंने अपना दूसरा प्रयत्न करना प्रारम्भ कर दिया और अनाथाश्रमके लिए दौड़धूप शुरू हो गई।

१०

पहली रमणी

मणिके शरीर और मन दोनोंका विकास होने लगा। ज्यों ज्यों विकास बढ़ा त्यों त्यों उसके मनकी पीड़ा भी बढ़ने लगी। घर, पति, पुत्र आदि सभी वस्तुएँ—जिनका अभी उसे सुख प्राप्त नहीं हुआ था—के पानेकी लालसा पुनः जाग्रत होकर उसके मनको विचलित करने लगी। प्रवचन एवं आरतीके समय जब वह आती जाती तब उसे अपनेमें तथा वहाँ बैठी हुई स्त्रियोंमें अन्तर मालूम होता था जिससे उसे मानसिक कष्ट पहुँचता। उसका पूर्ववत् असंतोष बढ़ने लगा और असन्तोषके साथ ही पहले दिन जिस रमणीको उसने देखा था वह बार बार स्मरण आने लगी। वैसी ही कोई सहचरी यदि यहाँ मिल जाय तो कैसा अच्छा हो!

एक दिन प्रातःकाल प्रवचनमें एक अघट घटना हो गई। महाराजके प्रवचन समाप्त करनेके बाद आरती हो जानेपर वे उठे। महाराज अपनी हंसगामिनी चालसे श्रोताजनके बीचमेंसे होकर जारहे थे। चारो तरफ भक्तजन उनका पैर छू रहे थे। इतनेमें फाटकमेंसे एक रमणी महाराजके दर्शनकी लालसासे दौड़कर हाँफती हुई आई। वह दूसरे शहरकी रहनेवाली मालूम होती थी। आसपासके लोगोंको हटाकर वह आगे बढ़ी, सामने ही महाराज दिखाई दिये। उन्हें देखते ही वह चौंक उठी, अपने साथके पुरुषका हाथ झटककर तेज आवाजमें जोरसे बोल उठी—अरे! यह कौन है? यही महाराज हैं? यह तो बदमाश मावजी है! अरे बता! मेरी भाभी कहाँ है?

सभी भक्तजन इस प्रकार सकपका गये मानों बिजली गिरी हो। महाराजके प्रति इस प्रकारका कटु, आक्षेपपूर्ण वचन कहना उनके मतानुसार धृष्टताकी पराकाष्ठा थी, साथ ही महाराजके सम्बन्धमें लोगोंमें अनेकों प्रकारकी चर्चा चला करती थी जिससे प्रत्येक व्यक्तिको असल बात जाननेकी उत्सुकता हुई और सभी लोग आगे बढ़े। मणि पास ही में बैठी हुई थी जिससे वह सब कुछ देख सुन सकती थी।

क्षण भरके लिए महाराजने घूमकर देखा और रमणीको सम्बोधित करके हँसते हुए मीठी वाणीमें उन्होंने पूछा—"पुत्री! तू कौन है? तुझे क्या दुःख है?" ये शब्द महाराजने इतनी जोर से कहा कि सब श्रोताजन सुन सकें, उनकी वाणीमें भयका लेश मात्र भी नहीं था।

यह सब होते हुए भी मणिकी तीव्र दृष्टिसे महाराजकी आँख का तलवारकी धार जैसा तेज छिपा नहीं रह सका। उनकी भृकुटिपर बिना साँपके रुद्रको विराजमान देखा।

दो पल तक सभी शांत रहे। आगन्तुक रमणी पहले तो कुछ घबड़ा गई, बादमें मानों किसी अज्ञात जोर-जुलमसे किसी बात को स्वीकार करती हो इस प्रकार वह दब गई और उसने अपना सिर झुका दिया। महाराजके चक्षु पुनः स्थिर हो गये, स्त्रीने आँखें बन्द कर लीं, उसका सिर छातीकी ओर झुक गया। धीरे धीरे मानों कोई उसका सिर दबाता हो इस प्रकार वह महाराज के पैरपर गिर पड़ी।

"महाराज! क्षमा करो" जमीनपर गिरती हुई स्त्रीने कहा।

"मोहन! यह बिचारी कोई दुःखिया मालूम पड़ती है, इसे जहाँ भक्त रहते हैं वहाँ ले जा और जो कुछ इसकी वासना हो उसे पूरी कर दे।" कहकर इस प्रकार महाराज चले गये मानों कुछ हुआ ही नहीं।

भक्तजन स्तब्ध रह गये। महाराजका प्रभाव देखकर उनकी श्रद्धा और भी दृढ़ हो गई। जयजयकार करते हुए सब अपने अपने घर चले गये।

मणि भी उठकर अपने कमरेमें जाकर इस प्रसंगपर विचार करने लगी। पहले तो कुछ विचित्र घृणासी महाराजकी ओर हुई। महाराजकी स्थिर आँखोंकी स्मृतिने उस हृदयमें कुछ घबड़ाहट सी पैदा कर दी। जरूर यह मनुष्य कोई भयंकर दुष्ट और क्रूर पुरुष है। यह रमणी बिलकुल ही निर्दोष है। महाराजके सम्बन्धमें जो कुछ उसने कहा सब सत्य है, ऐसा उसके मनमें संदेह हुआ। उसे यह भी विश्वास हो गया कि महाराजने अपने जादूके बलसे उस स्त्रीको अपने वशमें किया, इन विचारोंसे यह महाराज कौन है और कैसे इतनी सत्ता चलानेमें समर्थ है यह जाननेकी उत्कंठा उसके मनमें उत्पन्न हुई।

इतने ही में महाराजकी तेजस्वी मूर्त्ति जिस प्रकार प्रति दिन दो बार उसकी दृष्टि के सामने आकर खड़ी होती थी वैसे ही आज भी आकर खड़ी हो गई। उसकी विचारधारा रुक गई, वह महाराजकी तरफ झुकी। कुछ देर तक उसने सामना किया, पर जोर न चलनेसे परास्त होकर वशमें हो गई। सदैवके समान कुछ देरमें ये विचार दूर हो गये।

मणिको एकाएक अपनी इस विचित्र मानसिक स्थितिका वास्तविक ज्ञान हो गया। जिस प्रकार महाराजने आज प्रातः उस रमणीको वशमें किया था वैसे ही मुझे भी वशमें करनेके लिए प्रयोग करते होंगे और जितने समय तक यह प्रयोग चलता होगा उतने ही समय तक मेरी मानसिक स्थिति भी ऐसी विचित्र रहती होगी। यह ज्ञान होते ही वह घबड़ाई, महाराज एक दुष्ट राक्षसके समान उसे दीख पड़ने लगे साथ ही उसे कुछ भय भी हुआ।

किसलिए महाराज ऐसा करते होंगे ? मेरे मनमें भक्ति भाव पैदा करनेके लिए ? अथवा मुझे पागल बनानेके लिए ? क्या महाराज भी दूसरे मनुष्योंके समान ही नीच, अधम और दुष्टात्मा हैं ? ऐसे अनेक तर्क वितर्क करते हुए पूरा दिन व्यतीत हो गया। प्रत्येक क्षण महाराजके प्रति उसकी घृणा बढ़ती ही गई।

तीसरे पहर उसने कुछ निश्चय कर रघुनाथ द्वारा महाराज से कहलाया कि यदि अवकाश हो तो मैं मिलना चाहती हूँ। थोड़ी ही देरमें महाराजने समय होनेपर उसे बुलाया। जिस कमरेमें पहले पहल महाराजसे वह अकेली मिली थी उसके पीछे एक दालानमें महाराजको एक झूले पर बैठकर पुस्तक पढ़ते हुए उसने देखा। मणिको देखते ही महाराजने उसे जमीनपर बैठ जानेका संकेत किया।

"क्यों ?" जरा हँसकर महाराजने पूछा।

"महाराज ! आज पन्द्रह बीस दिन हो गये, अब मेरा क्या होगा ? इस प्रकार कब तक बैठी रहूँगी ?

"क्यों, कोई असुविधा तो नहीं है ?"

"जी नहीं महाराज ! किन्तु मेरा स्वभाव बड़ा विचित्र है, मुझे इस प्रकार पड़ी रहना अच्छा नहीं लगता।"

"प्रभुका भजन कर।"

"वह भी नहीं होता, मुझे तो संसारका आनन्द लूटनेकी इच्छा होती है। रात दिन इसी प्रकारके भाव आया करते हैं।"

"क्या दूसरा कोई विचार मनमें नहीं उठता ?" जरा तीव्र दृष्टिसे मणिकी ओर देखते हुए महाराजने पूछा।

"जी ! दिनमें दो बार तो आपकी मूर्त्ति दिखाई देती है किन्तु मेरी तृष्णा नहीं बुझती।"

"बुझ जायगी यहाँ दुःख किस बातका है ? अपने भक्तोंको

मैं जरा भी कष्ट नहीं होने देता।" कहकर महाराजने कुछ विचित्र कटाक्षसे मणिको देखा।

मणि चौंकी! महाराजको इस प्रकार कटाक्ष करना क्या उचित है?" उसने आँख उठाकर देखा तो महाराजकी मुद्रा वैसी ही गम्भीर थी। मणिने सोचा कि यह मेरा भ्रम होगा। उसने कहा—"महाराज, आप तो सर्वशक्तिमान हैं किन्तु यदि इस प्रकार बैठी रहूँगी तो कुछ न कर सकूँगी इसलिए आप मुझे कुछ रास्ता बतावें।"

"बताऊँगा! घबड़ाती क्यों है? मेरे भक्त मेरे हैं और मैं उनका हूँ। यहीं तेरी सभी वासनाओंकी पूर्ति हो जायगी, अब इस समय तू जा, परसों मैं मिलूँगा।"

मणिने नमस्कार कर आज्ञा ली और महाराजपर झल्लाती हुई वापस आई। उसके क्रोधका ठिकाना नहीं रहा, पर कुछ ही देरमें वह ठण्ढी पड़ गई। शायद यह उसके मनका भ्रम हो। बड़े परिश्रमसे मनको शान्त करनेका प्रयत्न करनेपर भी उसका हृदय पुनः दहकने लगा। सबलोग सुखी हैं मैं ही क्यों दुःखी हूँ? मैंने कौनसा अपराध किया है?

संध्या हुई, प्रति दिनके समान महाराजकी जो धुन आध घण्टे तक लगती थी वह आज समयपर नहीं लगी, यह देखकर उसे आश्चर्य हुआ। अन्तमें थककर, दरवाजेके पास खड़ी होकर वह वाटिकाकी ओर जो चारो ओरसे बन्द थी देखने लगी। यहाँ कोई आता क्यों नहीं? इसमें जानेका रास्ता कहाँसे है? यह वाटिका यहाँ क्यों बनाई गई है? ऐसे विचार एकके बाद एक उसके मनमें उठते रहे। कब रात हो गई इसका उसे पता भी न लगा।

वाटिकामें किसीके धीरे धीरे चलनेकी आहट उसे लगी। वह आँख फाड़फाड़कर देखने लगी। किसीने उसकी ओर एक

कंकड़ फेंका। मणि डरसे जरा पीछे हट गई। कंकड़ उसके सामने जमीनपर गिरा, उसमें कोई कागज बँधा हुआ था। मणिने कंकड़ उठाकर उसपर बंधे हुए डोरेको तोड़कर कागज निकाला। उसके अचम्भेका ठिकाना नहीं रहा जब उसने पढ़ा कि—

"अभागिनी नारी,

यहाँ तेरे सिरपर भयंकर अनिष्ट मँड़रा रहा है। एक पल भी तेरा यहाँ रहना विपत्तिसे खाली नहीं है। यहाँसे जितना शीघ्र हो सके जल्दी भाग जा।"

तेरा एक सच्चा मित्र

मणि पढ़ते ही दरवाजेकी ओर दौड़ी किन्तु नीचे कोई दिखाई नहीं दिया। यह कागज उस रमणीके पाससे आया हुआ उसे मालूम हुआ जिसे उसने पहले दिन देखा था।

क्या अनिष्ट हो सकता है? यदि कोई विपद आनेवाली हो तो इससे अच्छी बात मणिके लिए दूसरी नहीं थी कारण उसके नीरस जीवनमें अब कुछ शेष नहीं रहा। किन्तु यदि इस पत्रकी लेखिका वह रमणी हो तो ऐसी चेतावनी देनेका उसका क्या मतलब हो सकता है? मणि खिड़कीके बाहर देखकर बोल उठी–प्रभु! अब तो कोई रास्ता दिखाओ, बहुत हो चुका, अब असह्य हो रहा है।

जैसा मणिने सोच रखा था इस युक्तिका वैसा ही असर हुआ। नीचे कोई छिपा हुआ खड़ा था। वह जरा अपनी जगहसे खिसका जिसका सफेद प्रतिबिम्ब वाटिकामें दिखाई दिया।

यह छाया किसकी है और वह क्या चाहती है यह विचार करती हुई वह वहाँ खड़ी रही। कुछ समय तक कोई वहाँ दिखाई नहीं दिया जिससे मणिको कुछ चिन्ता हुई। वह खिड़कीमें झुक-झुककर नीचे देखने लगी लेकिन कोई आता हुआ भी नहीं मालूम पड़ा।

एकाएक उसे पीछेसे किसीके आनेकी आहट मिली। वह घबड़ाकर काँप उठी। पीछे फिरी और उसका श्वाँस रुक रहा हो ऐसा उसे मालूम हुआ

उस दरवाजेके पीछे वही रमणी सामने खड़ी थी।

११

दो मणि

मणि इस रमणीको देखकर स्तब्ध खड़ी रह गई। रमणी इसी पृथ्वीपर रहनेवाली मानव-जातिकी थी। उसके सुन्दर मुख पर स्वस्थता झलक रही थी, उसकी आँखोंमें सज्जनता और निर्दोषता स्पष्ट दिखाई देती थी। उसके अंग प्रत्यंगका गठन व विकास अद्भुत था, सिरसे लेकर पैरतक उसके शरीरका कोई भी अंग अपूर्ण नहीं था। इस सुगठित रूपवतीको देखकर मणि सोचने लगी कि यह रंभा किस सौभाग्यशालीके भाग्यको विकसित करती होगी ?

"कौन, तुम ?"

"हाँ !" धीमी किन्तु डरी हुई आवाजमें उत्तर मिला "चलो, तुम्हें रास्ता दिखा दूँ।"

"किन्तु, मुझपर कौनसी विपत्ति आनेवाली है ?" मणिके परिपक्व मस्तिष्कमें ख्याल आया कि यह रमणी किसी कारणवश डर रही है और मुझे यहाँसे भगाना चाहती है।

"विपत्तियाँ तो बहुतसी हैं, इसे छोड़ो यदि जीवित यहाँसे जाना हो तो तुरत भाग जाओ।"

"किन्तु क्यों ? ऐसे प्रतापशाली महाराजके आश्रममें भय किस बातका है ?"

"तुम्हें खबर नहीं है ?" काँपते हुए स्वरमें नीचा मुँह किए हुए रमणीने पूछा।

"नहीं तो।"

"महाराज दुष्ट प्रकृतिके हैं। और सब बातोंमें तो महात्मा हो सकते हैं किन्तु........." कहकर वह स्त्री नीचे देखने लगी "भले आदमियोंके लिए यहाँ रहना अच्छा नहीं है।"

"तब तुम क्यों रहती हो? तुम क्या भली नहीं हो?"

"इससे तुझे मतलब!" जरा भृकुटी चढ़ाकर उस नवीन स्त्रीने कहा।

"अवश्य मतलब है! तुम मुझे बचाने आई हो तब मुझे यह जानना आवश्यक है कि तुम कौन हो। तुम्हारा नाम क्या है? झूलेपर बैठ जाओ, खड़ी क्यों हो?"

"मेरा नाम मणिकर्णिका है" कहकर वह स्त्री थकी हुई सी झूलेपर बैठ गई।

मणि चौंक उठी। उसने जब अपना नाम महाराजको सर्वप्रथम बताया था तब वे कुछ चौंकेसे मालूम हुए थे। इसका कारण अब उसकी समझमें कुछ आया "मेरा नाम भी मणि है। मैं तुम्हें कर्णिका पुकारूँ तो कोई हर्ज तो नहीं है?"

"जो चाहे पुकारो, किन्तु यहाँसे चलो कोई आ जायगा।"

"किन्तु मैं यहाँसे क्यों जाऊँ? मैं यहाँ सुखी हूँ।" मणिने उत्तर दिया।

"तू अभी जानेके लिए कह रही थी न?"

"बिलकुल गलत।" खिलखिलाकर हँसते हुए मणिने कहा। उसे कर्णिका बड़ी भली मालूम हुई जिससे उसके भोलेपनपर उसे हँसी आ गई "मुझे तो यहीं रहना है।"

"क्यों? क्या तुझे अपनी इज्जत प्यारी नहीं है?"

"तुमसे मुझे बहनापा जोड़ना है।"

"रहने दे तू अपना बहनापा! जा, चली जा, मेरा कहा मान, नहीं तो पीछे पछतायगी।"

"मेरे कौन रोने हँसने वाला बैठा है जो पछताऊँगी।

"क्यों, तेरे माँ बाप क्या कहेंगे? तेरी मान-मर्य्यादाका क्या होगा?"

"मेरे न तो माँ है और न बाप; इज्जत थी वह चली गई।" जरा दुःखपूर्ण आवाजमें मणिने कहा "रहूँ तो भी ठीक है और न रहूँ तो भी ठीक है।"

"क्या कहती हो?" चौंककर कर्णिकाने पूछा।

"बिलकुल सच कह रही हूँ।"

"तब तू नहीं जायगी? जा बहन, भागजा! तेरे भलेके लिए कह रही हूँ" जरा विनीत स्वरमें कर्णिकाने कहना प्रारम्भ किया। वह स्वभावसे इतनी डरपोंक मालूम हुई कि इतना कहते कहते उसकी आँखोंमें आँसू आ गये।

"ऊ-हूँ—" मणिने सिर हिलाते हुए कहा, "यहाँसे भागनेका पहले कारण बताओ।"

"मैं तुम्हारी भलाईके लिए ही कह रही हूँ, आज एक पत्रमें मैंने पढ़ा है।"

"क्या?"

"देखो, यह है" कहकर 'मार्तण्ड प्रकाश' का उस दिनका अंक मणिके हाथमें रख दिया। मणिने पढ़ाः—

"आवश्यकता है! आवश्यकता है!! आवश्यकता है!!!

"एक अच्छे घरकी रूपवती विधवाकी आवश्यकता है, विधुर एक सम्भ्रान्त उच्चकुलके युवक हैं।"

लिखो अथवा मिलोः—

उपमंत्री,

समाज उद्धारिणी सभा कार्यालय, चौक

यहाँ पड़े रहनेकी अपेक्षा यह कहीं ज्यादा अच्छा है !"

"किन्तु यहाँ बुरा क्या है ? महाराजकी मुझपर अत्यधिक कृपादृष्टि है ।"

"यही तो खराब है ।"

"तब यहीं रहते हुए समाजउद्धारिणीसभाके मंत्रियोंसे मिलूँगी।"

"महाराज ऐसा नहीं करने देंगे । पर यह बुरा क्या है ?"

"यह विज्ञापन तो ऐसा मालूम होता है मानों कोई भाड़ेपर मकान माँगता हो। पहले देख तो लूँ कि ये कृपानिधान हैं कौन? पुरुषवर्गकी सज्जनतापरसे मेरा विश्वास दिनोंदिन उठता जाता है । यहाँ रहकर ही कुछ ठीकठाक करूँगी ।

"महाराज नहीं होने देंगे ।"

"क्यों ?"

"वे विधवा-विवाहके कट्टर विरोधी हैं ।"

"किन्तु तुम तो कहती हो कि वह दुष्ट प्रकृति के हैं ।"

"हाँ ठीक है, किन्तु पुनर्विवाह उन्हें पसन्द नहीं है ।"

"यह भी ठीक है किन्तु मैं तो अनजान नदीमें डुबकी लगाने वाली नहीं हूँ, कल सबेरे पता लगाकर तब कुछ करूँगी ।'

"तब तू नहीं जायगी ?"

"नहीं, नहीं" जोरसे उसने कहा ।

"तब मेरा दुर्भाग्य" कहकर खिन्न वदन कर्णिका उठकर चलने लगी ।

झट उठकर उसका हाथ पकड़कर मणि बोली—बहन ! कैसा दुर्भाग्य ? मेरा स्वभाव जरा हठी है जिससे नहीं जाती किन्तु तुम्हें क्या दुःख है ? तुम कौन हो, यह मैं जानना चाहती हूँ । पहले ही दिनसे मेरे मनमें यह विचार हुआ कि हम दोनोंमें

बहनापा हो जाय तो कैसा हो। मैं भी संसारमें अकेली हूँ। तुम भी दुःखी और अकेली मालूम होती हो।

"नहीं मैं सुखी हूँ, मुझे कुछ भी दुःख नहीं है। जबसे तू आई तभीसे कुछ क्लेश अवश्य है।

"मेरे आनेसे दुःख हुआ ? मैंने ऐसा कौनसा काम किया ?" यह प्रश्न करते समय भी मणिके परिपुष्ट मस्तिष्कमें अनेक प्रकारके तर्क वितर्क चल रहे थे। उसे इसका रहस्योद्घाटन करना था। उसकी दिलचस्पी भी बढ़ी।

"बहन, तेरा क्या दोष ? मेरे भाग्य !"

"मेरे आनेसे महाराजका मन तुम्हारी तरफसे फिर गया ?" मणिने कल्पना करके अन्धेरेमें निशाना मारा। वह तिर्छी आँख से कर्णिकाकी ओर देख रही थी।

प्रश्न सुनकर कर्णिका घबड़ासी गई। ऐसा मालूम पड़ा मानों किसीने कोड़ा मारा हो, वह बोली—नहीं-नहीं।

"नहीं कैसे ; हाँ ! सच बात बता दो न, अबतक तुम अकेली थी, महाराजकी दृष्टि पड़नेसे तुम्हारा मान घट गया।"

"हूँ, यह तुमने कैसे जान लिया ?" अधिकाधिक घबड़ाते हुए कर्णिकाने पूछा।

मणि अपनी चालाकीपर हँसी "मैं ! इसमें क्या है ? तुम्हारी बातोंसे। मेरे पास कोई जादू नहीं है। इसीसे आप मुझे हटाना चाहती हैं ?"

जवाब देनेकी शक्ति न होनेसे नीचा सिर करके कर्णिकाने 'हाँ' कहा।

"घबड़ाओ नहीं बहन ! इस प्रसंगसे मैं दुःखी हूँ, अकेली हूँ। किन्तु किसीको दुःख देनेके लिए नहीं आई हूँ, अतः जिससे तुम्हें सुख मिले वह मैं करनेके लिए तैयार हूँ।"

"हाँ, ऐसा ही करो तो ठीक है।"

"क्या तुम महाराजकी विवाहिता हो ? लोगोंका तो कहना है कि महाराज ब्रह्मचारी हैं।"

"लोगोंके कहनेसे क्या होता है" धीमेसे कर्णिकाने कहा "लोगोंमें ब्रह्मचारी प्रसिद्ध न हों तो मान कैसे बढ़े ?"

"तो क्या इनका मान बढ़ानेके लिए जन्मभर इनकी कैदी बनी रहोगी ?"

"जो कुछ भी हो, मेरे तो वे प्रभु हैं, सर्वस्व हैं, उनके लिये मैं अपना जीवन भी अर्पण करनेके लिए तैयार हूँ।"

"विवाह कब हुआ ? तुम तो मुझसे दो चार वर्ष ही बड़ी मालूम होती हो।"

"विवाह नहीं हुआ है" जरा हिचकिचाहटके साथ कर्णिकाने कहा "मैं बाईस वर्षकी हूँ किन्तु इन सब प्रश्नोंसे मतलब क्या है ? तू कब जायगी यह बतला।"

"मैं क्या ऐसे ही चली जाऊँगी ?" जरा हँसकर मणिने कहा "परमार्थ करनेके पहले जान तो लूँ कि यह सब है क्या; किन्तु विचित्र बात तो यह मालूम होती है कि......"

"क्या ?"

"कि इतने वर्षसे तुम इनके पास सबसे छिपकर रह कैसे सकी।"

"जब मैं महाराजसे मिली उस समय साथमें केवल मेरी मौसी थी और......" इतना कहकर कर्णिका रुक गई।

"महाराजका असली नाम मावजी है" एकाएक सबेरेका प्रसंग याद आजानेसे मणिने कहा।

"तुमने कैसे जाना ?" आँख फाड़कर देखते हुए कर्णिका ने पूछा।

प्रश्न सुनकर मणि हँसी।

"तू तो सब कुछ जानती है।"

"मैं कुछ नहीं जानती, यह तो ऐसी एक बात हो जानेसे जान गई" बात उड़ाते हुए मणिने कहा। कर्णिकाने उसकी बातपर विश्वास कर लिया, वह बड़ी ही सरल-हृदय थी।

"तब तू जाती है?"

"हाँ! किन्तु तुम अपनी सभी बातें स्पष्ट रूपसे समझाकर कहो तो जाऊँ। मुझे वह 'मार्तण्ड प्रकाश' का अंक दो।"

"मैं अपनी बात क्या कहूँ? खाती हूँ, अपने नाथको प्रसन्न करनेकी चेष्टा करती हूँ। बस यही मेरी कथा है।"

"ऊँ-हूँ" मणिने सिर हिलाते हुए कहा "तुम कौन हो? महाराजके पास कैसे आई? इस प्रकार बात उड़ानेसे काम नहीं चलेगा। मैं जाऊँगी किन्तु मेरे जानेका मूल्य तो तुम्हें अवश्य ही चुकाना होगा।"

"अपनी बात!" दीनतासे कर्णिका मणिकी तरफ देखकर कहने लगी "क्या कहूँ? छः वर्ष पूर्व मैं अपनी मौसी और बालकके साथ रहती थी।"

"बालक!"

"हाँ! अपने पुत्र।"

"तुम विवाहित थीं या कुँवारी?"

"मैं विधवा थी" यह सुनकर मणिके हृदयमें दयाका संचार हो गया "वहाँ महाराज आये, मैं उनके पीछे पागल हो गई और सबको छोड़कर उनके साथ भाग आई।"

"किन्तु उस समय भी क्या ये यहीं थे?"

"नहीं उस समय ये योग-साधन कर रहे थे। मेरे आनेके पश्चात् इनकी मान-मर्यादा बहुत बढ़ी।"

"यह तो सच है ! फिर ?"

"फिर क्या ? मेरी समझमें महाराज तो प्रभुका अवतार हैं, मैं सुखी हूं। कभी कभी नरेन्द्र याद आ जाता है किन्तु महाराज के प्रेमके आगे मुझे समस्त संसार तुच्छ दीखता है।"

"शाबाश ! बिचारा लड़का ही अभागा था।"

"नहीं, मौसी उसका पालन-पोषण करेगी। मैंने उससे कह दिया था कि मेरी बहनको–जो बम्बईमें है–बालक सौंप आना। उसे लड़का नहीं है, जिससे दोनों सुख-पूर्वक होंगे।"

"तब तुम मुझे यहाँसे भगा रही हो अपने सुखके लिए, क्यों?

"हाँ, इतनी कृपा करो, तब न......"

"हाँ, संसारमें मेरे ठहरनेके लिए कोई स्थान नहीं है; कर्णिका बहन ! तुम तो भाग्यशालिनी हो कि इस प्रकार छः वर्षसे सुखसे दिन काट रही हो। मेरी भी तुम्हारी ही जैसी स्थिति थी, किन्तु मेरे कोई था ही नहीं; जितने सगे थे वे सब दुश्मन थे। एक पापी चाण्डालने मुझे फँसाकर इस दुर्गतिको पहुँचा दिया। मैंने उससे अपने साथ रखनेकी बहुत विनती की किन्तु पुरुष जैसा स्वार्थी और चाण्डाल जीव क्या कभी तुमने देखा है ? वह मुझे रोती कलपती छोड़कर भाग गया।"

"ऐसा ? फिर ?"

"फिर क्या, मुझे गर्भ रह गया। माँ, सास सभी मेरे पीछे पड़ गईं। सभी कहने लगीं कि किसी प्रकार कुटुम्बपरसे कलंक दूर कर। मैं दृढ़ रही, मेरा मन सांसारिक आनन्दके लिए लालायित था। मैंने कौनसा अपराध किया था जो सन्तान सुखसे वंचित रहती। मैंने अस्वीकार कर दिया। सब मुझपर बिगड़ गये, मैं घरसे भाग खड़ी हुई।"

"तब ?"

"हा ! अपनी चालीस दिनकी सुरेखाको पटेलके घर छोड़कर यहाँ आई। कणिका बहन ! बताओ कौन दुःखी है–मैं या तुम ?"

"तब बताओ मेरे महाराज कैसे अच्छे हैं ?"

"हाँ, सचमुच बड़े अच्छे हैं" मणिको इस अवस्थामें भी हँसी आये बिना नहीं रही। यह स्त्री कैसी भोलीभाली है ! "अब तुम कहती हो, जाओ ! हाँ बहन, मैं जाती हूँ तुम सब सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करो।"

"अकेले मेरे ही सुखकी बात नहीं है"

"क्यों ?"

"महाराज योग-साधन करते हैं, यदि अधिक कुमार्गमें जायँगे तो योगभ्रष्ट हो जायँगे।"

"तो क्या इससे कौन कहे दुनिया राँड़ हो जायगी ?" खिलखिलाकर हँसते हुए मणिने कहा "महाराजके लिए तो मेरे हृदयमें जरा भी दया नहीं है, तुम्हारे सुखके लिए ही मैं जानेके लिए तैयार हूं।"

"बहन ! तू सुखी होगी, घबड़ा मत। मैं क्या करूँ अपना स्वार्थ यह सब करा रहा है। तू बड़ी रूपवती है इससे तेरा यहाँ काम नहीं है। नहीं तो तुझे अपनी बहनके समान रखती।"

"वाहरे तेरा परमार्थ !"

"हाँ ! किन्तु मेरी बहन-चन्दूलाल सेठ जो बम्बई में...... रहते हैं-की पत्नी है। भगवान करे तू सुखी हो और तब मेरे पुत्रको जरा देख आना।"

"तब तुम भी साथ चलो न।"

"महाराजको छोड़कर ! भले ही ब्रह्माण्ड टूट पड़े, पहले वे पीछे दूसरा कोई।"

मणि यह श्रद्धा और दृढ़ता देखकर दंग रह गई। महाराज के प्रति उसकी घृणा और बढ़ गई।

"देखो बहन ! यह मेरा हार अपने पास रखो। मेरे पास रुपया पैसा तो कुछ है नहीं, इसे बेचनेसे किसी दिन भी रुपया मिल जायगा। पर इसका क्या मूल्य है मुझे नहीं पता।"

"लाओ, जो कुछ दो वही ठीक है। चलो, जरा रास्ता बता दो" कहकर महाराजकी दी हुई एक धोती लेकर मणि जानेके लिए तैयार हो गई।

"चलो !" कहकर कर्णिका आगे आगे चली।

१२

प्रयोग

दोनों स्त्रियाँ बाहर निकलीं। कर्णिकाको सभी मार्ग अच्छी तरह मालूम था जिससे वह अन्धेरेमें भी धीरे धीरे रास्ता बताते हुए आगे बढ़ी, दो एक दरवाजा भी खोला।

मणिको एकाएक कँपकँपी आई। सदैव प्रातः और सायंकाल जिस प्रकारकी एकाग्रता उसे आती थी वही आने लगी।

"कर्णिका बहन ! मेरा पैर काँपता है।"

"क्यों ?"

"मुझे दिनमें दो बार विचित्र प्रकारकी कँपकँपी आती है और महात्माकी मूर्ति सामने दिखाई देती है।"

"हाय हाय ! तुझपर भी प्रयोग चलता है।"

"हैं ! प्रयोग ?"

"हाँ ! महाराज इस समय तेरा ध्यान लगाकर बैठे होंगे मणि !"

"मुझे कुछ चक्कर सा आ रहा है।"

"मणि ! ओ मणि ! तू मेरा स्थान ग्रहण करेगी ? प्रतिज्ञा

कर, मेरे महाराजको तू मुझसे न छीनेगी ? मैं मर जाऊँगी।” रोनी आवाजसे कर्णिकाने कहा।

“नहीं, कभी नहीं; तुम घबड़ाओ मत। किन्तु इस समय मेरा कुछ भी वश नहीं चल रहा है केवल महाराज ही दिखाई दे रहे हैं।” ओ ! ओ ! कहकर मणि बैठ गई और पागलके समान दीवालकी ओर देखने लगी।

“तू आँख बन्द करले और किसी दूसरी वस्तुपर ध्यान लगा।”

“नहीं होता ! अब मैं वापस जाऊँगी।” “आह ! आह ! मुझे महाराज बुला रहे हैं।” नींदमें बोल रही हो इस प्रकार मणि बोली। “आती हूँ, हाँ ! प्रभु ! महाराज ! आती हूँ।” कहकर मणि खड़ी हो गई।

“मणि ! मणि ! क्या कहती है ? तू ऊँघ रही है, जरा विचार तो कर। यह तो महाराजकी इच्छाशक्तिका प्रभाव है। दृढ़ता रख।”

“महाराज बुला रहे हैं, आती हूँ” कहकर मणि सीधी मानो ऊँघमें चल रही हो, इस प्रकार चलने लगी। कर्णिकाने अपना सिर पीटा। इस प्रयोगको वह अच्छी तरह जानती थी। आँसू बहाती हुई बगलके दरवाजेमें जाकर वह अदृश्य हो गई।

मणि बिलकुल सीधे चली गई। जिस मार्गसे वह जा रही थी उसे उसने कभी देखा भी नहीं था लेकिन वह इस प्रकार दरवाजे पर दरवाजे खोलती हुई बढ़ती चली जा रही थी मानो सब रास्ते उसके अच्छी तरह जाने सुने हुए हैं। उस समय उसके मनमें केवल एक ही विचार आ रहा था—वह था महाराज का। उनकी भव्य मूर्ति उसकी दृष्टि के सामने नाच रही थी जो अपनी निश्चल शक्तिके प्रभावसे उसे आगे लिए चली जा रही थी। वह क्या कर रही है इसका उसे ज्ञान नहीं था। कर्णिकासे क्या बातचीत हुई थी वह भी विस्मरण हो गया

था। केवल वह महाराजको ही देख रही थी और उन्हींसे मिलने के लिए तल्लीन हो रही थी।

दस मिनटमें पूरा रास्ता तै करके महाराजके कमरेमें पहुँची। जिस स्थान पर सबेरे उनसे वह मिली थी उसके पीछेके एक सुन्दर, सुशोभित कमरेमें वह खड़ी थी; अब वह चैतन्य हो गई थी। उसने अपने चारो ओर दृष्टिपात किया, कमरेकी चमक-दमक देखकर विस्मयान्वित हुई साथ ही, मस्तिष्कसे एकाग्रता का नशा दूर होते ही, वह घबड़ा उठी। कर्णिका कहाँ गई, वह स्वयं वहाँ कैसे आ गई, इसका विचार करने लगी। महाराजके प्रयोगसे खींचकर वह यहाँ आ पहुँची है इसका ख्याल आते ही महाराजके प्रति अत्यधिक घृणा हुई। चार पाँच मिनटमें वह स्वस्थ होने लगी। मनकी निर्बलतासे यह सब हुआ है इसका उसे ज्ञान हुआ; साथ ही महाराज अपनी शक्तिसे उसे यहाँ खींच लाये हैं इसका विश्वास होजानेपर वह अपने विचारोंको दृढ़ करनेका प्रयत्न करने लगी। उसे सुरेखा व उसके पिता—जिसने उसे इस अधोगतिको पहुँचाया—का भी ध्यान आया।

बगलकी दीवाल पर पड़ा हुआ एक पर्दा हटा और महाराज भीतर आये। उनका स्वरूप रात्रिके समय विशेष आकर्षक मालूम पड़ रहा था फिर भी मणि अपने मनमें उन्हें धिक्कारने लगी।

"क्यों मणि?" कहकर कमरेमें रखी हुई एक आरामकुर्सी पर महाराज बैठ गये।

"क्या है? मुझे आपने क्यों बुलाया है?"

"मैंने कब बुलाया? तू स्वयं आई है।" उन्होंने धीमी किन्तु रसभरी आवाजमें कहा।

"नहीं! किसने कहा?" मणि जोरसे बोली। अब उसका स्वास्थ्य बिलकुल ठीक हो गया था—जिससे उसे किसी बातको

परवाह नहीं थी; साथ ही उसे यह भी ज्ञान हो गया कि महाराज और वह एक द्वंद्वयुद्धमें उतरे हैं अतः उसमें विजयी होनेके लिए साहस बटोरने लगी। उसे सगे-सम्बन्धी, आबरू इज्जत किसीका खटका नहीं था जिससे अपनी शक्ति महाराजको दिखानेके लिए वह उद्यत हो गई।

"मैं तो कहता हूँ न" प्रभुतासूचक शब्दमें महाराजने कहा।

"तब आप झूठ कह रहे हैं।"

महाराजने गौरवसे सिर ऊपर उठाकर देखा।

"हाँ! प्रतिदिन आप जादूसे मुझे आकर्षित करते हैं, इस समय भी आपने अपनी विद्याद्वारा मुझे यहाँ बुलाया है। कहिये, क्या काम है? मुझे निद्रा आ रही है, रात अधिक हो गई है।"

"मणि! इस प्रकार अकेलेमें बातें करना ठीक नहीं है। यह तो तेरा चंचल मन है जो तुझे यहाँ घसीट लाया है; मेरी भक्ति के प्राबल्यसे तू यहाँ खिंच आई है।

"किसने कहा? मुझे न तो भक्ति है और न उसके प्रति कुछ श्रद्धा ही है।

"क्यों, बोलना बहुत बढ़ गया है क्या?"

"हाँ! जो आपसे हो सके करें, जादू टोना करके करेंगे ही क्या? बोलिये, क्या काम है?"

"मणि! तेरे में वैराग्य नहीं आ रहा है जिससे तू प्रभुके मार्ग पर जा नहीं सकती।"

"तब क्या आप उस मार्ग पर ले जा सकते हैं?"

"हाँ, वैराग्य दो प्रकारसे आता है, अत्यन्त त्यागसे अथवा अत्यन्त तृप्तिसे।"

"यानी तृप्तिसे आप मुझमें वैराग्य लाना चाहते हैं?"

मणिकी चतुराईसे महाराज़ प्रसन्न होकर हँसे।

"हाँ, जबतक तेरी संसार सुखकी लालसा पूरी न हो जाय।"

"स्वीकार है, लाओ; समर्थ हो तो लाओ एक सुन्दर और गुणवान पति। मैं सच्चे हृदयसे, सतीरूपसे उसकी पूजा करूँगी। एक अच्छा बालक दो, उसे गोदमें खिलाकर आपका यशगान करूँगी।

"इससे भी अच्छा एक मार्ग है। पर तुम्हें स्वीकार हो तब!"

"क्या?"

"प्रभुके पास रहकर प्रेमभक्तिसे जीवन व्यतीत करना।"

"अर्थात् तुम्हारे पास तुम्हारी स्त्री बनकर रहूँ, क्यों?"

"इसमें हर्ज ही क्या है?"

"बहुत ठीक, चलिये मेरे साथ क्या विवाह करनेके लिए तैयार हैं? कल सबेरे ही आपकी दासी बन जाऊँ, है स्वीकार?" जरा परिहास करती सी मणिने कहा।

"विवाह? मूर्खा! मैं विवाह करूँगा!!"

"तब विवाह किये बिना कोई सुशीला स्त्री पर-पुरुषके साथ इस प्रकार रह कैसे सकती है?"

"प्रभु-भक्ति सबके लिए दुर्लभ है; यह क्या तू नहीं समझती?"

"समझती हूँ, किन्तु प्रभु भी तो मिलना चाहिये। यह तो तुमने इतना आडम्बर रचकर, लोगोंको धोखा देकर, गरीब स्त्रियोंको फँसानेका धंधा कर रखा है।"

"क्या कहा तूने?"

"बिल्कुल सत्य कह रही हूँ। हाँ! एक काम करो तो प्रभु मान लूँ।"

"कौन सा काम?"

"मणिकर्णिकासे विवाह करलो और उसे प्रत्यक्षरूपसे रखो।"

महाराज सकपकाकर उठ खड़े हुए। उनका सुन्दर मुख कुछ

विकृत सा हो गया ! चिड़चिड़ाकर बोल उठे—किसने कहा ?

"इससे तुम्हें सरोकार ?" कमरपर हाथ रखकर मणिने कहा।

"हाँ, सरोकार है बता किसने कहा और क्या कहा ?" जरा कठोरतासे महाराजने पूछा। उनकी आँखोंमें सबेरे उस स्त्रीके सामने जैसी भयंकर स्थिरता आई थी वैसी ही आने लगी। मणिका कलेजा धकधक करने लगा। उसने साहस बटोरनेका बहुत प्रयत्न किया किन्तु असफल रही।

"किसीने भी कहा हो पर......" बड़ी कठिनतासे उसने उत्तर दिया।

महाराज मणिकी ओर घूरकर देखते हुए उसके पास आये। मणि काँप उठी। वह केवल महाराजकी बड़ी बड़ी आँखोंको ही देख रही थी।

"बता, किसने कहा ?" भयङ्कर शान्तिसे महाराजने पूछा।

"किसीने नहीं।"

"बोल।"

मणिका ज्ञान लुप्त होता जा रहा हो ऐसा ज्ञात हुआ। उसका मस्तिष्क महाराजकी इच्छाशक्तिका भार सहन नहीं कर सका। उसे ऐसा लगा कि उत्तर देना होगा, उसका गला घुटने लगा।

"बोल।"

"मणिकर्णिकाने स्वयं कहा।" मणिके मुँहसे अपने आप निकल पड़ा।

"क्या कहा ?"

"सब कुछ।"

दूसरे ही क्षण मानो दबाव जाता रहा हो, मानो दबाई हुई कमानी छटक गई हो इस प्रकार उसके मस्तिष्क पर से इच्छाशक्तिका प्रभाव जाता रहा। महाराजकी आँखोंकी स्थिरता

जाती रही और वह पूर्ववत् हो गई। महाराजका मुखारविंद हँस रहा था।

"बहुत ठीक! तू सब कुछ जानती है; तब व्यर्थ ढोंग किस काम का? बता, मणिकर्णिकाका स्थान ग्रहण कर रहना स्वीकार है? सब कुछ मिल जायगा।"

"मणिकर्णिका मुझसे क्या खराब है?" स्वस्थ, सचेत होकर मणिने उत्तर दिया।

"राजाको जो पसंद आ जाय वही रानी।" जरा हँसकर महाराज बोले।

"किन्तु उसने तुम्हारे लिए सब कुछ छोड़ दिया, घरबार, पुत्र, सब कुछ और तुम उसे आँखकी किरकिरीके समान इस प्रकार निकाल बाहर करोगे?"

"तुझे इससे मतलब?"

"हाँ जी, हाँ! ऐसे ही कल मुझे भी निकाल बाहर करोगे तब?"

"जिसके भाग्यमें जैसा बदा होगा वह तो होगा ही।" शान्तिपूर्वक महाराजने कहा।

"कहते हुए शरम तो नहीं आती?" मणिका हृदय क्रोधसे दग्ध हो उठा। महाराजकी अधमता अब तक किसी प्रकार सहती रही, पर अब वह आपेसे बाहर हो गई। "ऐसी लम्पटता दिखाकर मेरे मनको वशमें करना चाहते हो?"

"हूँ" महाराजने जरा तिरस्कारसूचक हँसीसे हँसते हुए कहा।

"मैं तुम्हारी इस प्रकार बाँदी होकर रहूँगी? तुमने मुझे अभी पहचाना ही नहीं?"

"ऐसा?"

"हाँ! तुम्हारे जैसोंकी मेरे पास गिनती हो कहाँ है!

धूर्ततासे पैदा किए हुए तुम्हारे पैसे, तुम्हारे ढोंग और आडम्बर की अपेक्षा तो किसी गरीब भिखारीके घर पड़ी रहना कहीं अधिक अच्छा है।

"इससे सिवा तकलीफके और क्या हो सकता है? कोई भिखारी भी तो तुझे अपने घरमें नहीं रखेगा।"

"क्यों ?"

"पूर्ण यौवना विधवा है इसलिए" निश्चिन्ततापूर्वक महाराज ने कहा।

"हाँ! ठीक बात है।" व्याकुलतासे सिर पीटकर मणि बोली "संसारमें ऐसा कोई अधम, पापी चाण्डाल नहीं है जो एक निराधार बिलखती हुई विधवाको रख सके। तुम्हारे जैसे लम्पटोंके भाग्यसे मेरा नसीब फूटा है।"

"तू चाहे जो कहे, यहाँ तू रानीके समान आदरपूर्वक रहेगी।"

"उसकी मुझे आवश्यकता नहीं है। महाराज! मैं भी जिद्दी हूँ। तुम्हारे जैसे कामी भले ही मेरे पैरकी धूल चाटें किन्तु मैं तुम पर थूकने भी नहीं आऊँगी चाहे मर भले ही जाऊँ ?"

"जीवनका आनन्द फिर नहीं मिलेगा।"

"कुछ भी तो शरम करो। सबेरे तो बड़ा बड़ा उपदेश छाँटते हो, और इस समय तुम्हारी यह हरकत! मुझे सतानेसे तुम्हें कोई लाभ नहीं हो सकता।"

"तू क्या करना चाहती थी ?"

"तुम्हारी दुर्गति !"

"मेरी दुर्गति तेरे किए नहीं हो सकती।"

"क्यों ?"

"जा; करके देख ले न! दरवाजा खुला है। बाहर जाकर कहने पर लोग तुझे ही मूर्ख, पगली समझेंगे। मेरी मान-प्रतिष्ठा

अस्पर्श्य है। तू कौन—एक विलपती हुई कुलटा; और मैं, एक बाल-ब्रह्मचारी महायोगी बालाराम। जा, जो तुझसे हो सके करले।"

मणि यह धृष्टता, यह साहस, यह लम्पटता देखकर दंग रह गई। महाराजके एक एक शब्द उसे सत्य मालूम पड़े। साहस छोड़कर, अपनी निराधारतासे आँखोंमें आँसू भरकर, एक ठण्ढी साँस लेते हुए अपना सिर उसने छाती पर लटका लिया।

"जा! अभी दो चार दिन विचार कर! तेरी प्रचण्डता से, तेरी तीव्र बुद्धि से तो मैं प्रसन्न ही हुआ हूँ। तनिक भी बुद्धि हो तो विचार कर। दुनियाँमें प्रभुत्व, धन और आनन्द जो आज मिल रहा है वह कल नहीं मिलने का।"

"यह सबेरे प्रवचनमें कहना।"

"वहाँ मैं कहता ही नहीं करके दिखाता हूँ, लोगोंमें समझने की बुद्धि हो तब तो!"

मणि इस लुच्चापनका कुछ भी उत्तर न दे सकी। महाराज ने फिर कहा—मणि! जा, जरा विचार कर देख। चल, रास्ता बता दूँ; और सुन! मणिकर्णिका चाहे जो भी बके उसपर कुछ भी ध्यान मत दे। वह बहुत खराब है।"

"तुम्हारे पैरकी पूजा करके जीती है इसीसे?"

महाराज इस प्रकार आगे बढ़े मानो ये शब्द उनके कान तक पहुँचे ही नहीं।

१३

पुनः दर दर की भिखारिणी

अपने कमरेमें वापस लौट आने पर ऐसे विचार-सागरमें मणि निमग्न हो गई कि उसे कुछ नहीं सूझता था कि अब क्या करूँ। अपने साहस पर भी उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। महाराज को ऐसे कटु पर सत्य शब्द सुनानेकी धृष्टता पहले शायद ही किसीने की हो। महाराजमें प्रभाव कितना होगा? अब क्या करूँ? मणिकर्णिका मिलेगी या नहीं, यदि नहीं आई तो उससे कैसे मिलूँगी? उसे विश्वास था कि कर्णिका बिना मिले नहीं रहेगी।

मणिको उसपर बड़ी दया आई। उसकी सुन्दर, रूपवान मुखाकृति और जब महाराजके प्रभावसे खिंचकर जा रही थी उस समयकी उसकी शोकग्रस्त आँखें बारबार उसके नेत्रोंके सामने नाच रही थीं। वैसे ही वैसे महाराजके प्रति उसकी घृणा भी बढ़ती गई। इस प्रकार एक घण्टेके लगभग विचारमें व्यतीत हुआ होगा कि जैसा उसने सोचा था वही हुआ। कर्णिका हाँफती हुई वहाँ आ पहुँची।

"क्यों, क्या हुआ?"

"कुछ नहीं" मणिने साहससे कहा। महाराजसे किये हुए द्वंद्व वाक्-युद्धके पश्चात् उसे अपने प्रति अधिक श्रद्धा हो गई थी साथ ही यह भी विश्वास होगया था कि उसमें प्राबल्य अत्यधिक है।" तुम्हारे महाराजको दो-चार खरी-खोटी सुना आई; शायद कभी उन्होंने ऐसा किसीसे सुना न होगा।"

"हूँ हिश ! कहती क्या हो ?"

"हाँ, किन्तु तुमसे क्या कहूँ ? जोर-जुल्म करके तुम्हारा नाम मुझसे कबूलवा लिया।"

"ऐसा ? मुझसे तो कुछ नहीं कहा, इस प्रकार बर्ताव किया मानो कुछ हुआ ही नहीं।"

"कैसा ढीठ है !"

"किन्तु तुमसे कहा क्या ?"

"तुम्हारा स्थान ग्रहणकर यहाँ रहनेके लिए।"

"अच्छा !" घबड़ाहटसे कर्णिका बोली "तुमने क्या कहा ?"

"घबड़ाओ मत, मैंने अस्वीकार कर दिया। सोनेके बने हुए ही तुम्हारे महाराज क्यों न हो, वह मुझे नहीं चाहिये।"

"क्या सच कह रही हो ?"

"मैंने तुम्हें क्या वचन नहीं दिया था ? मैंने कहा कि मेरे साथ विवाह कर लो तो रहूँ।" कहकर मणि हँस पड़ी। कर्णिका उसका यह साहस देखकर दंग रह गई। "विचार करनेके लिए मुझे समय दिया गया है।"

"तब तुम यहाँ रहोगी ?" कर्णिका ने पूछा।

"आज की रात तो यहीं रहूँगी। इस समय जाने से शायद फिर वापस आना पड़े।"

"नहीं, अब महाराज सो गये हैं इससे अब तुम पर प्रयोग नहीं चल सकता। ध्यान मग्न होते हैं तभी—"

"तब कल प्रातःकाल जाऊँगी, इस समय कहाँ मारी मारी फिरूँगी।" बीचमें ही मणि बोल उठी।

"यहीं आ जायँ तब ?"

"कर्णिका बहन ! इतनी स्वार्थी मत बनो, मैं जाऊँगी तो अवश्य; एक रात में ही तुम्हारी कौनसी खर्ची खुटी जा रही है।"

"कुछ नहीं" कहकर कर्णिका वहाँ से चली गई।

मणिको महाराजके प्रति बहुत अधिक तिरस्कार हो गया था। इस पर भी जबसे उसने देखा कि वह उसे शक्ति द्वारा बुला भी सकते हैं तबसे वह अत्यधिक घबड़ा गई थी और यहाँ से भाग जाना चाहती थी।

थकी माँदी वह सोई किन्तु निद्रा नहीं आई। बहुत देर तक बिछौने पर वह करवटें बदलती रही। पिछली रातके दो बजे के लगभग कुछ नींद आने लगी, इसी समय उसे ऐसा मालूम हुआ कि कोई खड़ाऊँ पहने हुए आ रहा है, देखनेके लिए वह उठने लगी किंतु उससे उठा नहीं गया, आँख खोलनेका प्रयत्न किया किन्तु वह भी नहीं खुली। धीरे-धीरे कोई पासमें आया हो ऐसा लगा—वह महाराज ही मालूम पड़ रहे थे। हृदयमें महाराज की मूर्ति दिखाई दी किन्तु आँखें नहीं खुलीं, बैठनेकी इच्छा करने पर शरीर ही नहीं हिला। मनमें धीरे धीरे अनेकों प्रकारके विचार उत्पन्न होने लगे जो न तो विचारने योग्य थे और न कहे ही जा सकते थे। ये सब विचार मानो कमरे में खड़े होकर महाराज उसके मनमें उत्पन्न कर रहे थे ऐसा मालूम हो रहा था। कुछ समय तक यह क्रम चलता रहा फिर किसी के वापस जाने की आहट मालूम पड़ी।

मणि एकदम जाग्रत होकर उठ बैठी और चारो तरफ देखने लगी। केसरकी सुगंधिको छोड़कर कमरेमें और कोई हेर-फेर नहीं था। उठकर दरवाजे की ओर दौड़ी किन्तु अंधकारमें वहाँ कोई दिखाई नहीं दिया। उसकी घबड़ाहटका पारावार नहीं रहा। इतने दिन बाद दरवाजा बन्द करके सोनेका विचार आया लेकिन देखती है तो भीतर बन्द करनेके लिए दरवाजेमें कुछ लगा ही नहीं था। मणि लाचार होकर बिछौने पर बैठ गई।

चित्तके स्थिर होने पर उसे विश्वास हो गया कि महाराज ही यहाँ आये थे और वे कुछ प्रयोग चलाकर चले गये हैं। उसने दृढ़ निश्चय कर लिया कि इस आश्रममें रहनेमें अब कल्याण नहीं है। उसने बड़ी कठिनतासे चार घण्टे का समय व्यतीत किया। प्रातः होने पर उसका भय दूर हुआ। उसके जी में जी आया।

नहा धोकर रातका बचा हुआ कुछ रखा था उसे खाकर, कर्णिका द्वारा दिये गये हारको लेकर मणि प्रवचनमें गई। आज वह सब स्त्रियोंके पीछे जाकर बैठी। उसे पलपल भारी मालूम पड़ रहा था, उसे ऐसा मालूम हो रहा था कि आज प्रवचन पूरा होगा ही नहीं। आखिरकार रामराम करके प्रवचन पूरा हुआ, आरती हुई, महाराज भीतर गये; इसके पश्चात् स्त्रियोंका झुण्ड जैसे ही बाहर निकला कि उनके साथ वह भी आश्रम से बाहर निकल गई।

"बहन ! चौक किस ओर है ?" एक साथमें जाती हुई स्त्री से मणि ने पूछा।

"बाएँ हाथ, शहरमें मालूम होता है पहले ही पहल आई हो ?" उस स्त्रीने पूछा।

"हाँ, रास्ता भूल गई हूँ" कहकर बताये हुए रास्ते पर आगे बढ़ी। थोड़ी देर में ऐसा मालूम पड़ा की मानो वह चौक पहुँच गई, उसने घूंघट हटाकर चारो ओर नजर दौड़ाई किन्तु देखने की विशेष आवश्यकता नहीं थी क्योंकि सामने ही एक-एक फुटके नीले अक्षरोंमें लिखा हुआ "समाज-उद्धारिणी-सभा" का बड़ा साइनबोर्ड लगा हुआ था। उसके नीचे एक छोटा साइनबोर्ड भी था जिस पर 'मि० मदनलाल प्र० मारुति' लिखा हुआ था।

मणि तेजीसे तरह तरहके विचारोंमें लीन इस प्रकार उस ओर बढ़ी मानों नीले अक्षरोंवाला साइनबोर्ड उसके हृदय-सागर को पार करनेके लिए कोई पुल हो—मदनलालका 'बोय' हाथमें एक गंदी झाड़ू लिए हुए, मुँहमें बीड़ी दबाए, सीढ़ीसे धूल झाड़ रहा था।

"समाज-उद्धारिणी-सभा का कार्यालय यही है ?"

"क्यों जी ! सूझता नहीं है ?" कहकर जिस प्रकार कोई तत्त्ववेत्ता थोड़ेमें सूत्र लिखे उसी प्रकार 'बोय' ने साइनबोर्ड दिखाया।

"मंत्री, यहीं रहते हैं ?"

"क्या कोई केस है ?" होशियार 'बोय' ने अपने कामको करते हुए पूछा।

"मैं उनसे मिलना चाहती हूँ।"

"केस है क्या ? हो तो अभी बुला दूँ" मुँहमें से बीड़ी निकालकर अद्भुत गौरवके साथ नाकमें से धूआँ निकालते हुए 'बोय' ने कहा "नहीं तो बैठो।"

"बहुत अच्छा, बैठती हूँ।"

"ऐसा कहो न, सबेरेके वक्त बेकार कटकट करती है" कहकर मणिसे बदला लेनेके इरादेसे उसने जोरसे झाड़ू चलाया। मुकदमेबाजोंको छोड़कर दूसरोंसे उसे बेहद चिढ़ थी क्योंकि वे उसे दो एक आना देनेसे मुकरते नहीं थे। दूसरे मिलनेवालोंके आनेसे ऐसा मालूम होता था मानो इसके बदनमें आग लग गई हो।

ऊपर जाकर मणि बैठ गई। अब उसे किसी भी अपमानसे क्षोभ कम होता था। संसारका व्यवहार उसके प्रति ऐसा कठोर था कि उसकी कठोरताका ज्ञान अब उसके मन कोई उद्वेग उत्पन्न नहीं कर सकता था।

———

१४

उद्धारकोंकी शरणमें

डा० धनेशचन्द्र सवेरे सात बजे उठकर, प्रातःकृत्यसे निपट कर दवाखानामें चहलकदमी करके, कोई रोगीके अभावमें गहरी निश्वास लेकर चौककी ओर चल पड़े। 'समाज-उद्धारिणी-सभा' के सहायक मंत्री होनेसे उनका मान बहुत बढ़ गया था। यह बात बिलकुल ठीक होनेपर भी इस शहरके मूर्ख लोगोंका मन इस पदवीकी ओर जरा भी आकर्षित हुआ नहीं मालूम होता था पर डाक्टरका दवाखाना ज्यों का त्यों उजाड़खाना बना हुआ था। इसका कारण कुछ धनेशचन्द्रकी समझमें नहीं आ रहा था। वह यथाशक्ति पैदल गाँव-गाँव गली-गली घूम-घूमकर आश्रम व सभा के लिए चन्दा उगाहनेका प्रयत्न करते थे। अनाथाश्रमके लिए एक मकान भी भाड़े पर ले रखा था और इधर-उधर घूमने वाले दो एक लड़कोंको भी पकड़कर वहाँ रख छोड़ा था जिससे लोग समझते रहें कि अनाथाश्रम चल रहा है।

धनेशचन्द्र इन सबसे जरा ऊब गये थे; साथही लोगोंमें यह बात भी प्रसिद्ध हो गई थी कि किसी विधवासे विवाह करनेके लिए समाचारपत्रमें उन्होंने ही विज्ञापन निकलवाया है जिससे उनके सगे-सम्बन्धी भी उन्हें हेय दृष्टिसे देखने लग गये थे। डाक्टर तो ईश्वरसे यह प्रार्थना भी करने लगे थे कि शहरमें प्लेग या कॉलरा फट निकले जिससे दवाखानामें सड़ने वाली दवाओंका कुछ सदुपयोग तो हो, और उन्हें जनताकी सेवा करनेका मौका मिले।

डा० धनेशचन्द्र ऐसे उत्तम और पारमार्थिक विचारोंका

पुल बाँधते हुए चौककी ओर चले। वहाँ अपनी सभाका विशाल साइनबोर्ड देखकर उनकी छाती दूनी हो जाती थी। यदि ऐसे सुन्दर साइनबोर्डसे लोग आकर्षित न हों तो......यह विचारधारा यहीं टूट गई क्योंकि इसी समय उन्हें मि० मारुतिका 'बोय' सामने दिखाई पड़ा।

"क्यों, कहाँ जा रहा है ? मि० मारुति आ गये क्या ?"

"नहीं सा•••ब, बुलानेको जाता हूँ।"

"क्यों, कोई मुवक्किल बैठा है क्या ?"

"एक औरत बैठी है।"

"हाँ !" धनेशचन्द्र बोल उठे "अकेली ?"

"हाँ"

"बहुत ठीक, जानेकी जरूरत नहीं है" कहते हुए डाक्टर दौड़कर ऊपर चढ़ गया।

ऊपर पहुँचते ही उसकी दृष्टि एक युवती पर पड़ी। उसने अपना घूँघट हटा दिया था जिससे उसका तेजस्वी मुख हाथ पर रखा हुआ दमक रहा था। डाक्टरको ऐसा मालूम हुआ मानो चन्द्रकी सुखद मीठी ज्योत्स्ना चारो तरफ छिटक रही है। वह यह देखकर जरा घबड़ा गया। बहुत वर्ष पूर्व स्त्रीके मर जानेसे, कुटुम्बमें किसी सम्बन्धी स्त्रीसे विशेष सम्पर्क न होनेसे एवं स्त्री-रोगियोंका दवाखानामें अभाव होनेसे, वह स्त्रियोंसे बातचीत करनेमें प्रवीण न था। कुछ घबड़ाकर उसने गहरी साँस ली। वह वहीं अचल हो रमणीके मुँहको निहारता रहा ?

मणि भी डाक्टरको देखकर चौंकी और घूँघट काढ़ सजग होकर बैठ गई।

कुछ समय तक कोई नहीं बोला। डाक्टर सोचने लगा कि पीछे भागनेका मौका है या नहीं।

"आप सभाके मंत्री हैं?" अन्तमें मणिने ही पूछा।

"हाँ!" बड़ी मुश्किल से डाक्टर ने जवाब दिया।

"यह विज्ञापन आप ही ने निकलवाया है?"

डाक्टर की घबड़ाहट देखकर मणिका चित्त कुछ स्वस्थ हुआ

"हाँ, आप कौन हैं?"

"विधवासे विवाह करनेके लिए जो सज्जन तैयार हैं उनका नाम पता क्या आप कृपाकर बतावेंगे?"

मणिकी मीठी वाणी सुनकर डाक्टरका हृदय पिघलकर पानी पानी होने लगा। उसने पूछा—

"आप स्वयं ही विवाह करेंगी या आपकी कोई रिश्तेदार हैं"

"स्वयं मैं!"

"आपका नाम पता क्या है?"

"पुरुषकी अपेक्षा स्त्रीको नाम बतानेमें अधिक लज्जा बोध होती है" जरा हँसकर मणिने कहा "इसलिए पहले आपके नाम का पता लगे तो मैं अपना भी बताऊँ।"

यह आवाज, यह हास्य, ये शब्द सुनकर डाक्टरका कलेजा बाँसों उछलने लगा और न जाने क्यों शारीरशास्त्रका पूर्ण अध्ययन होते हुए भी सब नियमोंको तोड़कर उसके हृदयकी बात मुँहसे क्रमशः प्रकट होने लगीं।

"मुझपर क्या विश्वास नहीं है?"

"पर मैं आपका नाम भी तो नहीं जानती।"

"ओह! मेरा नाम डाक्टर धनेशचन्द्र है। मैं यहाँका प्रख्यात डाक्टर हूँ।"

धनेशचन्द्रके मनमें अनेकों विचार उदय होने लगे। उसे यह भी ख्याल आया कि मि० मारुतिके आनेका समय हो गया है वह अब आता ही होगा और इसे अपने यहाँ लिवा ले जायगा।

इस सन्देहका निवारण करनेके लिए उसने एक उपाय सोचा।

"आपका निवासस्थान कहाँ है ?" उसने पूछा।

"मेरे घरबार कुछ है ही नहीं।"

"अच्छा, तब मेरे साथ चलिए, पीछे मैं सबकुछ बताऊँगा। बोय, बोय !"

"क्या" कहता हुआ बोय आकर उपस्थित हुआ।

"एक किरायेकी गाड़ी तो ला।"

"अच्छा" कहकर एक साथ तीन तीन सीढ़ियाँ डाँकता हुआ वह नीचे उतर गया।

"चलिए, जरा भी घबड़ाइये मत।"

चुपचाप मणि उसके साथ चली। अपरिचित पुरुषकी शरणमें इस प्रकार जाना, उसके साथ इस प्रकार बातचीत करना उसकी रही सही लज्जाको भी ठेस पहुँचा रहे थे किन्तु साहससे हृदयको कड़ा करके अपने मनको उसने दृढ़ और स्वस्थ बना रखा था। महाराजके शब्द उसके कानमें गूँज रहे थे 'अपने समाजकी रचना विचित्र है, उसमें तेरे लिए सुखका निर्माण हुआ ही नहीं है'—यह बात अक्षरशः सत्य उतर रही है। ऐसा उसे प्रतीत हुआ।

डा० धनेशचन्द्र, एक बड़ी युद्धनौका (क्रूजर) के समान जो एक व्यापारी जहाजको पकड़कर शत्रुके बंदरसे बाहर निकल रहा हो, मि० मारुतिके कार्यालयकी सीढ़ियोंसे नीचे उतरकर बाहर निकले किन्तु जैसे ही वे बाहर निकले कि सामने ध्वजा-पताका फहराती हुई शत्रुकी युद्धनौकाके समान मारुति कोटका बटन खोले हुए धीरे धीरे आते हुए दिखाई दिये। उन्हें देखकर डा० धनेशचन्द्र घबड़ा गये, चारो ओर बगलें झाँकने लगे किन्तु

कहीं भी भागनेका रास्ता दिखाई नहीं दिया। अन्तमें साहस करके मणिसे बोले—चलिये, गाड़ीमें बैठ जाइये।

"अच्छी बात है।"

किन्तु इसी समय मि० मारुति आ पहुँचे और अपने स्वाभाविक स्वरमें बोल उठे—डाक्टर! किसे ले चले?

"किसीको नहीं।"

"अरे यह क्या कह रहे हो मेरे भाई, इसमें मेरा भी आधा हिस्सा है।"

घूँघटके भीतर अपने ओंठपर ओंठ दबाकर मणि दाँत पीसने लगी।

"तुम भी क्या हरवक्त बेसमझीकी बातें किया करते हो! यह तो एक आवश्यकीय काम आ पड़ा है।

"किन्तु है क्या? मैं भी मंत्री हूँ या नहीं?"

"यह एक विधवा है" धनेशचन्द्रने कानमें धीरेसे कहा—"इनकी व्यवस्था करके आता हूँ।"

"अपना विज्ञापन देखकर आई है क्या?" कहकर मि० मारुतिने मणिकी तरफ देखा—"किन्तु तुम ले कहाँ जाओगे? मेरे घर ले चलो न, यह तुम्हारे घर अकेली कैसे रहेगी?" कहते हुए मारुति भी छलांग मारकर गाड़ीपर चढ़ गये और गाड़ीवानसे गाड़ी अपने घर ले चलनेकी आज्ञा दी। डा० धनेशचन्द्र झल्लाते दाँत पीसते हुए देखते ही रह गये।

मारुति सबको अपने घर ले जाकर बैठकमें बैठाया। कोट उतारकर मणिकी ओर देखते हुए मारुतिने पूछा—"आप विवाह करना चाहती हैं?"

"हाँ!"

"आपका निवासस्थान क्या यहीं है?"

"कौन विवाह करना चाहता है यह समझेबूझे बिना जवाब कैसे दे सकती हूँ" मणिने प्रश्न किया। उसे इन लोगोंपर भी घृणा होने लगी थी।

मणिकी आवाजसे मारुति भी जरा चकराए। उन्होंने जरा नरमीसे पूछा—किन्तु यह सब प्रबन्ध क्या तुरत हो जायगा? तब तक कहाँ रहियेगा?

"अनाथाश्रममें" डाक्टरने बीच में ही कहा।'

"पागल हो गये हो क्या? ऐसे एकान्त स्थानमें क्या कोई युवती अकेली रह सकती है? नौन्सेंस।"

"इसमें बाधा ही क्या है?"

"यह क्या कोई अनाथ है?" मारुतिने कहा "डाक्टर! जरा भीतर आओ, क्षमा कीजियेगा।"

मारुति और डाक्टर दोनों भीतर चले गये।

"कहो! बड़ा 'प्रैक्टिकल' कार्य करनेवाले थे न! यह बला किसके सिर पटकोगे?" मारुतिने पूछा।

"मारुति! यह तुम्हारी ओछी रीतभाँत मुझे जरा भी पसन्द नहीं है।"

"तुम्हारी पसन्दगीकी मुझे परवाह भी नहीं है" डाक्टर को फटकारते हुए मारुतिने कहा।

"किन्तु अब करोगे क्या? तुम विवाह करोगे?"

"मैं विवाह करूँगा? जाओ हटो, क्या बकते हो?"

"तब तुम्हारे विज्ञापनका क्या होगा?"

दोनों एक दूसरेका मुँह ताकने लगे।

"कुछ उपाय नहीं करोगे तो इज्जतपर आ बनेगी, समझे कि नहीं? डाक्टर साहब! अब घोड़ेपर सवार होनेके लिए तैयार हो जाओ" कहकर मारुति हँस पड़े।

"दिल्लगी जाने दो" जरा भौं चढ़ाकर डाक्टरने कहा किन्तु इसे इस समय मेरे यहाँ रहने दो।"

"यह कैसे हो सकता है? यह तो मेरे ही यहाँ रहेगी। मेरा घर चाहे जैसा भी हो पर है तो बालबच्चे वाला।"

देखा है, देखा है! मैं क्या कोई बदमाश लुच्चा या लम्पट हूँ जो मेरे यहाँ रखनेमें बाधा पड़ रही है? मेरे घरके पास आश्रममें रहती है ऐसा लोग समझेंगे, इससे अपनी मानमर्यादा भी बढ़ेगी।"

"नौन्सेन्स! युवती कभी भी अकेली नहीं रखी जा सकती।"

"अह: ह:! वाहरी तेरी आबरू! मानों मैं तो कुछ जानता ही नहीं।"

इस प्रकार समाज-उद्धारिणी-सभाके महास्तम्भ बातों ही बातमें गालीगलौजपर उतर आये। एक दूसरेपर न कहने योग्य आक्षेप करने लगे, न सुनने योग्य भाषाका प्रयोग करने लगे। इस द्वन्द्वयुद्धने प्रचण्डरूप धारण किया। समाज डगमगाने लगा, उसके उद्धारकी आशा नष्ट होती गई। अन्तमें मारुतिने निश्चित-रूपसे कह दिया कि यह मेरे कार्यालयमें आई थी और इस समय मेरे घरमें है इसलिए किसी भी तरह मैं इसे यहाँसे जाने नहीं दूँगा।

बाहर, इन सब कलहका कारण गरीब बिचारी मणि अपने भाग्यको कोसती हुई बैठी थी। प्रतिक्षण उसके दु:खित मनको यह सब पंचायत और भी कष्ट पहुँचा रही थी, उसका खिन्न हृदय पलपल और भी दबता जा रहा था। साथ ही साथ उसमें एक प्रकारके उमंगकी भी उन्नति हो रही थी। श्रेष्ठ स्त्री-पुरुष जिन प्रसंगोंको असम्भव मानते हैं ऐसे ऐसे अनेक विचित्र अधम प्रसंगोंके उठनेसे अब उसके मनमें मरणासन्न व्यक्ति जैसी उपेक्षा-

वृत्ति आ गई थी। उसका क्या होगा, इसकी उसे कुछ भी परवाह नहीं थी, अपनी आशाके फलीभूत न होनेका उसे पूर्ण विश्वास हो गया था। अब आगे होगा क्या?

———

१५

सुधारक का गृहजीवन

डा० धनेशचन्द्र क्रोधसे भरे हुए वहाँसे चले गये, मि० मारुतिकी स्वाधीनतामें अड़ंगा लगानेवाला अब कोई नहीं रहा। अपनी वकालतमें घिस घिसकर बनाई हुई पैनी बुद्धिको और तेज बनाकर वह मणिके पास गये।

"श्रीमतीजी! आपका नाम क्या है? अब आप निश्चिन्त होकर यहाँ रहें।"

"मैं यहाँ रहनेके लिए नहीं आई हूँ, मुझे तो केवल उस सज्जनसे मिलना है जिन्होंने वह विज्ञापन निकलवाया है।"

"हाँ! किन्तु आपका क्या कोई सम्बन्धी नहीं है?"

"नहीं।"

"कहीं रहनेका ठिकाना नहीं है?" फौजदारी कानूनके अनुसार स्त्री-संग्रहणके अपराधके अन्तर्गत उसका व्यवहार आता है या नहीं, इसका विचार करते हुए मारुतिने पूछा।

"जी नहीं, पर क्या दिनभर यही प्रश्न पूछा जायगा या और भी कुछ?"

"देखिये, जिस गृहस्थने यह विज्ञापन निकलवाया था वह बाहर गया हुआ है। आज पत्र लिखकर उसे बुलाऊँगा। कहीं

जल्दी करनेसे आम पकता है ? आप ज़रा भी घबड़ाएँ नहीं, इस घरको अपना ही समझें।"

"आपके घरवाले क्या कोई आपत्ति नहीं करेंगे ?"

"नहीं, नहीं !" जरा भीतरकी ओर देखते हुए मि० मारुतिने कहा "और यदि आपत्ति होगी भी तो आपको घबड़ानेकी आवश्यकता नहीं है। सुधारके लिए थोड़ा बहुत अपना स्वार्थ-त्याग तो करना ही पड़ेगा।"

ये विचार सुनकर मणिका हृदय कुछ प्रफुल्लित हुआ। दुनियामें स्वार्थ-परायणता उसने इतनी अधिक देखी थी कि निःस्वार्थी मनुष्यको देखकर उसका दिल भर आता था। वह कुछ भी जवाब न दे सकी।

"आपकी जाति क्या है ?"

"ब्राह्मण" मणि ने उत्तर दिया।

"चलिए उठिये, आपको अपनी पत्नी से भेंट करा दूँ" कहकर मारुति भीतर चले, मणि भी उनके पीछे पीछे चली।

भीतर दालानमें रुग्ण-सी दो लड़कियाँ चिथड़ेकी गुड़ियाँ लेकर खेल रही थीं जिन्होंने अत्यधिक काममें व्यस्त दो गृहिणी के समान सिर ऊपर उठाकर भी नहीं देखा। मदनलालने पीछे फिरकर मणिके कानमें कहा—आप किस कामसे आई हैं, यह किसीसे मत बताइयेगा।"

"बहुत अच्छा।"

भीतर जैसे ही मारुति पहुँचे कि मणिके कानमें ऊँची, तीव्र और कर्कश आवाज सुनाई दी।

"देखो, देखो, चौकेमें मत घुसे आओ ! दिखाई नहीं देता, मुझे फिरसे चौका देना होगा।"

मारुतिका पराक्रम सब ठंढा पड़ गया, उनका चेहरा उतर

गया, उनकी आँखोंसे दीनता टपकने लगी और सरकारी वकील होनेकी आकांक्षा रखनेवाले शहरके आशावान वकील साहब, जिन्होंने अभी थोड़ी देर पूर्व डाक्टर धनेशचन्द्रको दुतकारकर घरसे निकाल दिया था, मक्खनके सदृश नरम होकर खड़े रह गये। किसी विद्यार्थीकी क्रोधसे पूर्ण गुरुके पास जानेसे, किसी गुलामकी कुपित मालकिनके पास जानेसे जो दशा होती है ठीक वही दशा उस समय मारुति की थी।

"नहीं, नहीं, देखो मैं अलग खड़ा हूं न" इस ढंगसे मारुतिने कहा मानों जजसाहब बिगड़े हों और उनसे वह क्षमायाचना कर रहे हों। "यह रमणी आई हैं। ये मेरी मवक्किली हैं, दो एक दिन यहाँ रहेगीं।"

"बहुत ठीक, इस घरमें जो न आवे, वह थोड़ा। मैं तो एक खाना पकानेवाली हूँ। अच्छा! लेकिन आप इस प्रकार कब तक घूमते रहेंगे?' गोदावरीने पूछा।

गोदावरी अधेड़ वयकी किन्तु गृहस्थीके कार्यमें निपुण रीत-भाँतमें सौ वर्ष पहलेकी, जीभकी तीखी और फिरे हुए माथेकी स्त्री थी। नाकमें बड़ी कील, हाथमें बड़ा बड़ा हाथीदाँतका चूड़ा और पाँवमें पाँच पाँच सेरका कड़ा पहनकर वह अपने अंगकी शोभा बढ़ा रही थी। ये सब आभूषण व सिरपर बड़ा टीका देखकर मणिको अम्बाभवानीकी मूर्ति याद आ गई।

"अभी दस कहाँ बजा है?" बड़ी नम्रतासे मदनलालने सवाल पूछनेकी धृष्टता की।

"कल रातको अढ़ाई सेर चाभकर बैठे हो न इसीसे ऐसा मालूम पड़ रहा है। जरा यह भी विचार आता है कि स्त्री बिचारी भूखी होगी?"

"अच्छा! कल एकादशी थी, क्यों?"

"आपको कहाँसे खबर हो ? आपको दान पुण्यकी परवाह तो है नहीं कि याद रखें ? बारहो महीना तीन सौ साठ दिन खाना, खाना और पीना बस। बहन ! "बैठो" एकदम मणिकी ओर घूमकर बोली "देखना, मेरे चौकेमें मत आना। जाइये अब, जरा स्नान कर आइये, पानी काढ़कर कभीका मैं रख आई हूँ।"

"मैं तो नहा चुका हूँ।"

हाँ जी हाँ, और उसके बाद भंगी, चमार, पारसी, मुसलमान न जाने कितनोंसे हाथ मिला आये हैं। आपका भी जन्म किसी ऐरी गैरी जातिमें होना चाहता था; ब्राह्मणके घरमें जन्म व्यर्थ ही लिया।"

"तुम कहती हो तो फिर नहा आता हूँ।"

"जैसी आपकी इच्छा ! नहीं तो चौकेमें नहीं बैठाऊँगी। मेरा भी कैसा दुर्भाग्य है कि द्वादशीके दिन भी आपके जूठे पात्रमें बैठकर भोजन करनेका सौभाग्य प्राप्त नहीं होता। वह क्या कर रहा है ?" कहकर मारुतिकी पत्नीने आँगनकी ओर हाथ बढ़ाया। मणिने उस ओर घूमकर तीन वर्षके एक रुग्ण जैसे बालकको दूध गिराकर जमीनपर लीपते हुए देखा। इस जबान-दराज स्त्रीको प्रसन्न करनेके लिए मणिने दौड़कर उस बालकको उठा लिया और चौकेके पास लेजाकर उसका हाथ धोनेके लिए पानीका लोटा उठा लिया।"

"हाय ! हाय !" कहकर निराशासे गोदावरीने अपने सिर पर हाथ रखा। "यह गिलास, लोटा वगैरह सब तुमने छू लिया, सब फिरसे साफ करना पड़ा। तुमसे भला किसने कहा था कि यह सब काम करो।"

बालकको उठानेकी शीघ्रतामें मणिका घूंघट खिसक गया

था जिससे उसका अनुपम लावण्यसे प्रफुल्ल मुख मारुतिने देख लिया।

"क्षमा करिये, भूल हो गई, मैं सब माँजकर साफ किए देती हूँ।"

"कौन वर्ण हो?"

"ब्राह्मण हूँ।"

"और नाम?"

"मणि।" प्रश्नकी परम्परापर जरा हँसते हुए मणि बोली।

"जाइये न अब! आपको यहाँ बोझके समान खड़ा रहनेके लिए किसने कहा? नहा धो लें न झटपट और रमणको भी अपने साथ ही नहला लेना" अपने पति पर हुक्म चलाते हुए गोदावरी ने कहा।

"कहिये तो मैं नहाकर आ जाऊं।"

"नहीं, मुझे किसीके मददकी जरूरत नहीं है। जाओ, अगर कुछ करना हो तो बाहर लड़कियाँ बैठी हैं उन्हें नहला दो।"

"बहुत अच्छा" कहकर मणि बालकको मारुतिके पास बैठा कर लड़कियोंके पास गई। बड़ी कठिनता से गुड़िया छुड़ा कर उन्हें आँगनके भीतर चौकमें ले गई। इतनेमें मि० मारुति झटपट स्नान करके चौकमें रखे हुए पटरे पर जा विराजे। उनके पुत्रने रोते चिल्लाते स्नान किया और मचलकर वह अलग जा बैठा। भोजन करनेसे भी इन्कार कर दिया।

"जरा इसे झबला तो पहना दो, बीमार हो जायगा तब तो दवा दारू के लिए भी पास नहीं फटकेगें।"

मारुतिने तुरत आज्ञाका पालन किया।

गोदावरी भोजन परोसती गई और अवसरका लाभ उठाकर

अपने पतिको शिक्षा देती हुई भाषण भी करती गई। मारुति चुपचाप सदाकी भाँति सब सुनते रहे।

"आपको जरा भी विचार नहीं होता कि थोड़ा भगवानका भी नामस्मरण किया करें, पढ़ लिखकर ज्यों के त्यों ही रहे। देखना! खाने मत लग जाना, मुझे अभी आरती उतारनी है।"

मारुति लज्जासे नीचे देखने लगे। गोदावरीने एक आरतीमें कपूर पहले से ही संजोकर तैयार रखा था उसे जलाकर वह मारुतिकी आरती करने लगी।

मणि खड़ी खड़ी यह देख रही थी। संसार सुधारकोंके सम्बन्धमें उसने बहुत कुछ सुना और पढ़ा था किन्तु देखनेका अवसर उसे पहले पहल आज हो मिला। इतनेमें मणिकी दृष्टि मारुतिके पुत्र पर जा पड़ी। वह खसकते खसकते पानी गरम करनेके चूल्हेके पास चला गया था और जमीन पर पड़ी हुई एक चिनगारी पर उसके झबलेका कोर पड़ गया, जो जल उठा और उसमेंसे धुआँ निकलने लगा।

"अरे जरा देखो, देखो! बालकका झबला जला।"

उसी समय झबला प्रज्वलित हो उठा। मारुति बिचारे शायद समाज-उद्धारिणी-सभाके विचारमें तल्लीन थे जिससे उसके कथनका अर्थ न समझकर इधर उधर देखने लगे। गोदावरी आरती छोड़ दूँ या नहीं, यही सोचती हुई खड़ी रही। मणि आँगनमें से कूदकर गोदावरीके चौकेमें से होती हुई दौड़ी और पास ही में रखे हुए पानीको उठाकर उसने बालकके झबलेपर उड़ेल दिया। बालक रो उठा—मारुति उठकर खड़े हो गये—गोदावरीकी आरती बुझ गई—दोनों लड़कियाँ कारण समझे बिना कोई गंभीर घटना हो गई है ऐसा समझकर जोर जोरसे चिल्लाने लगीं।

"लीजिये, बड़ा भाग्य था जो बच गया" मणिने कहा।

मुटका पहने हुए हैं इसका विचार किये बिना मारुतिने पुत्रको गोदमें ले लिया। तीनों लड़कोंकी चिल्लाहट इतनी भीषण थी कि किसीकी समझमें नहीं आया कि किया क्या जाय।

"अरे तुम सब मर रही हो क्या ?" गोदावरी ने चीत्कारकर कहा, लड़कियाँ चुप हो गईं।

"लाओ बहन ! लड़का मुझे दे दो और तुम नहा कर भोजन परोस दो। रमण ऐसे चुप नहीं होगा। मेरे लिए तो द्वादशी और तेरस सब बराबर है। मेरा भी कोई जीवन है ? ये सब मर भी नहीं जाते" बालकको संबोधन करके बोली "यह लड़का है या कोई देव ?"

"बिचारा बच गया, उसपर अब बक क्या रही हो ?" धीमे स्वरमें बुरा न लगे इस प्रकार मारुतिने कहा।

"तुम्हें, इससे सरोकार। इसने छू लिया तो अब तुम बिना नहाये खाओगे। अब तुम भर पेट खाओ न, मैं तो कहते कहते थक गई।"

थोड़ी देरमें मणि नहाकर आ गई और मारुतिको भोजन कराने लगी। मारुतिका हृदय पुत्रको रक्षा करनेसे भर गया था जिससे वह चुपचाप भोजन करने लगे। भोजन करके उठने पर आर्द्र नेत्रोंसे मणिकी ओर देखते हुए वह बोले - बहन ! आज तुमने मुझपर जो अनुग्रह किया है, उसे मैं कभी नहीं भूल सकता।

ऐसा स्नेह-पूर्ण संबोधन जीवनमें मणिने आज पहले ही पहल सुना था। जिससे इन शब्दोंको सुनकर उसकी आँखोंमें भी आँसू आ गये।

मारुतिके कोर्ट चले जानेके पश्चात् लोगोंकी अशुद्धता पर बड़बड़ाती हुई गोदावरीने फिर से नहा धोकर अलग खिचड़ी

बनाकर भोजन किया। पुत्रके बचानेपर उसने भी मणिका अह-सान माना। मणि को शांति मिली उसने सोचा इस प्रकार यदि जीवन बीत जाय तो कैसा अच्छा! फिर उसने एक गहरी साँस ली। भला उसका भाग्य ऐसा कहाँ?

१६

स्वार्थपरता

डाक्टर धनेशचन्द्र पहले तो एकदम सीढ़ीसे उतर गये; फिर ऊपर चढ़ने इरादा आगया कि मारुतिके डरने उसपर अपना आतंक जमा दिया; पुलिस का विचार आया लेकिन किस अपराध के लिए यह समझमें नहीं हुआ। कोई आधुनिक परशुराम पृथ्वी को क्षत्री विहीन करनेका संकल्प करे ऐसे दृढ़ निश्चयकेसाथ मदन-लाल से बदला लेनेका डाक्टरने पक्का विचार कर एक बार नहीं, अनेक बार भँवें चढ़ाईं किन्तु कोई देखनेवाला न था। अपशब्द जबान पर आये पर कोई सुननेवाला भी न था; जीवको हनन करनेवाली मुट्ठियाँ उसके हाथकी बँधी किन्तु वहाँ पर ऐसा कोई उपस्थित ही न था जिसपर उसकी परख की जा सके।

निराशा और विफलतासे पैर पटकते हुए साधारण शब्दोंमें कहा जाय तो शीघ्रतासे—डाक्टर चला। धरणी काँप उठी और नये विचारों की सृष्टि हुई। डाक्टर तरफड़दासके मकानकी ओर मुड़ा; महारथी अर्जुन श्रीकृष्णकी सहायता माँगनेके लिए गये।

यह श्रीकृष्ण परमात्मा अपनी छोटी सृष्टिमें लीला कर रहे थे। कोट उतारकर, कमीजकी आस्तीन चढ़ाकर धोतीका कछाड़ा

भारकर तरफड़दास प्रेसके रोलरके अटक जानेका कारण समझ रहे थे। डाक्टर पहुँचा और छापाखानाके नौकरोंकी भी कुछ परवाह न करके तरफड़दासको बलाकर सब कुछ कह गया। एक बार कहा, पर बड़ी शीघ्रतासे एक साँसमें सब बातें कही जानेसे तरफड़दासकी समझमें कुछ भी नहीं आया; दो तीन बार दोहराने पर वह कुछ समझ सके। वे भी सुनकर क्रोधसे लाल हो गये। स्त्री बड़ी सुंदर है, यह सुनते ही जीभसे लार टपक पड़ी, उनकी रसिकता उछल पड़ी और उसके उछलते ही उनके क्रोधका पारा १०८ डिग्री पर पहुँच गया।

तरफड़दास ने पहले सोचा कि 'वकील की दुर्गति' हेडिङ्ग देकर सब घटना अपने 'मार्तण्ड प्रकाश' में प्रकाशित कर दें, पर इसके साथ ही साथ सभाकी भी बदनामी होगी और शायद मौका पाकर मारुति भी कानूनी कारवाई न कर बैठे, इस डरसे इस विचारको छोड़ देना पड़ा।

कोई चिन्ता नहीं है मित्र! चलो, राय साहबके पास चलकर सभाकी कार्यकारिणीसमितिकी बैठक बुलावें। इसने अपने मनमें समझ क्या रखा है?

"बहुत ठीक" डाक्टरने पूर्तिकी। ऐसी स्वार्थ परता! इस देशका होनेवाला क्या है? लोक-शासनकी पद्धति न जाने लोग कब सीखेंगे? जरासी प्रभुता मिली कि सिरपर छप्पर उठा लेते हैं।"

"यह तो मैं पहले से जानता था। मारुति बड़ा पक्का बना हुआ है। बहुत ठीक, पर इसे भी मजा चखा कर छोड़ूँगा— जरा नीचे गिरे—तभी तो बात! चलो गंभीरलालके पास।"

इस प्रकार सलाह मशविरा करते हुए ये दोनों नेता मारुति से लड़नेका साहस करके बाहर निकल पड़े।

———

१७

डाक्टरका 'प्रैक्टिकल' कार्य

तीसरे पहर मारुति आज कोर्टसे कुछ जल्दी ही चले आये। उनका सदैव स्वस्थ रहनेवाला मस्तिष्क आज अस्वस्थ हो गया था। सच तो यह है कि पुत्रकी रक्षा करनेसे मणिकी ओर उनका चित्त कुछ आकृष्ट हो गया था और उसे किसी ठीक रास्ते पर लगानेके विचारसे घर आते ही मणिको बुलाकर कहा—बहन! बताओ अब क्या करना है?

"क्यों? आप नाम बतावें तो उन सज्जनसे जाकर मिल लूँ, और क्या?"

"देखो!" जरा नम्रता पूर्वक बातचीत का ढंग बदलते हुए बोला—"मैं सच्ची बात कहूँ? स्वयं अपने पर मुझे घृणा हो रही है।"

"क्यों भाई?"

"हमने जो विज्ञापन निकलवाया था वह बिलकुल झूठा था। हमें तो इसी बहाने थोड़ा बहुत यश लूटना था। हमें विश्वास था कि कोई विधवा—" कहकर वह रुक गया।

"मैं समझ गई!" मारुति से जो कुछ नहीं कहा गया उसे समझकर मणिने कहा।

"हाँ, अब पीड़ा हो रही है! आप कहती हैं कि आपके कोई है नहीं, बताइये क्या किया जाय?"

मणिका हृदय खिन्न हो गया, अब वह कहाँ जाय? लोगों

की मूर्खताकी वह भोग्य सामग्री बनी। वह चुपचाप देखती रही।

"आप जरा भी घबड़ाएँ नहीं" मारुति ने साहस देते हुए कहा "मै आपको दु:खी अवस्था में नहीं रहने दूँगा। इस प्रकार घरबार छोड़कर दूसरे ठिकाने आनेमें आपको जो कष्ट हुआ उसे मैं भलीभाँति समझता हूँ।"

"तब कोई विवाह करनेवाला है ही नहीं ?" अतिशय करुणोत्पादक स्वरमें मणिने पूछा।

"बहन आपको अनुभव नहीं है। अपने समाज में भले आदमियोंका पूर्ण अभाव है। कोई टुटपुँजिया मिले भी तो वह व्यर्थ है। इसकी अपेक्षा तो कहीं एकान्तमें रहकर प्रभुका भजन करना कहीं अच्छा है !"

ओंठपर ओंठ रखे हुए मणि खड़ी सब सुनती रही। कुछ देर बाद वह बोली—प्रभुका भजन ! किसलिए ? प्रभुने मुझे इस प्रकार दु:खी रखा, अब मुझे चिन्ता किस बात की है ?" उसकी आँखें चमक उठीं। सामने बैठा हुआ मारुति उसका यह आवेश देख रहा था।

"आपके साहसकी बलिहारी है पर यह सब निरर्थक है। अपने यहाँ तो हम सब "काशीकरवट* दिखानेवाले हैं।" कहकर अचिन्त्य विचारोंके आ जानेसे एकाएक एक बार मारुतिकी दृष्टि भीतरकी ओर गई "हाँ ! एक रास्ता है।"

"क्या ?"

"धनेशचन्द्रसे कहूँ, उसकी स्त्री मर गई है। उसमें पानी हो तो विवाह कर सकता है पर मुझे आशा नहीं है कि वह इतना साहस कर सकेगा।"

---

* काशी का एक स्थान जहाँ यात्रियों को ठगा जाता है।

"देखो" निराशासे मणिने कहा "दुनियाँमें पुरुषों को सब कुछ शोभा देता है; मुझे भी कुछ होने जाने की आशा नहीं है। मेरा भाग्य ! मैं भी दुःख झेलते झेलते बेपरवाह होती जाती हूं।"

"नहीं, घबड़ाओ मत ! यथाशक्ति तुम्हारे खाने पीनेका प्रबन्ध कर दूँगा।"

"भाई ! इसकी मुझे तनिक भी चिन्ता नहीं है ! आप मुझे पहचान नहीं रहे हो। जहाँ तक सांसारिक सुख भोगनेका स्वप्न देखती हूँ, जहाँ तक विवाह करनेकी धुन लगी हुई है वहाँ तक तो ठीक है; नहीं तो मुझमें सब कुछ करनेकी शक्ति है। भोजन जब तक ये दो हाथ हैं तब तक क्या दो रोटी नहीं मिलेगी ?"

मारुति यह भाषा, यह जोश देखता रह गया। उसके मनोराज्य में स्त्रियों के आदर्श का निर्माण गोदावरीकी चाल-ढाल, आचरण और रहन-सहनसे बहुत कुछ हुआ था जिससे मणिकी बात सुनकर वह दंग रह गया उसका हृदय कुटुम्ब-वत्सल था; अपनी पत्नीसे चाहे वह जैसी भी हो प्रेम करता था फिर भी उसके मनमें विचार उत्पन्न हुआ कि यदि किसी जादू से मणि और गोदावरी में अदल-बदल हो जाय तो कैसा अच्छा हो।

"अच्छा ! तुम जरा यहाँ बैठो मैं डाक्टरसे मिलकर आता हूँ" कहकर मारुति वहाँसे चला गया। सबेरेकी कहा-सुनीके कारण डाक्टरसे भेंट करनेके लिए जानेकी उसकी जरा भी इच्छा नहीं हो रही थी केवल मणिके लिए वह गया।

मारुति डाक्टरके यहाँ पहुँचे तो उसी समय डाक्टर गम्भीरलालसे मिलकर तुरत ही आये थे। मारुतिको देखते ही वह पुनः झुँझलाने लगे।

"माईडीयर डाक्टर ! क्षमा करो" मारुतिने सदैवके समान कहा—"सबेरे मैं जरा गरम हो गया था।"

डाक्टरने क्रोधका पूर्ण रूप प्रकाशित किया—जिसे अच्छी प्रकार प्रदर्शित न कर सकनेके कारण वह चिड़चिड़ाई हुई स्त्रीके समान दिखाई पड़ रहा था। चुपचाप मारुतिकी ओर देख रहा था। मारुति अपने वाक्चातुर्यसे काम लेता रहा, आखिर डाक्टर बोला—पर मैं कैसे भूल सकता हूँ ? मुझ जैसे मनुष्य पर आक्षेप ! ऐसे अपशब्द ?"

"किन्तु भाई क्षमा माँग रहा हूँ—तब क्या फाँसीपर चढ़ाओगे ? अगर तुम्हारे वशकी बात हो तो वह भी कर दो, पर मेरी बात तो जरा सुन लो।"

"ऐसे निःस्वार्थ सुधारके काममें इतना द्वेष ! मैं कभी नहीं भूल सकता" कहकर कुर्सीपर पीठके बल उटककर छतकी ओर देखने लगा।

मारुतिको उसे एक तमाचा मारनेकी इच्छा हुई पर मनको बड़ी कठिनतासे संवरणकर वह बोला—भाई ! जो कुछ हो गया सो हो गया ! अब इस स्त्रीका कुछ ठौर-ठिकाना लगाना है अथवा इसी प्रकार उसकी दुर्दशा करना है ?

"मैं क्या जानूँ ? मैंने अपने अध्यक्ष रावसाहबसे सब कुछ कह दिया है। उन्हें जो समझ पड़ेगा करेंगे। मुझपर अब कुछ उत्तरदायित्व नहीं रहा।"

"अरे बहुत कुछ है ! घबड़ाते क्यों हो ? अब इस स्त्रीके लिए कोई अच्छा वर बताओगे ?"

"मैं क्या करूँ ? मेरे हाथमें रहने देते तो सब ठीक था। तुमने मेरा अपमान किया, मेरा मेरा !" कहकर डाक्टरने टेबुल पर जोरसे हाथ पटका।

"किन्तु जैसे कहो वापस कर लूँ, लेकिन कुछ बात भी सुनोगे ?"

"ऐसा !"

"हाँ ! मैं यही बात तो करने आया हूँ।"

"बहुत ठीक ! तब उसे मेरे यहाँ एक क्षमायाचना पत्रके साथ भेज दो, है स्वीकार ?"

"ओहो ! बस इतना ही ? ठीक, क्षमायाचना पत्र चाहे तो पाँच लिखकर भेज दूँ और रमणी को भी भेज दूँ। पर एक शर्त है ! इसके साथ विवाह करना स्वीकार करो तब !"

मानो सिर पर बिजली गिरी हो इस प्रकार एकदम डाक्टर चौंककर खड़ा हो गया। उसे ऐसा मालूम पड़ा कि मारुति पागल हो गया है।

"क्या !"

"तुम विधुर हो, कोई अधिक सगे सम्बन्धी भी नहीं हैं। सुधारक हो साथ ही कुछ 'प्रैक्टिकल' काम भी करनेके लिए उत्सुक हो" वकीलने सब कारणोंको बताते हुए कहा।

"क्या बात करते हो ? तुम्हारा प्रैक्टिकल काम गया जहन्नुम में।"

"अरे, पर तुम तो पढ़े लिखे हो, मूर्खके समान ऐसा घबड़ाते क्यों हो ? जरा 'मॉरल करेज़' (नैतिक साहस) तो रखो।"

"अर्थात् मैं गधा बनूँ, विधवासे विवाह कर अपने मुँहमें कालिख पोतूँ !"

"किन्तु समाजसुधार—"

"गया भाड़में तुम्हारा समाज सुधार ! बड़े बड़े सुधारकोंके पुछल्ले भी तो स्वयं विवाह करते नहीं और मैं विवाह करूँ ?" यह बात तो जाने दें, महाराज ! क्या आप मुझे यहाँ इस समय चिढ़ाने आये हैं। वकील साहब ! आप अपना प्रैक्टिकल काम अपने पास रखें।"

"अरे भाई! यह तो जो तुम कह रहे थे वही मैं दुहरा रहा हूँ। 'प्रैक्टिकल' कामके हिमायती तो तुम्हीं थे। अच्छा! तब इस रमणी को तुम्हारे पास कैसे भेज दूँ? जरा विचार करके देखो।"

"मारुति! तुम सीधे आदमी हो, इससे तुमसे सीधी बात करूँगा।" कहकर अपनी आवाज को डाक्टरने धीमी कर दिया "इस रमणीके साथमें विवाह तो नहीं कर सकता किन्तु वह मेरे घरमें आकर भले ही रह सकती है। मैं उसे भोजन दूँगा, कपड़ा दूँगा और चाहो तो अपना दो हजारका बीमा भी उसके नाम कर दूँगा।"

मारुति की समझ में आते ही उसका चेहरा क्रोध से आग बबूला हो गया; किन्तु उसने अपना क्रोध पी कर कहा—यह मैं नहीं जानता। उससे पूछकर कुछ जवाब दे सकता हूँ।

"उससे क्या पूछना है? भेज दो उसे मेरे घर। यह तो तुमने अपने घर पर रख लिया इससे सब हुआ नहीं तो कभी का यह प्रकरण समाप्त हो गया होता।"

"यह नहीं हो सकता। वह स्वीकार करेगी तो ठीक है नहीं तो मेरे घर तो वह है ही।"

"क्यों मारुति! तू भी नीयत बिगाड़ बैठा है क्या?"

"खबरदार! जरा मुँह सँभाल कर बातें कर" मारुति क्रुद्ध होकर बोले "अच्छा अब जाता हूँ।"

कहकर खिन्न हृदय मारुति वापस आया।

मणि उसकी बाट जोहती हुई बैठी थी। मारुति ने आकर यथाशक्ति बहुत कुछ सफाईसे बात बना कर सब हाल कहा। सुनते ही मणिका मिजाज बिगड़ गया। उसकी आँखोंमें खून उतर आया; उसकी छाती क्रोधसे फूलने लगी।

"दुनियाँ भरने समझ रखा है कि एक निराधार स्त्री की उत्पत्ति अपनी माँ के कोखसे हुई ही नहीं है! सभी ऐसी ही बातें करते हैं!"

"बहन किया क्या जाय? अपने समाजका गठन ऐसा ही बेढंगा है।"

"बहुत ठीक! तब मैं इस समाजको भी दिखा दूँगी कि मैं क्या कर सकती हूँ।" मारुति उसका यह रौद्ररूप देखता ही रह गया "तुम लोगों के लेखे तो मैं सड़क पर सबकी ठोकर खानेवाली रोड़ा हूँ।"

"बहन! ऐसा किए बिना छुटकारा भी तो नहीं है।"

"यदि छुटकारा नहीं ही होगा, यदि संसारके पापी मुझे शांतिपूर्वक नहीं ही रहने देंगे तो मैं अपनी इज्जतको—आबरूको बेचूँगी—किन्तु तुम्हारे डाक्टर जैसे कापुरुषोंके हाथ नहीं। मैं बेचूँगी तो सारी दुनिया को खरीद लूँगी। मेरा वश चले—मेरा यदि वश चलेगा तो पुरुष मात्रको अपने तले रौंद डालूँगी। तुम्हें रुचनेवाले नियम, तुम्हें रुचनेवाला संसार और तिसपर भी तुम्हारी ही रुचिके अनुसार मैं अपने अस्तित्वको बेच दूँ। क्यों, किस लिए? एक टुकड़ा रोटी खाकर तुम्हारी गुलामी करने के लिए! ठीक है भाई! मैं अपना प्रबंध स्वयं कर लूँगी।"

"नहीं, बहन! अकेले ऐसा करनेकी आवश्यकता नहीं है। जरा ठहरो, देखो क्या होता है, कहो तो रावसाहबसे कहकर किसी पाठशालामें अध्यापिकाका पद दिला दूँ। तुम अकेली रह सकती हो?"

"अच्छी बात है, देख लो" दुःखी होकर मणिने कहा "जो हो जाय सो ठीक है, चाहे जितना परिश्रम करो मुझे तो कुछ होता जाता दीखता नहीं।"

"क्यों ?"

"मेरे भाग्यमें नहीं है और क्या कहूँ ?"

इतनेमें एक चपरासी ऊपर आया।

"क्या है ? क्या तुम रावसाहबके चपरासी हो ?"

"जी हाँ, रावसाहबने एक चिट्ठी दी है।"

"लाओ दो" मारुतिने पत्र लेकर खोला, पढ़ते ही उनका चेहरा उतर गया।

"बहन ! यह डाक्टर चैन नहीं लेने देगा।"

"क्यों ?" अतिशय दुःखसे उत्पन्न बेपरवाहीसे मणिने पूछा।

"कल सन्ध्या समय समाज-उद्धारिणी-सभाकी कार्य-समिति की बैठक बुलाई गई है। रावसाहबने तुम्हें लेकर मुझे वहाँ बुलाया है।"

"किस लिए ?"

"मुझसे जवाब तलब करनेके लिए। यह उस डाक्टर और तरफड़दासकी कारस्तानी है।"

"क्या तुम पर डाँट पड़ेगी ?"

"इसमें क्या करना था ? मैं इस सबको मजा चखाऊँगा, घबड़ाओ नहीं।"

१८

गम्भीर लालके घर पर

रावसाहब गम्भीरलाल अपने सुंदर दीवानखानेमें एक आरामकुर्सी पर स्वयं लेटे हुए थे। उनके सुन्दर मुखसे उत्सुकता

झलक रही थी। गत दो दिनोंकी बातचीतसे जरा उन्हें मजा आ रहा था। एक सुन्दरी, निराश्रय युवती आकर इस प्रकार गली गलीकी ठोकर खाय और उस सम्बन्धमें न्याय करनेका भार स्वयं उन्हें मिले उनके लिए ये बड़ी ही संतोषदायक बातें थीं। उन्हें बहुत प्रकारकी शिक्षा मिली थी जिससे वे रसज्ञ और सौंदर्यमय भी थे; इसमें भी भिन्न भिन्न प्रकारके शरीर सौन्दर्य पर विशेषाध्यन देनेकी उनकी आदत थी। यह युवती किस श्रेणीकी होगी, डाक्टर धनेशचन्द्र द्वाराकी गई प्रशंसा किस हद तक सत्य निकलेगी इस समय इन्हीं विचारोंमें वे निमग्न थे।

इतनेमें नौकरने लाकर कुछ नाश्ता रखा जिसे उदरस्थ कर पान जमाया और साढ़े सातकी बाट जोहते हुए वह बैठ गये।

"मधु !"

"जी।"

"यदि मदनलाल मारुति अपने साथ कोई स्त्री ले आये तो उसे भीतरके रास्तेसे लेजाकर बगलके कमरेमें बैठाना।"

"जी हजूर" कहकर नौकर चला गया।

सवा सात बजे वह उठकर शीशेमें अपना चेहरा देखने लगे। अपने ऊँचे, रूपवान शरीरका उन्हें बड़ाही अभिमान था।

इसके बादही तरफड़दास और धनेशचन्द्र पहुँचे। असली सच्ची बात छिपाकर, मारुति धनेशचन्द्रकी खुशामद करने आया था यह कह कर वे मारुतिकी हँसी उड़ाने लगे। थोड़ी देर बाद अँग्रेजी स्कूलके हेडमास्टर, मामलतदार एवं आफिसके कार्यकर्त्तागण आ धमके। ठीक साढ़े सात बजे शराबके ठेकेदार प्रतिष्ठित पारसी नसरवानजी आये। शायद लोग समाज-उद्धारिणी-सभाको केवल हिन्दुओंकी संस्था कह दें, इस अपवाद से बचनेके लिए एवं इसके संचालक बड़े ही विशाल हृदयके हैं

यह स्तुत्य हेतु जतानेके लिए मि० नसरवानजीको कार्यसमितिमें स्थान दिया गया था। फलकी डाली अथवा दूसरे उपहार पहुँचाये बिना रावसाहबके यहाँ बारबार जाने आनेका सुअवसर मिलेगा इस ख्यालसे इस उत्साही सज्जनने उस पदको बड़े ही आदर पूर्वक स्वीकार भी कर लिया था। इसी समय पास ही से मारुतिकी सदैवके समान हँसती हुई आवाज सुनाई दी—कहिये रावसाहब ! भीतर आ सकता हूँ क्या ?

रावसाहबके तेज कानमें किसीके भीतर जानेकी आवाज आई। उन्होंने सोचा कोई हरकत नहीं है ! "आइये मि० मारुति" गम्भीर स्वरमें रावसाहब बोले।

मि० मारुति हँसते हुए, सबको सलाम करते हुए, कोटका बटन सदाकी भाँति खुला रखे हुए रावसाहबके पास जाकर बैठ गये।

"कहो भाई ! आज सहसा इस प्रकार समितिका अधिवेशन करनेका क्या कारण हुआ ? मेरे नाम कोई वारण्ट ओरण्ट तो नहीं निकलवाना है ?"

"सीधी तरहसे यदि लोग नहीं मानेंगे तो वह भी करना होगा।" मि० तरफड़दासने टकोरा दिया। रावसाहबने उनकी ओर जरा तरेरते हुए देखा जिससे वे चुप हो गये। तब गम्भीर-लाल ने कहा "मि० मारुति ! आपके लिए हम लोगोंके हृदयमें ऊँचा स्थान है, हम आप पर किसी प्रकारका आक्षेप करना नहीं चाहते किन्तु आपने कुछ काम ऐसे किए हैं जिनके सम्बन्धमें इस समितिको कुछ समझनेकी आवश्यकता आ पड़ी है—"

"मैं सब कुछ समझानेके लिए, सबका जवाब देनेके लिए प्रस्तुत हूँ" मारुति बीच ही में बोल उठे।

उन्हें बीचमें बोलनेसे रोकनेके लिए गंभीरलालने हाथ उठाया।

"कार्य समितिको स्पष्टीकरणकी आवश्यकता है" वे गंभीरता से एक न्यायाधीशको शोभा देनेवाली शांति और प्रभुतासे बोल रहे थे "एक सहायक मंत्रीके अधिकार से अत्याचार कर एक स्त्री को जो समाज-उद्धारिणी-सभाका आश्रयं ग्रहण करनेके लिए आई थी, उसे आप अपने घर लिवाले गये हैं एवं उसे अपने यहाँ किस अधिकारसे तथा किस प्रकार रखना चाहते हैं यह पूछने पर आप कुछ बतानेसे इन्कार करते हैं, क्या यह सच है।"

"बिलकुल झूठ!" मारुतिने चिल्लाकर कहा। जिन सदस्यों को यह बात मालूम नहीं थी उनकी उत्सुकता बढ़ी। वे ध्यान-पूर्वक सुनने लगे।

"खामोश रहो! मैं इतनी गहराईमें नहीं उतरना चाहता।"

"जैसी इच्छा।"

"मैं चाहता हूँ कि उस स्त्रीको आप इस समितिके सुपुर्द कर दें।"

"यह उतनी सरल बात नहीं है जितनी आप समझ रहे हैं। वह स्त्री पहले मेरे कार्यालयमें आई थी।"

"आपका कार्यालय! वही सभाका भी तो कार्यालय है।"

"बहुत ठीक! एक युवती डाक्टर धनेशचन्द्र जैसे बाँड़ेके घर में—"

"सभापति महोदय! मैं एक आर्डर (नियम) का पाइण्ट उठाता था तो मेरा ऐसा अपमान!" कहकर डा० धनेशचन्द्र हास्यजनक रीतिसे गम्भीरलालको संबोधन करते हुए अपना हाथ बढ़ाकर खड़े हो गये।

"जिसे स्त्री न हो वह बाँड़ा, इसमें अपमान क्या हो गया?"

मारुतिने पूछा "अगर स्त्री हो तो कहो।"

"ऑर्डर, ऑर्डर" की एक दो आवाजें धीमेसे सुनाई दीं।

"आप अपनी बात पूरी कीजिये। जबतक ये अपनी बात पूरी न कर लें तबतक बीचमें कोई न बोले।"

"किन्तु महोदय यह तो ऐसी बातें कहते हैं जो असहनीय हैं" डाक्टरने फिर पुनः कहा।

"तो उठकर बाहर चले जाओ!" मारुतिने शांतिसे कहा। वह ऐसी ऐसी बातें कहनेमें बड़ा कुशल था।

"चलिये! आप आगे बढ़िये!"

"जी हाँ! ऐसी स्त्रीको एक कुटुम्ब वालेके घर ले गया तो इसमें मैंने कौनसा अपराध कर दिया?"

"इसके बाद?"

"इसके बाद क्या? आप मेरे मित्रसे ही क्यों नहीं पूछते! सज्जनों! यह जो विज्ञापन दिया गया था इन्हींकी प्रेरणासे। ये कुछ 'प्रैक्टिकल' काम करनेवाले थे इसलिए। मैंने सोचा कि इन्हें अपने लिए इस प्रकारका कुछ विचार होगा। इस रमणीके आनेके पश्चात् मैं इनके घर गया, हाथ पैर जोड़ा, और कहा कि जीवनमें भावना सिद्ध करनेका अच्छा अवसर हाथ लगा है। समाज-सुधारको विजयपताका 'प्रैक्टिकल' कार्य करके फहराने का अच्छा मौका आ गया है। मैंने उनसे विवाह कर लेनेकी प्रार्थना की। रमणी सुन्दर है, अच्छे कुलकी है, पढ़ी लिखी है। सज्जनों! यह मेरे अग्रगण्य सुधारक, 'प्रैक्टिकल' काम करनेके हिमायती, नवीन युगके मार्टिन ल्यूथरने खरेखर अस्वीकार कर दिया। यह सब इस समितिके परिज्ञानार्थ मैं कह रहा हूँ। और भी कहूँ? डाक्टर! है आज्ञा? पीछे कहोगे कि बेइज्जती की "मारुतिकी चाबुकके समान तेज जीभके आगे धनेशचन्द्र

इस प्रकार पीछे दबककर बैठ गया मानों ठंढसे काँप रहा हो। क्या जवाब दूँ, यह उसकी समझमें नहीं आया। उसके ओंठ सूखकर सफेद हो गये।

"मेरी आज्ञा ?" उसने बगैर समझे हुए पूछा।

सब लोगोंकी जिज्ञासा बहुत बढ़ गई थी। नसरवानजी सेठ तो चुटकी पर चुटकी सुँघनी सूँघते हुए बड़े ही रसके साथ सुन रहे थे। वे बोल उठे—वकील साहब! जो कुँछ कँहना हो उसे कँहकर पूरा करडालो नँ·"

"हाँ! यह समिति जो कुछ आप लोगोंके बीचमें हुआ हो उसे जानना चाहती है।"

"किन्तु यह तो कोई जातीय बात मालूम पड़ती है" मि० तरफड़दास अपने मित्रकी रक्षा करनेकी नीयतसे बोले।

"किन्तु समाज-उद्धारिणी-सभासे सम्बन्ध रखती है, इससे हमें जाननेका पूर्ण अधिकार है" अहलकारोंने रावसाहबकी मुखमुद्रा परसे उनके मनके भावकी कल्पना करके बोलनेका साहस किया।

"ठीक है" गम्भीरलालने निर्णय किया।

"तब जो मैं कहता हूं वह ध्यानसे सुनिये। जब मैंने विवाह करनेकी प्रार्थनाकी तब आपने—डाक्टर साहबने एक ऐसी योजना मेरे सामने रखी जिसके स्मरण मात्रसे मेरा कलेजा दहल उठता है।"

"तब मत कहो" तरफड़दासने कहा।

"सज्जनों! इन्होंने जिस स्त्रीके साथ विवाह करनेका वचन दिया था, उसे आप भलीभाँति समझते हैं? वही मनुष्य आज उसे इस प्रकार धोखा देनेके लिए प्रस्तुत हुआ है।"

"झूठ, बिलकुल झूठ!" डाक्टर आखिर बोल ही उठा

"बिलकुल झूठ है ! देखिये आप सब साक्षी हैं, मैं मुकदमा चलाऊँगा। मेरा अपमान ! मेरी बेइज्जती ! रावसाहब ! आप फर्स्ट-क्लास मैजिस्ट्रेट हैं। मेरी फरियाद सुनें। आप लोगोंके सामने मेरा ऐसा अपमान !"

"आप शांत रहें डाक्टर साहब ! हम सब कुछ करेंगे" तरफड़दासने आश्वासन देते हुए कहा।

"जो करना हो सो करें।"

"सज्जनों ! जरा कोलाहल शान्त होने पर गम्भीर आवाज सुनाई दी। ऐसे झगड़ोंमें पड़ना हमें शोभा नहीं देता। ये लोग अपना निजी द्वेष जिस प्रकार चाहें ते करें। क्यों सेठ नसरवानजी ?"

नहीं हजूर !" हेडमास्टरने पहली बार धीरेसे मुँह खोला। बात बहुत आवश्यक प्रतीत होती है। यदि सत्य हो तो हमें सुनना चाहिये। यह अनीति क्षय सदृश छूतहा रोग है, हमारे शहरभरके नवयुवकों पर इसका बुरा असर पड़ सकता है।"

"मास्टर साहब ! रावसाहब ठीक कह रहे हैं" मारुतिने यह सब हलचल देखकर कहा "आपको डाक्टरकी छूत नहीं लगेगी, इससे आप बेफिक्र रहें। किन्तु इन सब बखेड़ोंमें उस रमणीका निपटारा तो रही जाता है, उसका क्या होगा ? उस बिचारीके सम्बन्धमें भी तो आपलोग कुछ विचार करें, नहीं तो रात अधिक हो जायगी।"

"बताइये, तब क्या उसे लौटा देनेके लिए तैयार हैं ?" गम्भीरलालने पूछा। स्त्रीको देखनेकी उनकी उत्कंठा क्षण क्षण बढ़ती जा रही थी।

"हाँ ! यदि आप उसके लिए उत्तम व्यवस्था कर सकें तो।"

"क्या ?"

"सभापति महोदय ! मुझपर किये गये आक्षेपोंका निर्णय भी कुछ हो जाना चाहिये।" डाक्टर और तरफड़दास कुछ निजी बातचीत कर रहे थे जिनके समाप्त हो जानेपर डाक्टरने कहा, "मैंने ऐसा कभी कहा ही नहीं था। मेरे जैसे सद्गृहस्थपर ऐसे कुत्सित अभियोग !"

"तब आपने क्या कहा था ?" हेडमास्टरने पूछा।

"सज्जनों ! मेरा ऐसा मत है कि यह बात यहीं खतम कर दी जाय। किसीने जल्दीमें कुछ कह दिया होगा जिसका उलटा दूसरेने सुन लिया होगा। खूनके गरम होजाने पर क्या क्या नहीं होता। आप दोनों मित्र हैं, अपनी सभाके स्तम्भरूप हैं। आप दोनों अपना-अपना विरोध भूल जायँ और मित्रता कर लें। इससे अपनी सभाका भी गौरव बढ़ेगा। यह कलह यदि आगे बढ़ा, और कोर्टमें मामला गया, तो हमारी सभाकी और समाज सुधारकी सबकी कैसी छीछालेदर होगी।"

"बहुत ठीक है" अहलकारोंने अनुमोदन करते हुए कहा।

"मुझे कोई आपत्ति नहीं है।" मारुतिने कहा।

"मारुतिको क्षमायाचना करनी चाहिये।" तरफड़दासने कहा।

"जो कुछ मैंने कहा मेरी समझसे वह सत्य है, मैं क्षमा-याचना क्यों करूँ ?" मारुतिने कहा।

"मि० मारुति ! आप जैसे बुद्धिमान व्यक्तिको जरा समझ बूझकर कुछ कहना चाहिये।" गम्भीरलालने कहा।

"रावशाहब कह रहे हैं तब आपको क्या अड़टँन है।" मि० नसरवानजीने कहा।

"अच्छी बात है ! मेरी समझसे जो कुछ मैंने कहा है, सच है। यदि मेरा समझना गलत है तो मैं अपने शब्दोंको वापस लेता हूँ, बस ?"

"चलो आगे बढ़ो।"

"महोदय! अभी तो मामला जहाँ का तहाँ ही है।"

"कब की पंचायत ले बैठे हो? मेरा अमूल्य समय व्यर्थ नष्ट कर रहे हो?" गम्भीरलालने क्रोधावेशमें कहा "एक घंटा हो गया तबसे बैठे क्या घास काट रहे थे? ऐसा ही है तो आपही बोल लीजिये! मैं त्यागपत्र देता हूँ। नौसेन्स, मानो लड़कोंका खेल हो रहा है। मि० मगनलाल, वह कलम और पैड उठाना तो, त्याग-पत्र लिखकर दे दूँ।"

कहकर आग बबूला होकर रावसाहब वहाँ से उठ गये। बच्चों पर बापके बिगड़नेपर जैसे बच्चे चुप होकर बैठ जाते हैं वैसे ही सब वहाँ खामोश होकर बैठ गये और रावसाहब की ओर टकटकी बाँध कर देखने लगे। गम्भीरलाल सेठ जाकर एक साफा पर लेट गये, पीछे पीछे सेठ नसरवानजी हाथमें पंखा लेकर गये और धीरे धीरे उन्हें पंखा करने लगे।

इस ठोकरसे, इस क्रोध प्रदर्शनसे समितिके सदस्य ठप हो गये। सिकन्दरका मानो कोई वज्र शासन निकला हो और उसके सामने जिस प्रकार विजित सैन्य काँपती हुई खड़ी हो वैसे ही वह सभा काँपने लगी। रावसाहब इतनी शक्ति संचालन करने वालेका ऐसा कोप! वहाँ बैठे हुए सभीके विचारसे पृथ्वी डोलने लगी, प्रबल मारुत बहने लगा, प्रलयंकर समुद्र आगे बढ़ने लगा।

अन्तमें इसी प्रकार बहुत देरतक नाटक होनेके पश्चात् तरफड़दासने अहलकारोंसे कहा, उन्होंने हेडमास्टरसे कहा। हेडमास्टर जाकर मि० नसरवानजीके पास बैठ गये। नसरवानजी रावसाहबको जोरसे हवा करने लगे, हवा खाकर रावसाहब कुछ रीझे, रीझ जाने पर लोगोंने मनाया और मनाये जाने पर वे उठकर पुनः अपने स्थान पर आकर बैठे। उनका कोप काफूर हो

गया पर अब कुछ दृढ़ता पूर्वक अध्यक्षता करना उन्होंने प्रारम्भ किया।

"अध्यक्ष महोदय! मेरी विनती यह है कि इस रमणीको यदि आप किसी म्युनिसिपल कन्या-पाठशालामें अध्यापिकाके पदपर नियुक्त कर दें तो उस आश्रयहीनको कुछ सहारा हो जाय अन्यथा आप उन्हें रखेंगे कहाँ।"

"क्यों, क्या उसे कोई सम्बन्धी नहीं है?"

"जी नहीं, वह तो दुःखकी मारी बिचारी अकेली भटकती फिरती है।"

"ऐसा!" गम्भीरलालके गौरवर्ण कपालपर सिकुड़न पड़ गई।

"किस जातिकी है?"

"ब्राह्मण है।"

गम्भीरलालकी भव्यताका अदृष्टपूर्व भंग हुआ।

"किस गाँवकी रहनेवाली है?" उनके साफ गलेमें अब कुछ कँपकँपी जैसी मालूम पड़ रही थी। उन्होंने दृढ़तासे अपना सिर ऊँचा कर अपना प्राकृतिक गौरव धारण करनेका प्रयत्न किया।

"पता नहीं।"

"बहुत ठीक।"

"टब शाहब उसे यहीं बुलावो ण; जिशशे शब वाटें हो जायँ" नसरवानजी बोले।

"आपको क्या खबर मि० नसरवानजी! हमारी सुशीला स्त्रियोंको इस प्रकार पर-पुरुषोंके सामने आनेमें कितनी लज्जा मालूम होती है?" गम्भीरलालने कड़ाई से कहा।

गम्भीरलाल स्त्री को बाहर बुलानेके लिए पहले जैसे आतुर थे वैसे ही अब आतुरताहीन हो गये थे। सबको यह परिवर्तन कुछ विचित्र सा लगा पर तरफड़दासको छोड़कर इस ओर

किसीने विशेष ध्यान नहीं दिया। इस कथनसे केवल मारुतिको प्रसन्नता हुई।

"तब एक काम कीजिये" अहलकारोंने गम्भीरलालके अभिप्रायकी कल्पना कर कहा "आप, मि० मारुति और ये हेडमास्टर साहब भीतर जाकर उनका अभिप्राय पूछ आइये।"

"बहुत ठीक"; मगनलाल! तुम हेडमास्टर साहबके साथ भीतर चले जाओ और वह क्या चाहती है पूछ आओ। मधु!"

"जी हजूर!" नौकर दौड़कर ऊपर आया।

"मि० मगनलालको और मास्टर साहबको उस महिलाके पास ले जा।"

"जी हजूर!" कहकर चिक उठाकर मधु भीतर गया और उसके पीछे पीछे मगनलाल और मास्टर घुसे।

कुछ देर तक तो भीतर कुछ सुनाई नहीं दिया; फिर कुछ धीरे-धीरे होनेवाली कानाफूसीकी आहट सुनाई पड़ी; लोगोंका इधर से उधर और उधर से इधर जाना आना सुनाई दिया; कुछ विचित्र प्रकारसे लोग चल रहे हों ऐसा मालूम पड़ा। थोड़ी देरमें सब बाहर आये, उनके होश उड़े हुए थे। उनकी घबड़ाई हुई आँखें गम्भीरलालका मुख देख रही थीं।

"हजूर! भीतर तो कोई नहीं है।"

"ऐं! सब एक स्वर से बोल उठे। गम्भीरलाल ओंठ चबाकर कुछ स्वस्थ हुए, यह समाचार सुनकर उन्हें कुछ निश्चिन्तता हुई हो इस प्रकार उन्होंने गहरी सांस ली।

"हाँ! मधु कहता है कि वह स्वयं उस स्त्री को भीतर बैठा गया था पर भीतर क्या घर भरमें कोई नहीं है। वह रमणी भाग गई है" हेडमास्टरने बाहर निकलकर कहा।

गम्भीरलाल जैसे पहले थे वैसे ही स्वस्थ मालूम पड़ने लगे।

"क्या कहता है ? मधु ! चोर बोल वह किस रास्तेसे गई ?"

मधु काँपता हुआ आकर खड़ा रहा।

"नहीं सरकार,मैं नीचे था, कोई बाहर नहीं गया। पीछेकी खिड़कीसे कूदकर चली गई हो तो नहीं कह सकता।"

"अरे, भला इस प्रकार क्यों जायगी ?" मारुतिने कहा— उन्हें मणिके प्रति इतनी श्रद्धा थी कि वे इस बातको स्वीकार नहीं कर सकते थे।

"मि० मारुति ! कृपाकर मधुके साथ जाकर आप फिरसे सब घर एक बार और खोज डालें।"

"हाँ ! मैं भी आऊँ" कहकर तरफड़दास उठने लगे।

"जी नहीं, आप यहीं तशरीफ रखें" रावसाहबने हुक्माना ढंगसे कहा जिससे 'मार्तण्ड प्रकाश' के सम्पादक महोदय कुर्सी परसे आधा उठकर फिर बैठ गये।

मारुति मधुके साथ भीतर गये।

"सज्जनों ! आज अपनी यह विचित्र सभा समाप्त हुई, फिर मिलेंगे। जबतक यह स्त्री न मिले तब तक कोई निश्चय करना व्यर्थ है।"

"बहुत ठीक चलो टब मेहडबानों" कहकर नसरवानजी उठ खड़े हुए।

"मि० तरफड़दास ! आजके बैठकका कोई भी समाचार 'मार्तण्ड प्रकाश' में न निकले।"

"महाशय जरा—"

"जरा भी नहीं" गम्भीरलालने आज्ञा दी। आज्ञा लेकर सभी लोग एक एक कर चले गये। मारुति भी निष्फल परिश्रम कर वापस लौट आये।

"मुझे बड़ा आश्चर्य मालूम पड़ रहा है। यह स्त्री इस प्रकार भाग जानेवाली नहीं मालूम पड़ती थी।

"मि० मारुति! अभी आपने दुनियाँका पाखण्ड अच्छी तरह देखा नहीं है। इस संसारमें विचित्र विचित्र प्रकारके जीव देखनेमें आते हैं। अच्छी बात है पधारिये।"

"जी हाँ! किन्तु यदि आप थानेदार साहबसे कहकर इसकी खोज करावें तो अच्छा हो।"

"अच्छी बात है! आप जाते वक्त पासकी चौकीके जमादार को भेज दें, मैं उससे कहला दूँगा।"

"तब आज्ञा है न!"

मारुतिके जानेके बाद बहुत देर तक गम्भीरलाल जमीन पर आँखें गड़ाकर देखते रहे। उनका मन भूतकालमें भ्रमण करता हुआ मालूम पड़ा। उनका मुख निस्तेज था। उनकी आँखोंकी प्रभा पर बादल छाया हुआ था, वह विचार कर रहे थे, चिन्ता कर रहे थे या पश्चात्ताप? मधु आकर कुछ देर तक खड़ा रहा। अपने बलवान, स्वस्थ सेठको इस अवस्थामें देखकर उसे विस्मय हुआ, उनका ध्यान आकर्षित करनेके लिए वह खाँसा। गम्भीरलाल अपने विचारोंमें ही लीन रहे। इस प्रकार दस मिनट बीत गये। मधु ने जोरसे खिड़की बन्द की। रावसाहबका ध्यान भङ्ग हुआ, उन्होंने सिर उठाकर ऊपर देखा और पूछा—क्या है?

"सरकार! जमादार आये हैं।"

"कौन जमादार?"

"आपने बुलाया था। मारुति साहबने भेजा है।"

"हाँ भेज दे।"

जमादार ऊपर आया।

"रामसिंह, आज एक कोई भटकती हुई स्त्री यहाँ आई थी

और मेरे घरकी खिड़कीसे कूदकर भाग गई। जरा उसपर ध्यान रखना और यदि उचित समझना तो पकड़नेकी जरूरत भी नहीं है। ऐसा उपाय करना कि शहरसे बाहर अपने आप ही वह जल्दी निकल जाय, समझे ?"

"जी हाँ सरकार।"

"देखना ख्याल रखना !" कहकर गम्भीरलालने सिर हिलाया फिर एकाएक बनावटी हँसी हँसकर बोले—रामसिंह, तुम कितने के वर्गमें हो ?

"सरकार ! सत्तर रुपयेके। सरकार मेरे पाँच तो लड़के हैं। हजूर ! यदि सुपरिटेंडेण्ट साहबको दो अक्षर—

"अच्छा, अच्छा ! अपनी डायरीमें तुम्हारा नाम लिखे लेता हूँ" कहकर उसका नाम लिख लिया "जो बात मैंने कहा उसे अपने तईं रखना किसी दूसरे पर प्रकट न होने पावे।"

"इसमें भी कुछ कहनेकी जरूरत है सरकार" कहकर सलाम करके जमादार वहाँसे चला गया।

"सरकार ! महाराज कहते हैं कि समय हो गया है।" मधुने कहा।

"कह दे कि मुझे आज भूख नहीं है, वह खा ले। दरवाजा बन्द कर दे, मुझे नींद आ रही है, मधु चकित हुआ किन्तु खामोश चला गया। गम्भीरलाल पुनः ध्यान मग्न होकर बैठ गये।

———

१६

गम्भीरलालकी अचिन्त्य पीड़ा

गम्भीरलाल नीचा सिर किए हुए बैठे रहे। उनके मनमें कुछ अजीब प्रकारकी खिन्नता आ गई थी। उनके जीवनमें कोई भी ऐसा दूसरा प्रसंग नहीं आया था जब कि उन्हें इस प्रकारका धक्का लगा हो। आज अचानक उनका हृदय बैठा जारहा था। आज तक जिस मनुष्य ने कभी भी कुछ भी करके पीछे फिरकर नहीं देखा था, जो हमेशा रोबसे, गौरव पूर्वक दुनियाके सामने देखता था, वह इस समय अगम्य उदासीनतामें लीन था— अज्ञात भयसे काँप रहा था। किसका भय, किस बातका भय, यह उसकी समझमें नहीं आरहा था।

उसकी आँखके सामने एक बाला आकर खड़ी हो गई,— उसके कोमल अंगोंको मानों वह स्पर्श कर रहा है ऐसा लगा। आज तक कभी भी उसने अपने मनमें उसका विचार नहीं किया था इस समय वह भवानीकी प्रचण्ड मूर्त्तिके समान उसे मालूम पड़ रही थी। रावसाहब उसके स्मरण मात्रसे काँपने लगे, अपने हाथको इस प्रकार रगड़ने लगे मानों ठंढसे जकड़े जारहे हों और उसमें गरमी पैदा करना चाहते हों। धीरे धीरे उनका भय बढ़ा। कोई भूत आकर अभी उसे भक्षण कर जायगा या उसे मार डालेगा क्या—इस प्रकारका भय उन्हें सताने लगा। उनमें डरके कारण इतना सामर्थ्य भी नहीं रहा कि आँख उठाकर इधर उधर देख भी सकें। उनका सिर छातीपर ढुलक गया। आँख भी खोलनेमें वे असमर्थ थे।

उनके मस्तिष्कमें एक चित्र घूम रहा था, दुःख और अश्रुसे

पूर्ण आँखें उसे क्रोधसे देख रही थीं। गम्भीरलालके अभिमानी मनने इन विचारोंको दूर करनेका प्रयत्न किया। यह बात बुरी है, ऐसे विचार दूषित हैं, ऐसा सोचनेका उन्होंने प्रयत्न किया, पर यह प्रयत्न निष्फल गया। भय अधिकाधिक बढ़ता ही गया।

वह सो रहे हैं या जाग रहे हैं इसका भी उन्हें ज्ञान नहीं था। बड़ी कठिनतासे उठे पर उनके पैर काँपने लगे। आस पास चारो तरफ देखनेका प्रयत्न किया। उनकी दृष्टि भीतरके दरवाजे पर पड़ी—वहाँ कोई खड़ा हुआ दिखाई दिया—जैसे कोई स्त्री हो। स्वप्न अधिक स्पष्ट होरहा हो ऐसा लगा, स्त्रीका मुख स्पष्ट दिखाई दिया, ऐसा मालूम हुआ। घबड़ाया हुआ, गम्भीरलाल जिसका चेहरा भयसे पीला पड़ गया था पागल जैसा इधर उधर आँखें फाड़ फाड़कर देखने लगा और दृष्टिगत व्यक्तिसे अपनी रक्षा करनेके लिए हाथ उठाकर 'ओ-ओ-ओ' करके बैठ गया।

"इतना घबड़ा क्यों रहे हैं ?" किसीका जरा ठठोलीसे पूर्ण किन्तु दृढ़ स्वर सुनाई दिया। गम्भीरलालके हृदयमें ये शब्द गूँज उठे—उसने स्वर पहचाना। वह कुछ स्वस्थ हुआ—स्वप्न को दूर करनेके लिए आँखें खोलीं।

उसने पुनः दरवाजेकी तरफ देखा—सामने मणि खड़ी थी। गम्भीरलाल कुर्सी पर गिर पड़ा—"कौन मृदुला ?"

मणि हँसी, गम्भीरलालको पसीना छूटने लगा।

"मृदुला ! मृदुला !—तू—तू यहाँ कहाँ से ?"

"क्यों क्या तुम्हारा घर मेरा नहीं है ?" शन्तिपूर्वक मणिने उत्तर दिया, सचमुच जीवित मनुष्यको उपस्थित देखकर गम्भीर-लालकी जानमें जान आई। उसका साहस वापस आने लगा, वह

अपनी बिखरी हुई बुद्धिको एकत्र करनेका प्रयत्न करने लगे।

"तू यहाँ कहाँसे आ गई ? मैंने तो सुना था कि तूने आत्म-हत्या करली है।"

"आप तो सुनेंगे ही। किन्तु मेरे बगैर आपको लगता कैसा है ? मुझे क्या खबर कि आप विधवा-विवाहके अब पक्षपाती हो गये हैं।

"क्या ?"

"अरे अभी ही भूल गये ? अभी तो आप मेरा न्याय करने के लिए बैठे थे ?"

"तू ! हाँ मैं भूल गया। मृदुला ! तू कहाँ छिप गई थी ?"

"मुझे क्या खबर कि आपने ही यह विज्ञापन निकलवाया है" जरा परिहास सूचक स्वरमें मृदुला—मणिने कहा "मैं भला कब जानती थी कि मुझे आप ही के यहाँ आना पड़ेगा ? आई और आकर मैंने सब कुछ देखा जिससे सब विचारोंका त्यागकर आपके कमरेके दरवाजेके पीछे जा छिपी। आपकी सभाके सब सदस्योंके सामने मेरा उपस्थित होना क्या आपको अच्छा लगता ?"

गम्भीरलाल बिलकुल घबड़ाये हुए थे फिर भी किसी प्रकार बुद्धि ठिकाने करके, इस प्रसंगको किस प्रकार बदला जाय, इसका विचार करने लगे।

"जरा धीरे बोल ! पास ही मेरे सिपाही हैं वे सब सुन लेंगे।

"तो इसमें हर्ज ही क्या है ? कल सवेरे तो सबको मालूम हो ही जायगा।"

"कैसे ?"

"मैं अब यहीं रहूँगी।"

"नहीं, नहीं, यह कैसे हो सकता है ? लोग तो तुझे मृत समझते हैं।"

"लोग जो चाहें समझें, और प्रचार भी तो आप ही ने कराया था न ?"

"न, किसने कहा ?" यह बातचीत कोई सुन ले तो क्या कहेगा इसका विचार करते हुए गम्भीरलालने पूछा। इस स्त्रीको यहाँसे कैसे निकालूँ, इसीका उपाय वह सोच रहे थे।

"यह भला कहीं हो सकता है ? पर तू आई कैसे, यह तो बता ?"

"इसमें कौन सी अचरज की बात है ? मेरा अन्तिम तार व मेरा पत्र क्या नहीं मिला ?"

"न !"

मणिने तिरस्कार एवं क्रोधसे गम्भीरलालकी ओर देखा।

"झूठ मत बोलो ! दोनों पहुँचा होगा—नहीं तो जायगा कहाँ ? यह कहो कि तुम्हें मेरा मुँह देखना पसंद नहीं था। मुझे किसी प्रकार दूर करना चाहते थे। नदी कुआँमें गिरकर आत्म-घात करनेकी धमकी दी थी इससे तुम्हारे मनमें निश्चिन्तता आ गई। तुम तो यह सोच रहे थे कि चलो एक बलासे छुट्टी मिली, क्यों ?" मणिकी आँखोंसे चिनगारी निकल रही थी "मुझे क्या खबर कि रावसाहब गम्भीरलाल अब विधवा-विवाह के बड़े बाप बन बैठे हैं।"

"मृदुला ! तू इतना क्रोध क्यों कर रही है ? जिस समय तेरा तार मिला उस समय गाँवसे बाहर न जानेकी कड़ी आज्ञा मिली थी, और बादमें मेरी यहाँ बदली हो गई।"

"तो एक पत्र लिख दिया होता अथवा किसी आदमीको भेज दिया होता। तुम्हें यह तो मालूम था न कि तुम्हारी ही आशा

पर मैं जी रही थी। तुम्हें क्या खबर कि कितने कष्टसे, कितनी भिखमंगी करके, रुपया इकट्ठाकर मैंने तार भेजा था ?" मणिने कहा "तुम यहाँ एकान्तमें मौज कर रहे हो, मुझपर क्या क्या बीती इसका भी तुम्हें कुछ पता है ?"

"तुम जरा शांत हो। पीछे तुमने किया क्या ?"

"मैंने ? मैं जहन्नुममें गई। मैंने संसार छोड़ा, कभी मैंने बाहर कदम नहीं रखा था सो तुम्हारे पापसे दर दर मारी मारी फिरी !"

"तुम्हें बड़ा कष्ट हुआ होगा।" यथाशक्ति स्वरमें अनुकम्पा दर्शाते हुए गम्भीरलालने कहा।

"नहीं जी ! मेरे लिए तो ऐसे ही ऐसे सत्तर पलंग बिछे हुए थे। जाने दो, बीती हुई को छोड़ो। आखिर तुम मिल गये अब मैं निश्चिन्त हुई।" कहकर मणि कुर्सी पर बैठ गई। "गम्भीरलालको फिरसे कँप-कँपी आ गई। मणिने आँखोंमें से बहते हुए आँसूको पोंछा।

कुछ समय तक कोई नहीं बोला। गम्भीरलाल कोई रास्ता ढूँढ़ रहा था, वह बोला—"मृदुला, हाँ अब बीती बातको फिरसे उभाड़नेसे क्या लाभ ! 'बीती ताहि बिसारि दे, आगे की सुधि ले' बताओ अब तुम्हें क्या करना है ?" कृत्रिम नम्रतासे गम्भीरलाल ने पूछा।

"अब मुझे करना क्या है ?" मणिने एक तीक्ष्ण दृष्टि गम्भीरलाल पर फेंकते हुए कहा "तुम मिल गये मानो मुझे ईश्वर मिला। तुम जब पहले मिले थे उस समय क्या कह रहे थे ?"

"मैं क्या कह रहा था ?" मानों भूल गया हो इस प्रकार का स्वाँग रचते हुए गम्भीरलालने पूछा।

"वाह ! इतने में ही भूल गये ? तुम्हींने कहा था न कि सभी धर्मशास्त्र विधवाको विवाह करनेकी आज्ञा देते हैं। तुम कहते थे कि वर्तमान स्थिति बड़ी ही क्रूर, पर-पीड़क, अनीतिपूर्ण है, क्यों, सब भूल गये ? तुमने मेरी दृष्टिके सामने जो सुखमय जीवनका प्लाट रखा था, वह बिसर गया ?" मणि जरा तिरस्कार पूर्ण हँसी हँस कर बोली—गरीब बिचारी निराधार स्त्री को दिया हुआ वचन स्मरण रखनेकी भला कौन परवाह करता है ?

गम्भीरलाल चुप्पी साधकर बैठे रहे। जालमें फँसने पर मछलीके मनमें जैसे विचार उत्पन्न होते हैं वैसे ही उसके मनमें भी उत्पन्न होने लगे। उसने मणिकी ओर देखा। पहलेकी लज्जावती, दुःखी, शरीरके कष्टसे क्षीण मृदुलाके स्थान पर महायोगी महाराजकी कृपासे रूपवती, तेजस्वी और हृष्ट पुष्ट बनी हुई मणिको देखा।

"अब क्या सोच रहे हो ? वह वचन पालन करनेका समय आ गया है।"

"मृदुला ! तुम जरा मेरी बात सुनो। हमलोग लड़कपनमें न मालूम क्या क्या कहते हैं और भूल जाते हैं।"

"आठ मास पूर्व लड़कपन था ? किसका, तुम्हारा या मेरा ? देखो, हो गया सो हो गया। मेरे भी दुःखका अंत अब आ गया है। लोकलाजकी परवाह अब मुझे कुछ रही नहीं। जिसदिन तुम कहो मैं तुमसे विवाह करनेके लिए तैयार हूँ।"

गम्भीरलालने सिर हिलाया।

"नहीं मत करना ! तुम्हीं मेरे श्वास और प्राण हो। तुम्हारे ही वचन सुनकर मैं पागल हो गई थी; तुम्हीं पर रखी हुई श्रद्धा के भरोसे मैंने भवोभवकी आशा छोड़ी थी। अब क्या तुम

नकारोगे ?" मणिका स्वर सचमुच भावपूर्ण था अथवा परिहास पूर्ण यह कहना बड़ा कठिन है।

गम्भीरलाल और भी उलझनमें फँसे। मछलीका जाल और भी दृढ़ होने लगा। क्या करें ?

मणिको इन दो महीनोंमें बहुत कुछ शिक्षा मिली थी जिससे वह स्वस्थ थी उसके विचार स्वच्छ थे। अंतिम पासा फेंकते हुए उसने कहा—तुम्हें किस बातकी चिन्ता है ? तुम्हारे पास पैसा है, उच्च पदाधिकारी हो, स्त्री नहीं है, सुधरे हुए विचारकी जिस स्त्री ने तुम्हारे लिए अपना सर्वस्व दे दिया उसे यदि तुम नहीं अपनाओगे तो दूसरा कौन अपनावेगा ?"

बात फेरनेके लिए भगीरथ प्रयत्न करते हुए गम्भीरलालने कहा—तुम्हें दिन ·····

"हाँ ! अब तुम्हें याद आ रहा है ? वाह रे मेरा भाग्य ! मीठा कुआँमें मैं उसे छोड़ आई हूँ। कल सबेरे हम उसे बुलवा लेगें। बिलकुल वह तुम्हारी ही तरह है। बड़ी होने पर इन्द्रकी अप्सराको भी वह लज्जित करेगी।"

गम्भीरलाल ये शब्द सुनकर पुनः काँप उठे ! एक पल मात्र की अपनी मूर्खताका फल उन्हें बड़ा कड़ुवा लगा।

"क्या विचार कर रहे हो ? मुझ पर तनिक दया नहीं आती ? अपनी पुत्री पर जरा रहम नहीं आती ? नहीं, नहीं, तुम क्या इतने निर्दय कभी हो सकते हो ?" मणिने कहा। उसकी आँखोंमें से झर झर आँसू गिरने लगे और गंभीरलाल को तो उसकी तरफ मुँह उठाकर देखनेका साहस ही नहीं था।

"मृदुला ! मृदुला ! तुम्हारा हृदयतो बड़ा अगाध है इसलिए एक बात कहूँ-सुनोगी।"

"क्या ?"

"मुझसे विवाह नहीं हो सकता।"

"क्यों?" मृदुलाने हँसकर पूछा, यही उत्तर मिलेगा, यह वह पहले से ही जानती थी।

"देखो, मेरी इज्जत सब मिट्टीमें मिल जायगी, जो इस पद पर आसीन हूँ वह सब धूलमें मिल जायगा।"

"इज्जत मिट्टीमें कैसे मिल जायगी—क्या सरकार नौकरी छीन लेगी?"

"नहीं, किन्तु पुनर्विवाहसे मेरी प्रतिष्ठा नष्ट हो जायगी।"

"प्रतिष्ठा! जो प्रतिष्ठा एक निर्दोष उन्मादिनीको कुचलकर तुम्हारी भावनाओंको भ्रष्ट कर रही है वह प्रतिष्ठा है! यह तुम कह क्या रहे हो?"

"अपने स्वप्न और प्रत्यक्ष संसारमें बहुत भिन्नता है, मृदुला!"

"ऐसा?" गौरवसे माथा ऊँचा करते हुए मणिने कहा "तब जिस समय तुमने मुझे फँसाया था वह स्वप्नके लिए और जो छटपटाती हुई छोड़ रहे हो उस संसारके लिए प्रणाम? मणिका क्रोध जिसे वह दबाये हुए थी अब उभड़ने लगा।

"यह सब बोलना तूने सीखा कहाँ से?"

"तुम्हारे दिये हुए दुःखसे! मुझे तुमने दर दरकी भिखारिणी बनाया उससे! यदि मैं अपनी पुरानी रहन-सहनसे रहती, उपवास करती हुई, कष्ट सहन करती हुई जीवन व्यतीत करती होती तब यह सब नहीं सीख सकती थी। तुमने संसारका द्वार खोलकर सुनहली आशाका स्वप्न दिखाया। अब इस प्रकार दरवाजा बन्द करनेकी इच्छा करनेसे क्या काम चल सकता है?"

"देखो मृदुला! यह हम लोग व्यर्थ की मगजपच्ची कर रहे हैं। तू निराश्रय है, थोड़ा बहुत मेरा भी दोष होगा यह मैं

स्वीकार करता हूँ किन्तु युवावस्थाकी एक जरासी भूलके कारण वर्तमान संसार, मान-प्रतिष्ठाको छोड़कर अपनी बड़ी बड़ी आशाओंको तिलांजलि देना मेरे लिए असम्भव है।"

"तब क्या मेरी आशा को दी जा सकती है—मेरा जीवन नष्ट-भ्रष्ट किया जा सकता है ? मैं कलङ्कित होकर दुनियामें इधर उधर भटकती फिरूँ ?" मणिने पूछा।

"यह मैं कहाँ कह रहा हूँ ? मैं तुम्हें भटकने नहीं दूँगा। जहाँ तुम कहो तुम्हें अकेली सुखसे रखूँगा। यदि पसंद हो तो जैसा मारुति कह रहे थे, कहो तो किसी कन्या पाठशालामें नौकरी दिला दूँ। पर—"

"पर ?"

"पर यह भी अच्छा न होगा। यहाँ बहुत चर्चा हो चुकी है जिससे तुम्हारा यहाँ रहना मेरे लिए अच्छा न होगा।

"तब जहाँ तुम कहो वहाँ जाकर पड़ी रहूँ और जो कुछ तुम भेज दो उससे अपना निर्वाह करूँ !" धीमे स्वरमें मणिने कहा।

"तुम बड़ी होशियार हो, झट समझ जाती हो। तुम्हारी बुद्धि कैसी तीव्र है !"

"वाह री मेरी बुद्धि !" मसखरी से मणिने कहा "बात यह है जैसा तुम मेरी बुद्धिका परिमाण लगा रहे हो उससे वह कहीं अधिक पैनी है।"

"क्या ?" गम्भीरलालके मनमें फिर कँपकँपी उठी।

"कैसा क्या ? कहते हुए जीभ गलकर गिर नहीं गई ?" गरजकर मणि खड़ी हो गई। उसकी वह भयङ्कर मूर्त्ति देखकर गम्भीरलाल कुर्सी पर पीछे हट गये।

———

२०

मणिका निश्चय

जरा श्वास लेकर क्रोधपूर्ण स्वरमें मणिने पूछा—फुसलाकर भ्रष्ट करते हुए शरम नहीं आई ? विनती करते करते मैं थक गई किन्तु मुझे और अपनी पुत्रीको मरणासन्न अवस्थामें छोड़ देते हुए तुम्हें लज्जा नहीं आई ? और अब-अब मुझसे यह बात कहते हुए तुम्हारी जिह्वा ऐंठ नहीं गई ?

गम्भीरलाल घबड़ा उठे। मणिका स्वरूप और भी तेजस्वी दिखाई पड़ रहा था। पर सहसा कोई नया विचार आ जानेसे मणिने अपने क्रोधको शान्त करनेका प्रयत्न किया, कुर्सीपर बैठ-कर कपालपर चुहचुहाते हुए पसीनेको पोंछा और दाँत पीसकर वह बोल उठी—बोलो ! अब अधिक कुछ कहनेसे लाभ नहीं है। तुम्हारे जैसे नराधम तो इस संसारमें बहुत ही कम मिलेंगे किन्तु कुछ ऐसा बनाव बन गया है कि मेरा कलेजा वज्र जैसा कठोर बन गया है।

"किन्तु इससे अधिक मैं कर ही क्या सकता हूँ ?" गम्भीर-लालने पूछा।

"कर तो बहुत कुछ सकते हो, किन्तु करना चाहते नहीं।"

गम्भीरलालसे कुछ भी उत्तर देते न बन पड़ा।"

"प्रतिष्ठा, इज्जत, मान-मर्यादा इन सबकी रक्षा हो सके अथवा न हो सके, इसकी मुझे जरा भी चिन्ता नहीं है। मैं तो केवल इतना जानती हूँ कि तुम्हारे कियेका फल तुम्हें ही भोगना पड़ेगा।"

"अर्थात् ?"

"अर्थात् मुझसे तुम्हें विवाह करना पड़ेगा। यथाशक्ति सेवा करके तुम्हें सुखी बनानेकी मैं चेष्टा करूँगी साथ ही तुम्हारी मान-प्रतिष्ठा बढ़ानेका भी प्रयत्न करूँगी।"

"यह नहीं होगा" गम्भीरलालने कहा।

"दूसरा कुछ हो ही नहीं सकता। संसारका आनन्द लूटनेकी आशाएँ तुम्हींने मेरे सामने खड़ीकी थीं, अब इस भूतको शान्त भी तुम्हें ही करना पड़ेगा। इससे छुटकारा मिल नहीं सकता।"

"जो कुछ मैं कह चुका उससे अधिक मैं कुछ नहीं कर सकता और न कोई दूसरा रास्ता ही है।" गम्भीरलालने कहा।

"तब इसका परिणाम बुरा होगा।"

"क्या बुरा होगा? गम्भीरलालने पूछा।

मणि शान्त स्वरमें बातें करने लगी जिससे गम्भीरलाल भी जरा धीमे स्वरमें बोले।

"एक बार नहीं कहो तब तुम्हें बताऊँ।"

"मुझे धमकी देती है?"

"हाँ!"

"तू समझती है कि मैं डर जाऊँगा?"

"डर क्या जाओगे? डरते हो और डरोगे। अब मैं पहलेकी मृदुला नहीं हूँ।"

"यह बात है? कैसे इतना परिवर्तन हो गया?"

"मैंने दुनिया देखा, तुम्हारे जैसे कलमुँहे नराधम अनेक पुरुष और महात्माओंको देखा और उनके हाथसे निकल भागी और—"

"और?"

"तुम प्रतिष्ठा और मानमर्यादाके गुलाम हो, मुझे किसीकी

भी परवाह नहीं है। मैं स्वतन्त्र हूँ तुम बन्धनमें हो जिससे तुम्हारी अपेक्षा मैं अधिक सबल हूँ।"

"हूँहूँ" गम्भीरलाल हँसे "स्त्रीकी बुद्धि—"

"बहुत ठीक, हँस लो। पहले मैं तुम्हें ईश्वर समझती थी वे दिन चले गये। बुद्धिमें कौन बढ़ चढ़कर है यह समय आने पर देख लेना।"

"देखो, मृदुला! जहाँ कहींसे भी यह वाचालता तू सीख आई हो, यह तुझे शोभा नहीं देता।"

"अब कहाँसे शोभा देगा?" मणिने हँसकर जवाब दिया।

"मुझे यह सब सुननेकी फुरसत नहीं है। जो कुछ मैंने कहा है वह करनेके लिए तैयार हूँ, और कुछ नहीं कर सकता।"

"तब भाड़में जाय तुम्हारा पैसा। मेरे बाजूमें कमाकर खानेकी शक्ति है।"

"क्या तुझे खबर है? दुनियामें पैसा कमाना सरल नहीं"

"तुम्हें भले ही न हो, मुझे है।"

"क्या करके?"

"तुममेंसे प्रत्येक व्यक्ति मुझे अपने खेलवाड़की, मन बहलाव की वस्तु बनानेके लिए क्रीत करना चाहता है ऐसा बननेकी अपेक्षा दुनियाको वशमें करना मेरे बायें हाथका खेल है।"

"क्या तू इतनी अधम हो जायगी?" यह सुनकर गम्भीरलाल ओंठ काटने लगे।

"अभी भी समय है कि अच्छी तरह विचार कर लो, मुझे खिझाओ मत नहीं तो तुम्हारी मान-प्रतिष्ठा सब धूलमें मिल जायगी।"

"इसका जरा भी डर नहीं है! मृदुला, मेरा कहना मान जा, व्यर्थ कष्ट उठायेगी, दर दर मारी फिरेगी।"

"तो इसकी मुझे भी फिक्र नहीं है।"

"बहुत ठीक, तब इस समय तू कहाँ जायगी ?"

"घबड़ाओ नहीं, मैं यहाँ तुम्हारी दुर्गति नहीं करूँगी। अभी दुर्गत करनेसे क्या हाथ लगेगा ?"

"तब कब करोगी" जरा तिरस्कारसे हँसते हुए गम्भीरलाल ने कहा।

"जब मेरा समय आयेगा तब, यदि जीवित रही तो देखना"

"जीवित रहेगी तब !—"

"इसकी चिन्ता मत करो ! मेरे भाग्यमें बहुत दिन तक जीना लिखा है।"

"बहुत अच्छा, तू किस रास्तेसे जायगी ? नीचे तो मेरे सिपाही सोये हुए हैं।"

"अच्छा ! मैं तो भूल ही गई थी। मामलतदार साहब पुनः भड़क उठे" कहकर मणि खिलखिलाकर हँस पड़ी।

"अब क्या होगा ?"

"अब क्या होगा ?" दोहराते हुए मृदुलाने कहा। वह फिर हँस पड़ी, किन्तु तुरत ही गम्भीर होकर बोली—घबड़ाओ नहीं, पीछेकी खिड़की तो है न ? वहाँ तो केवल रामसिंह खड़ा होगा?"

"यह भी तुमने सुन लिया है ?"

"करूँ क्या ? पास ही कोठरीमें जो थी। कोई बात नहीं। आजसे हम और तुम द्वंद्वयुद्धमें लड़ेंगे, देखें कौन विजयी होता है। दुनियामें न्याय तो रह नहीं गया है। इससे मालूम होता है तुम्हारी ही जीत होगी। पर मैं भी तुम्हारे समान व्यभिचारियों और दुष्टोंको दिखा दूँगी कि एक निर्दोष, निरपराध बालिकाको फँसाकर उसका जीवन भ्रष्ट करनेका फल क्या होता है ?" कहकर मणि भीतरकी ओर चली। गम्भीरलाल भी उसके साथ गये

"मैं फिर किवाड़ के पीछे नहीं छिप जाऊँगी, घबड़ाओ नहीं, अब तुम्हारा घर मेरे लिए नरक के समान है" कहकर गौरव के साथ सिर ऊंचा करके वह भीतर गई और खिड़की से झाँककर नीचे देखा। खिड़की बहुत नीची थी जिससे कूदने में चोट लगने की कोई आशंका नहीं थी।

एक बार आदर-प्रदत्त सुकोमल स्त्री को इस प्रकार संसार-सागर में मज्जन करते हुए देखकर गम्भीरलाल के हृदय में कुछ दया का सञ्चार हुआ, उसने कहा—मृदुला ! इस समय तू कहाँ जायगी ?

"संसार विशाल है। तुम्हें कुछ अधिक चिन्ता उत्पन्न हो गई क्या ?"

"अकेले रहने का प्रबन्ध किए देता हूँ तब क्यों व्यर्थ कष्ट उठाती हो ?"

"रहूँगी तो तुम्हारी पत्नी होकर नहीं तो—"

"नहीं तो ?"

"नहीं तो तुम्हारा दर्प चूर्ण करने के लिए अविरल चण्डिका बनकर।" गम्भीरलाल काँप उठे, उसके शब्दों में जादू भरा हुआ था अथवा वह भविष्यवाणी की झङ्कार थी। दूसरे ही क्षण मणि कूद पड़ी। गम्भीरलाल ने उसे उठकर धीरे-धीरे पीछे घूम कर देखे बिना चले जाते हुए देखा।

गम्भीरलाल बहुत देर तक खिड़की पर खड़े रहे। उनके मन में पुरानी स्मृति जाग्रत हो रही थी, पश्चात्ताप के अंकुर फूट रहे थे या भय का संचार हो रहा था कुछ कहा नहीं जा सकता। मणि से विचार हटकर लड़की पर गया। मीठा कुआँ में किसके पास होगी ? वह कैसी होगी ? इतने में दूर थाने से बारह का घंटा सुनाई दिया।

"चलो बला टली !" कहकर खिड़की बन्द करके भीतर आकर वह सोने की तैयारी करने लगे।"

फिर पश्चात्ताप होने लगा। यदि किसी प्रकार मृदुला को बुलाकर एकान्त में रखा जाय तो कैसा ? संसार में प्रतिष्ठा का बन्धन यदि न होता तो कैसा अच्छा था।

इसके पश्चात् उनके विवाहके लिए जो पैगाम आरहे थे उनका ख्याल आया। अपनी जातिकी लड़कियाँ सुन्दर नहीं थीं जिससे परजातकी किसी धनवानकी लड़की पसन्द करनेका इरादा हो रहा था। अपने समाजके बेढंगेपन पर भी वे मनन करने लगे। जब तक लोग स्वयं अपने को सुधारनेका प्रयत्न नहीं करेंगे तबतक कोई सुधार होना असम्भव है यह निश्चय करके राव-साहब ने अपनी आँखें मींच लीं।

२१

निश्चयका परिणाम

पृथ्वी पर पैर पड़ते ही मणि उठकर द्रुतवेगसे चलने लगी। उसके सिर पर भूत सवार था जिससे वह कब तक चलती रही और कहाँ जारही थी इसका उसे पता नहीं था। उसे संसार से विरक्ति हो गई थी, संसारसे किस प्रकार बदला लिया जा सकता है, किस प्रकार प्राणियोंको रुलाया जासकता है इसका उपाय वह सोच रही थी।

समय पर उसका भूत उतरा और उसकी चाल भी धीमी हुई। वह कहाँ है भौचक्का होकर इधर उधर देखने लगी। आगे से किसी गायिकाका गानेका मीठा स्वर सुनाई दिया; वह एक चबूतरे पर बैठ गई।

पीछेसे कोई उसके सामने आकर खड़ा हो गया। आगन्तुक ने पूछा—तू कौन है ?

"क्यों ? तेरा क्या जाता है ?" गर्वसे मणिने पूछा। पूछने वाले पर उसकी दृष्टि गई। यह रामसिंह कांस्टेबुल था जो अपना कर्त्तव्य पालन कर रहा था।

"मेरा ? चल, भागजा यहाँसे नहीं तो अभी जेलमें ठूँस दूँगा।"

"रामसिंह !" पुलिसका जमादार चौंका "अपने रावसाहब की आज्ञाका पालन कर रहे हो क्या ?"

"कौन रावसाहब और कैसी आज्ञा ?" जरा कड़े स्वरसे रामसिंहने अपना रोब गाँठनेका प्रयत्न करते हुए कहा।

"व्यर्थ क्यों बात उड़ाते हो ? यदि तेरेमें ताकत हो तो पकड़ कर ले चल। फिर तेरी नौकरीका क्या होता है यह जाकर गम्भीरलालसे पूछ आना" मणिने शान्तिपूर्वक कहा।

रामसिंह तो ये बातें सुनकर हक्का बक्का होगया। उसने अनेक अपराधियोंको देखा था किन्तु यह तो कुछ भिन्न ही प्रकारकी दिखाई दे रही थी।

"मुझे शहरके बाहर निकाल देनेकी तुम्हें आज्ञा मिली है या नहीं ?" मणिने हँसते हुए पूछा—"तू अपने रास्ते चला जा, मैं तो यह शहर छोड़कर जानेवाली ही हूँ, किन्तु यदि तू मेरे पीछे लगा तो मैं यहीं रहूंगी पीछे मुझे पकड़कर देखना अपनी और अपने रावसाहबकी दुर्दशा।"

रामसिंह स्तम्भित हो गया और तुरत मणिको वहीं छोड़कर चलता बना।

लग्नका समय था जिससे पास ही के एक धनी साहूकारके यहाँ विवाहोपलक्षमें वेश्या बुलाई गई थी, उसकी मीठी तान

शान्त रात्रिके वातावरणमें दूर दूर तक फैल रही थी। जिससे मणिके तप्त हृदयको कुछ शान्ति मिली; शान्ति आने पर भविष्य के कार्य-क्रमका विचार हुआ। सबेरेसे वह भूखी थी, इसका भान हुआ। उसका शरीर बलवान था जिससे पेटकी पुकार क्रमशः बढ़ने लगी। इस समय कहाँ जाकर भोजन करे? दूकानें सभी बन्द हो चुकी थीं। पासमें गिनागिनाया केवल तीन चार आना पैसा था। मणिकर्णिकाका दिया हुआ हार था किन्तु उसका भी इस समय उपयोग करना सम्भव नहीं था।

मारुतिके यहाँ जानेकी इच्छा हुई, पर इसे उसने दबाया। इस समय जानेसे उसकी पत्नी क्रुद्ध होगी, सबेरे ज्ञात होजाने पर कि रात वह मारुतिके यहाँ रही, गम्भीरलाल उसपर बिगड़ेगा। ऐसी आपत्ति में उस बिचारे को क्यों फसाऊँ? अतः इस विचार को तो उसने छोड़ दिया। साथ ही अभिमान भी आया। मारुति बिना पूछे नहीं रहेगा कि वह कहाँ भाग गई थी इसका उत्तर वह क्या देगी?

पेटकी पुकार पुनः अधिक जोरसे सुनाई पड़ने लगी। थोड़ी दूर पर अभी ज्योनार समाप्त हुई थी, दो घण्टेमें पाँचसौ आदमियों ने यहाँ अभी भोजन किया था किन्तु वहाँ पर उसे आधा पेट भी भोजन मिलना असम्भव था। इतनेमें महफिलमेंसे उठ कर दो एक आदमी आ रहे थे उनकी बातचीत उसे सुनाई पड़ी। किसीका ध्यान अपनी ओर न आकृष्ट हो जाय इस भयसे वह दीवालमें सटकर खड़ी हो गई।

"सेठजी तो बड़ी अच्छी गानेवाली लाये हैं।" एकने कहा "कैसा इसका कण्ठ है मानो कोयल कुहक रही है, एक बार और सुननेका मौका मिले तो कैसा अच्छा हो।"

"नहीं जी, यह तो इसी समय जाने वाली है।"

"कहाँ, बड़ोदाकी है?"

"नहीं बम्बई की।"

इस बातचीतसे मणिके मनमें कुछ विचार उत्पन्न हुए। इस स्त्रीका इतना मूल्य—और उसे भोजनका भी टोटा! केवल रूप और स्वरके कारण लोग उस पर मरते हैं। मेरे पास रूप है, स्वर है, गुण है फिर भी मेरा कुछ भी मूल्य नहीं है। मेरे रूप और स्वर का भी मूल्य यदि आँका जाय तो कितना होगा?

लोगोंके चले आने पर वह उठी। पेटमें भूख तो बड़ी लगी हुई थी किन्तु करे क्या? अनजानमें उसके पैर उस ओर चले जहाँ अभी अभी ज्योनार समाप्त हुई थी। थोड़ी दूर पर एक मकानके दरवाजे पर भिखारियोंको भोजन दिया जा रहा था। किसी खास विचार बिना वह उस ओर बढ़ी। वह क्या कर रही है, इसका ज्ञान उसे नहीं था। जाकर वह सबके पीछे खड़ी हो गई और जो टुकड़े भिखारियोंको दिये जा रहे थे उन्हें एकटक देखने लगी।

क्षुधा ने उसे पागल बना दिया था। कोई एक टुकड़ा उसकी ओर फेंक दे तब? विचार आते ही हृदयमें वज्राघात सा लगा सब रोंगटे खड़े हो गये। ब्राह्मण-कन्याकी इतनी अधमता! इतनेमें भिक्षा देनेवाले उसके पास आ पहुँचे। वह स्तब्धसी खड़ी रही। दाताओंने उसे सम्बोधन करके कहा—भिखारिण! ले भिक्षा! ले, ले! तू ही केवल बाकी रह गई है।"

सिर पर किसीने चाबुक मारा हो इस प्रकार तिलमिलाकर उसने सिर उठाकर ऊपर देखा। आसपास अन्धेरेमें भिखारियों को जिधर तिधर बैठकर खाते हुए देखा। उसकी यह दशा! उसकी भूख मर गई। वह बड़बड़ाई—'भूखसे अधमरा होने पर

भी मृगपति कभी तृण नहीं खाता' उसने दाँत पीसकर साहससे कहा और पलट कर भाग खड़ी हुई।

दाताओंको अचम्भा हुआ, उन्होंने जोरसे कहा—वाहरे तेरा घमण्ड!

मणि इतनी तेज भागी कि उसकी साँस फूलने लगी—न दौड़ सकने पर वह खड़ी हो गई। उसकी भूख अब जाती रही, चिन्ता भी शान्त हो गई, मात्र अपनी अधमता पर क्षोभ होरहा था। उसका अभिमान, उसकी स्वमान प्राप्त करनेकी अभिलाषा, उसकी कुलीनता सभी नष्ट होने जारही थी। उसी समय वह रुकी। उसमें तेज आने लगा जिसने उसे शक्ति दी। गत तीन चार दिनों की अनुभव परम्पराने उसके चित्तको अस्थिर कर दिया था। इस समय हठात् नीचे गिरनेसे वह बच गई। उसे इसका अभिमान भी हुआ।

उसके पास जो पैसा था उससे मीठा कुआँ जाकर पुत्रीको एक बार देख आनेकी इच्छा हुई। जोरा भगतको मणिकर्णिका का हार देकर उनसे कुछ रुपया लेनेका भी विचार आया; जिससे आगे के कार्य में सहूलियत होगी। कुटुंब-वत्सल बनने की इच्छा नष्ट हो गई, विवाह कर संसारका सुख लेनेकी तीव्र कामना भी जाती रही। पुरुष मात्रसे उसे घृणा हो गई।

वह स्टेशनकी ओर चली। स्टेशनके रास्तेमें थोड़ा भाग उजाड़खंड पड़ता था। संसारसे विरक्त मणिको इसकी जरा भी चिंता न हुई; वह बेधड़क चली जारही थी। पथिक भी चुड़ैल समझकर उसके पास जानेका साहस नहीं करते थे। स्टेशन पर पहुँच कर उसने दो पैसे की लाई ली और स्टेशनसे हटकर थोड़ी दूर पड़े हुए एक पत्थर पर बैठकर वह उसे खाने लगी।

थोड़ी लाई पेटमें जाने पर मनकी शान्ति हुई। वह दुःख

भूलनेसी लगी। सबेरे ही वह अपनी सुरेखासे मिल सकेगी, यह ख्याल आते ही उसका हृदय भर आया। नन्हींसी सुरेखाका रमणीय सुन्दर मुखड़ा उसकी आँखोंके सामने नाचने लगा, उसके स्तन कड़े हो गये। अपनी पुत्रीके लिए जीवन रखनेका उसने निश्चय किया। मन जरा शान्त होने पर सुने हुए संगीतका आलाप याद आया; वह उन शब्दोंको स्मरण करने लगी।

'गगरी मोरी भरन नहीं देत'—पदके याद आ जाने पर आलापका अनुकरण करने लगी।

मणिको पूर्णरूपसे अपने स्वरका ज्ञान नहीं था। मात्र सुने हुए स्वरका अनुकरण कर गलेसे राग निकालनेका धीरे धीरे वह प्रयत्न कर रही थी।

उस महाजनके यहाँ रात्रिमें दो बजे मजलिस समाप्त हुई। रामजनीने मुजरा किया और प्रातःकालके पहले ही भैरवी सुनाया। बहुत अधिक रुपया देने पर वह वहाँ आई थी, साथही शर्त यह थी कि सबेरे की गाड़ीसे बम्बई चली जाने देना होगा। विवश होकर साहूकार तथा उसके मित्रोंको उसकी बात माननी पड़ी। मजलिस समाप्त हो गई।

तबलचीने तबला बाँधा और सारंगी वालोंने सारंगी; रामजनी उनके साथ किरायेकी गाड़ीमें बैठकर चली। उसके साथी रात अधिक हो जानेके कारण झोंका खाने लगे। वेश्या अच्छा गानेवाली थी। पर आज एक राग अलापते समय दूसरी रागका मिश्रण उससे हो गया था। यद्यपि इसे कोई ताड़ नहीं सका था तो भी यह भूल कैसे हो गई इसीका विचार करती हुई वह राग मनही मन दोहरा रही थी। राग गुनगुनाते गुनगुनाते इस समय भी वह भूल पकड़ाई नहीं पड़ी। मजलिसमें उससे भूल हो गई थी यह तो निश्चय था। वह इस स्वर में—ग अ-ग अ-

गगरी ई ई–अँह, गग अ री, भूल क्या थी ? क्यों नहीं पकड़ाती ?—ग ग री ई मो ओ—

मानो उसीके प्रश्नका उत्तर हो वह अपना ही आलाप सुन रही हो, उसीके कंठ किन्तु उससे भी मीठा और रसपूर्ण स्वर, मानो सचमुच किसी मदमाती गोपीका करुणाजनक स्नेह भरी फरियाद हो, इस प्रकार रास्तेमें सुनाई दिया—'गगरी मोरी भरन नहीं देत।'

गणिका यह आलाप सुनकर चौंक उठी। वह स्वर उसे किसी प्रेतके मुँहसे निकला हुआ सा ज्ञात हुआ। गाड़ीमेंसे सिर बाहर निकालकर देखा और वह एक अकेली स्त्री को वहाँ बैठी हुई देखकर जोरसे चिल्लाकर कहा—ओ गाड़ीवाले! गाड़ी रोको। हुसेन! तबलचीको संबोधन करके उसने कहा—"उठकर देख तो! वह कौन बैठी है ?"

गाड़ीवालेने आगे बढ़कर गाड़ी रोका। मणिने अपनी धुन में इधर कुछ ध्यान ही नहीं दिया।

"तुम्हारा उसमें क्या जाता है ?" तबलची ने कहा।

"तुमसे मतलब ? चलो, मेरे साथ आओ।" यह कहकर गणिका गाड़ीसे उतर पड़ी और मणि के पास जाकर उसने पूछा—तू कौन है ? इस समय—यहाँ ?"

मणि चौंकी, उसने पीछे घूमकर देखा और नर्तकी की वेश-भूषा देखकर सब कुछ समझ गई। सामने मणिका रूप देखकर वह स्त्री दंग रह गई और मनमें अपना अभिप्राय सिद्ध करनेका घात सोचने लगी।

"मैं चाहे कोई होऊँ, तुम्हें क्या ?"

"तू कोई दुःखी, अकेली स्त्री मालूम पड़ती है।"

"कैसे जाना ?"

"नहीं तो ऐसी सुन्दर स्त्री को ऐसे स्थान में और कौन कठोर हृदय पुरुष रहने देगा ?"

"इसमें तुम्हारा जाता क्या है ?"

"मेरा ? तुम्हारा कंठ बड़ा मधुर है ?"

मणि बिना समझे बूझे उसके मुँहकी ओर देखने लगी। दुनियाँका खेल देख देखकर चतुर बनी हुई वेश्या अपना दाँव साधने लगी।

"अपने इस कंठको क्यों व्यर्थ नष्ट होने देती है ?"

"व्यर्थ ?" मणिने पूछा।

"हाँ, इससे तो धन मिलेगा और अकेली इस प्रकार बैठकर लाई खानेके बदले तुम अच्छा खा पीकर चैनकी बंशी बजाने लगोगी।"

मणिकी आँखोंमें से आग बरसने लगी—उसे मैंने तुम्हें सौंपा, जाओ तुम अपने रास्ते। किन्तु रामजनी इस प्रकार सहजमें छोड़नेवाली नहीं थी। वह स्वयं वयोवृद्ध हो चुकी थी, उसकी रागमें कठोरता आ चली थी और जिससे कोई सुन्दर, सुकंठवाली और आकर्षक स्त्री की उसे अत्यन्त आवश्यकता थी। उसे ऐसा लगा मानों ईश्वरने मणिको उसके लिए ही भेज दिया।

"ईश्वरने यदि तुझे यह राग दिया है तो तुझे उसका उपयोग करना चाहिये; विशेष कुछ नहीं, मैं तुझे गाना सिखा दूँगी; जब तेरी इच्छा हो गाना। भोजन व वस्त्रके अतिरिक्त महीनेमें पन्द्रह रुपया हाथ खर्चके लिए भी दूँगी। अगर चाहो तो मेरे साथ चल। बम्बईके लिए गाड़ी एक घण्टामें छूटेगी।

महीनेमें पन्द्रह रुपया खर्चके लिए और भोजन मुफ्त। मणिको ऐसा प्रतीत हुआ मानो उसके हाथ सोनेकी खान लग गई किन्तु गणिका के साथ! कैसी अधमता! और अपना

सुरेखासे मिलनेका क्या होगा? उसने अपने कलेजेको कड़ा करके इस लाभदायक प्रस्तावको अस्वीकार करते हुए सिर हिलाकर कहा—नहीं, जो कुछ हूँ वही ठीक है।

"देखो, ऐसा अवसर फिर हाथ नहीं आनेका—समझो!"

"भले ही न आये!"

"जैसी तुम्हारी इच्छा! अभी भी विचार करले, गाड़ी आनेमें अभी एक घण्टेकी देर है। इसके पहले अगर तुम्हारी इच्छा हो तो मुझसे स्टेशन पर आकर कहना और यदि इसके बाद कभी निश्चय हो तो बम्बईमें काँदावाड़ीमें लाल मोहनके मकानमें आना, मेरा नाम तुंगभद्रा है।"

मणि उसकी ओर पीठ घुमाकर बैठ गई। नायिका निराश होकर लौट पड़ी और बड़बड़ाती हुई अपनी गाड़ीमें जाकर बैठ गई। मणि भी लोगोंको स्टेशनकी ओर जाते हुए देखकर उठी। अपनी पुत्री को देखनेकी लालसा इतनी उत्कट हो गई थी कि कल क्या होगा इसकी जरा भी परवाह उसे इस समय नहीं थी। वह स्टेशन पर पहुँच कर टिकट लेने के लिए टिकट-घर की ओर बढ़ी। टिकट लेनेके लिए वह हाथ बढ़ाने जा ही रही थी कि एक पुरुषने आगे आकर खिड़कीमें जिस स्टेशनका टिकट वह लेना चाहती थी उसी स्टेशन का टिकट माँगा। मणिने चौंककर उसे देखा। दोनोंकी आँखें चार हुईं।

"कौन मणि?"

"कौन मोघाराम?"

"इस समय कहाँ जा रही हो" मोघारामने पूछा। मणि लजा गई, दूसरे ही क्षण साहस कर उसने अपना सिर ऊँचा किया। अब लज्जा क्या? संसारसे उसे अब क्या सरोकार था?

"मैं तुम्हारे महात्माके यहाँसे कभी चली आई।"

"ऐसा ! जा कहाँ रही हो ?"

"जहाँ आप जा रहे हैं ।"

"बहुत ठीक, मैं टिकट लेता हूँ । मीठा कुआँ चलोगी न ?"

जी हाँ, जोराभगतके यहाँ जाऊँगी ।"

मणिके लिए भी टिकट लेकर मोघाराम उसे दूर ले गया ।

"तुम्हें खबर है ? जोरा भगत तो अब नहीं रहे !"

"ऐं ! कब ?"

"आज पन्द्रह बीस दिन हुए होंगे ।"

"तब मेरी सुरेखाका क्या होगा ? गंगा बहू तो उसे योंही सता सताकर मार डालेगी ।"

"घबड़ाओ नहीं । उसका पति बुद्धिमान है । किन्तु तुम क्यों इस प्रकार मारी मारी फिर रही हो ?"

"पुत्री को देखनेके लिए मीठा कुआँ जा रही हूँ" जरा नैराश्यपूर्ण स्वरमें मणिने कहा । जोराभगत को वह पिता तुल्य मानती थी; उनकी मृत्युका समाचार सुनकर मीठा कुआँ जानेकी उसकी इच्छा आधी रह गई थी ।"

"वे सब तो अंबाजीका दर्शन करने चले गये हैं ?"

"मेरी सुरेखाको भी लेकर ?"

"हाँ और नहीं तो क्या ।"

मणिका मन टूट गया—सब उमंग जाता रहा । उसकी आँखें डबडबा आईं । उसने अनजानमें अपना सिर पीट लिया ।

"मेरा भाग्य फूटा है ।"

"क्यों ? तुम घबड़ाती क्यों हो ? मैं अपने साथ तुम्हें लिवा ले चलूँगा । महाराजके यहाँ से तुम क्यों चली आई ?"

"महाराज ! आपका महाराज हरामखोर है, लम्पट है । आपके सुधारक लुच्चे हैं । मोघा भाई ! मुझे तो अब मरना

बाकी रह गया है। ऊपर आकाश और नीचे पृथ्वी है। मैं कहाँ जाऊँ ?" कहकर मणि रोने लगी। मोघारामका भी हृदय उसकी यह दशा देखकर भर आया।

"घबड़ाओ मत ! रोओ नहीं ! तुम मेरे घर चलो।"

"नहीं, नहीं, आप दुःखी होंगे।"

"नहीं होऊँगा।"

"नहीं, मैं बम्बई जाऊँगी। मेरे एक मुलाकाती है।"

"किन्तु इस समय तो साथ चलो।"

"नहीं, आज ही इसी गाड़ीसे जाऊँगी।" कहकर मणि लौटी और ओंठ पर ओंठ दबाकर तुंगभद्राकी ओर चली।

मोघाराम खामोश उसकी ओर देखता हुआ खड़ा रहा।

"तुंगभद्रा !" मणिने कहा। तुंगभद्राने सिर उठाकर देखा।

"क्या ? कौन ? ओहो ! तू कहाँ से ?"

"हाँ, मैं हूँ, क्यों बम्बई ले चलना है ?"

"क्यों नहीं, अगर तुम चलो।"

"किन्तु एक शर्त है !"

"क्या ?"

"न तो मैं कहीं गाने जाऊँगी और न किसी पुरुषको अपने पास आने दूँगी ?"

"स्वीकार, और कुछ ?"

"और कुछ नहीं। यदि यह स्वीकार हो तो बम्बईका टिकट कटाओ।"

"हुसेन ! जा बम्बईका एक टिकट तो ले आ।"

हुसेन टिकट ले आया। मणि पुनः मोघारामके पास गई।

"मोघाराम भाई ! अब शायद अधिक भेंट नहीं होगी, मेरी सुरेखाका ख्याल रखना। भगवान अच्छा दिन दिखायेगा तो

ले जाऊँगी, नहीं तो जैसी उसकी इच्छा !" अवरुद्ध कंठसे मणि ने कहा। मोघारामकी आँखोंमें आँसू आ गये।

थोड़ी देरमें रेलगाड़ी आ गई और मणि तुंगभद्राके साथ बम्बई चली।

२२

गम्भीरलालका वात्सल्य प्रेम

रावसाहब दूसरे दिन उठे किन्तु आज उन्हें चैन नहीं थी। मणि क्या करेगी, क्या न करेगी, इसका उन्हें बड़ा डर बना हुआ था जिससे उठते ही पहले उन्होंने रामसिंहको बुलाया। रामसिंहने उन्हें विश्वास दिला दिया कि जो स्त्री खिड़कीमेंसे कूदकर भागी थी उसे शहरसे बाहर निकाल दिया गया है। इस विश्वास दिलानेके बदलेमें रावसाहबने रामसिंहका वेतन बढ़वाने का वचन दिया। रामसिंहके जाते ही अपने नौकर मधुको मीठाकुआँके तलाटी मोघारामको बुला लानेके लिए भेजा किन्तु वह अपने घर गया हुआ था जिससे नौकर वापस चला आया।

"मधु ! तीसरे पहरकी गाड़ीसे उसके घर जा। वहाँसे मीठाकुआँ दो चार कोस होगा। वहाँ मोघाराम यदि मिल जाय तो कहना कि तुरत रावसाहब तुम्हें बुला रहे हैं।"

"सरकार !"

"अच्छा, नीचे कोई दूसरा जमादार भी है ?"

"जी हाँ पांडे हैं।"

"उससे कहो कि मारुतिके पास जाकर पूछ आये कि उस स्त्रीका कुछ पता लगा या नहीं ?"

"बहुत अच्छा सरकार !" कहकर मधु चला गया।

"चलो, इस ओरसे तो निश्चिन्त हुआ। अब इस लड़कीका प्रबन्ध करना रह गया" गम्भीरलाल बड़बड़ाये। उसके पश्चात टेबुल पर रखा हुआ समाचार पत्र उठाकर पढ़ने लगे। सन्ध्या समय मोघाराम आये।

"मोघाराम! एक बहुत ही गुप्त बातका पता लगाना है।"

"कौनसी बात हजूर?"

"एक स्त्री—अपराधिनीका पता लगाना है। यह काम तुम्हारे सिवा किसी दूसरेको नहीं सौंपा जा सकता। पता लगा है कि अभी वह मीठा कुआँमें आई थी, तुम्हें कुछ खबर है?"

मोघाराम सोचमें पड़ गया। क्या मणि अपराधिनो है? या रावसाहब किसी गूढ़ मतलबसे यह बात जानना चाहते हैं? गत रात्रिमें दोनोंको स्टेशन पर एक साथ देखकर किसीने चुगली तो नहीं खाई है?

"नहीं हजूर! मुझे तो कुछ खबर नहीं है।"

"मुझे पता लगा है कि वह वहाँ अपनी एक पुत्री भी छोड़ गई है!" गम्भीरलालने कहा।

"एं!" बिलकुल अनभिज्ञ बनकर मोघारामने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा। रावसाहबके प्रश्न करनेके ढंगसे वह ताड़ गया कि अवश्य इसमें कोई गूढ़ भेद है, इससे उसने सब प्रकारका दुःख सहन करनेका निश्चय किया।

"इतने छोटेसे गाँवमें कहाँ क्या होता है, इसकी भी खबर तुम नहीं रखते? तुम तलाटीगिरि करते हो या घास छीलते हो" क्रोधसे गम्भीरलालने पूछा।

"किन्तु सरकार! ऐसी बातोंका कैसे पता चल सकता है?"

"हाँ, जी हाँ! तुम्हें तो बार बार यहाँ आना है, गाँव पर तो रहते नहीं और न सरकारी काम करनेकी ही कोई परवाह है"

"जी, मैं पता लगाकर दो चार दिन में खबर करूँगा।"

"दो चार दिन नहीं, मुझे इसकी खबर कल मिलनी चाहिये। अभी तुम लौट जाओ और कल शामकी गाड़ीसे वापस आ जाना।"

"बहुत अच्छा सरकार!" कहकर मोघाराम उठा। उसके मनमें बार बार विचार उठने लगा कि क्या मणि अपराधिनी है? यदि हो तो क्या? ऐसी दुःखकी मारी, अनाथ स्त्रीके लिए मोघारामके हृदयमें बहुत दया उत्पन्न हो गई थी जिससे यथाशक्ति उसका एवं उसकी पुत्रीका उपकार करनेका उसने निश्चय कर लिया। इसीसे रावसाहबके प्रश्नोंसे उसके मनमें संशय उत्पन्न हो गया था। यदि अपराधिनी ही हो तो मेरा क्या? किसलिए गम्भीरलाल उसकी खोज कर रहे हैं? वह इसी उधेड़-बुनमें रहा कि बातें बताना उचित है अथवा नहीं?

माघारामने सोचा कि बातें छिपाना ठीक न होगा क्योंकि मीठा कुआँका प्रत्येक मनुष्य, बच्चा बच्चा, मणिके सम्बन्धमें जानता है कि वह एक लड़की छोड़कर यहाँसे चली गई। इस समय वह अम्बाजी गये हैं यह भी सच है। इस बीचमें गम्भीरलाल चाहता क्या है, यह मालूम हो जायगा।

माघारामने दूसरे दिन आकर गम्भीरलालसे मणिका इतिहास बता दिया। यह भी कह दिया कि उसकी पुत्री इस समय शिवापटेलके पास है।

"शिवापटेल तो जोरा भगतका लड़का है न?"

"जी हाँ।"

"हूँ—कल मेरा डेरा मीठा कुआँमें पड़ेगा।"

"जैसी सरकारकी मरजी!" धीमेसे मोघारामने कहा—किन्तु शिवापटेल वहाँ है नहीं।"

गम्भीरलालकी आँखें चमक उठीं। उसका मतलब एक साधारण तलाटी समझ जाय यह उसे नहीं रुचा साथ ही अपना मतलब सिद्ध न होनेसे वह चिड़चिड़ा भी उठा।

"कहाँ गया है? पटेल होकर गाँव पर नहीं रहता?' माम-लतदार (तहसीलदार) साहबने रोब झाड़ते हुए कहा।"

"सरकार! आप ही ने छुट्टी दी होगी। उसका बाप मरा तभीसे वह छुट्टी पर है।"

"हूँ! कहाँ गया है?"

"कहीं जात्रा पर गया है।"

"कहाँ?"

"मुझे खबर नहीं है" झूठ बोलते हुए मोघारामने कहा।

"मोघाराम! मालूम होता है तुम्हारे दिन पूरे हो गये हैं सावधान रहना।"

"क्यों सरकार?"

"तुम अब झूठ बोलना सीख गये हो, इससे।"

मोघारामके मुखपर नम्रता आँखोंमें दीनता थी किन्तु अन्तर में उसका कलेजा धड़क रहा था। आग्रहसे उसका मन निश्चय पर आ रहा था।

"सरकार! आपसे भला झूठ बोल सकता हूँ? कहिये पता लगाकर बताऊँ।"

"नहीं, जरूरत नहीं है, ठीक है, देखा जायगा" कहकर गम्भीरलालने उसे बिदा किया। उसके पीठ फेरते ही मधुको बुलाकर शिवापटेल कहाँ जात्रा पर गया है इसका पता लगानेके लिए भेजा। मोघाराम गम्भीरलालके मकानसे निकलकर पास ही के दूकान पर बैठ गया और मधु निकला तो उसके पीछे हो लिया। मधु स्टेशन गया, वहाँ दोनोंमें अचानक भेंट हो गई हो

इस प्रकार वह मधुसे मिला और दोनों साथ ही साथ मीठा-कुआँ गये। वहाँ पहुँचने के पहले ही मोघारामने मधुके पेटसे सब बातें निकलवा लीं कि किस वास्ते मधु वहाँ आया है, इसके उपरान्त जिस रात्रिमें मणि गम्भीरलालके यहाँ आई थी वे सब बातें भी मधुने बता दी। इसमें क्या भेद है इसका पता तो मोघारामको नहीं लग सका किन्तु गम्भीरलाल कोई गम्भीर चाल चल रहा है यह तो वह समझ ही गया।

———

२३

मोघाराम

गाँव पहुँचकर मोघारामने बहुत विचार किया। यह तो निश्चित था कि किसी अच्छे उद्देश्यसे गम्भीरलाल यह गुप्त पूछताछ नहीं कर रहे हैं। यह भी स्पष्ट था कि शिवापटेलके वापस आनेके पूर्व वह सुरेखाको नहीं पा सकता, अतः यहाँ लौटकर आनेके पूर्व ही यदि सुरेखा अदृष्ट हो जाय तो कैसा! यह मोघारामने सोचा।

दूसरे ही दिन वह शहर गया और पन्द्रह दिनकी छुट्टीका आवेदनपत्र लिखकर अपने एक मित्रको दूसरे दिन तहसीलदार साहबको दे आने का आदेश कर दे दिया। मोघारामकी एक बहन काठियावाड़में ब्याही थी, वह बहुत दिनोंसे बीमार है इसी आधार पर छुट्टी ली थी।

मोघाराम घर गया और भीतर एक कोनेमें गड़ी हुई अपनी पूँजी निकाली। लगभग आठ-नौ सौ रुपया एक लोटामें रखा हुआ था उसमेंसे जितना रुपया कमरमें बाँधा जा सका उतना लेकर फिर उसने लोटा ज्योंका त्यों गाड़ दिया। रुपया कमरमें बाँधकर, एक धोती एक डुपट्टा, डोरी लोटा एक कम्बल एकत्र कर उसने चन्दन. होरसा तथा गीता आदि सब वस्तुओंको एक साथ आसनीमें बाँधकर छोटीसी पोटली बना ली। इस पोटलीको बगलमें दबाकर वह निकल पड़ा।

उस समय अम्बाजी तक रेलगाड़ी नहीं गई थी जिससे थोड़ी दूर तक गाड़ीमें, और कुछ दूर पैदल चलकर मोघाराम वहाँ पहुँचा किन्तु उसे कुछ देर हो गई। शिवापटेलका दल वहाँसे निकल गया था। मोघारामको पता था कि बीचमें दो एक तीर्थ-यात्रा करके शिवापटेल डाकोर जानेवाला है इससे वह मीठा-कुआँ उसके पहले ही न पहुंच जाय, इस डरसे वह दौड़ता हुआ डाकोर पहुँचा। सद्भाग्यसे वहाँ पहुँचते ही उसे शिवापटेल का पता मिल गया। तुरत धर्मशाला खोजकर शिवापटेलसे मिला। थोड़ी देर तक इधर उधरकी बात कर उसने सुरेखाकी बात चलाई।

"मुझे मणि मिली थी, वह बम्बई गई है और मुझे वह अपना पता दे गई है। उसने सुरेखाको लेकर मुझे बम्बई बुलाया है।

"क्या कहते हो ? वाह ! कोई सम्बन्धी मिल गया क्या ?"

"हाँ ! उसका भाई आया था, उसीके साथ गई, अब वह सुखी है।"

"अच्छा ! अब उसका भण्डाफोड़ होगा" गंगाबहूने कहा।

"इसमें अपनेसे क्या मतलब ?" मोघारामने बात उड़ाते हुए

कहा। "हम तो चिट्ठीके चाकर हैं, आप कहें तो आज ही ले जाऊँ"

"नहीं, नहीं, यह लड़की मुझे बहुत प्यारी है" पटेल बोले।

"हाँ, लेकिन जब उसकी माँ माँग रही है तब क्या इनकार करोगे ?" गंगाबहूने जवाब दिया। तुरत शिवापटेल और उसके बीचमें महा वाग्युद्ध छिड़ गया, आखिर गंगाबहूकी ही जीत रही। उसी दिन मोघाराम सुरेखाको लेकर रवाना हो गया।

मोघारामकी भाञ्जी बड़ोदामें रहती थी, वहाँ गया। सुरेखा को उसे सौंपकर, एक दिन वहाँ उसने विश्राम किया और दूसरे दिन मीठा कुआँके लिए लौट पड़ा।

२४

पिता की चिन्ता

गम्भीरलाल उठे, दाँतुन आदिसे निपट कर समाचारपत्र पढ़ने लगे। इतनेमें मधु चा लाया।

"मधु ! मोघारामका पता लगा आया ?"

"जी हाँ ! कल रातमें मोघाराम बाहरसे आ गये हैं।"

"अच्छा, इस समय घर पर हैं क्या ?"

"जी हाँ, क्या बुला लाऊँ ?"

"हाँ" कहकर गम्भीरलाल चा पीने लगे।"

"मधुके जाते ही गम्भीरलाल अधीर हो उठे। कुछ देरमें मधु वापस आया।"

"सरकार ! मोघाराम संध्या पर बैठे हैं, उठने पर आवेंगे।

"जहन्नुममें जाय उसकी सन्ध्या !" गम्भीरलालने क्रोधको दबाते हुए कहा। जब मोघाराम आये उस समय तक उनके क्रोधका पारा बढ़कर एक सौ आठ डिग्री तक पहुँच गया था।

"क्यों मोघाराम ! जात्रा कर आये ?" गम्भीरलालने यथाशक्ति शान्तिसे पूछा। मोघाराम इसके लिए पहलेसे ही तैयार था, पर उसकी नम्रतामें जरा भी अन्तर नहीं आया।

"जी, मैं तो अपनी बहनके पास गया था, कारण तो मैंने आवेदनपत्रमें लिख दिया था।"

"किन्तु सच्चा कारण क्या था ? क्या हरएक पटवारीको माँ बहनकी बीमारीमें छुट्टी चाहती है ?"

"सरकार ! मेरा कारण सच्चा था।"

"तेरी बहन क्या अम्बाजी रहती हैं या शिवापटेलके साथ वह भी जात्रा करने गई थीं ?"

"नहीं सरकार ! वह जेतलसर रहती है।" मोघाराम मनमें डरने पर भी अज्ञानताका ढोंग रचते हुए बोला।

"हाँ तू वहाँ हो आया ?"

"जी हाँ।'

"शिवापटेल कहाँ हैं ? मीठा कुआँ आ गया ?"

"मुझे क्या पता ?"

"ऐसा ? मोघाराम तेरे सिर पर मौत नाच रही है।"

"क्यों हजूर ?"

"मुझे धोखा देता है ? कमबख्त ! चल बता ! जो लड़की शिवापटेलके पास थी उसे लेकर कहाँ छोड़ आया है ?"

"कौन लड़की ? मुझे क्या मालूम ?"

"हरामखोर ! झूठा ! डाकोर जाकर जिसे तू शिवापटेलसे

ले आया, बता उसे कहाँ रख आया है ? समय रहते सँभल जा और बेकार अड़ंगा लगाये बिना जो कुछ मैं कहता हूँ करदे नहीं तो तेरी कुशल नहीं है।"

"क्या कहूँ सरकार ? आपकी बात तो मेरी समझमें ही नहीं आई।"

"समझमें कैसे आयेगी ? देख यह ढोंग छोड़ दे। मुझे सब पता है। शिवापटेल वापस आ गया है। उसके पाससे लड़की तू माँग ले गया और अब झूठ बोल रहा है ?"

मोघाराम चकपका गया। उसने यह नहीं सोचा था कि गम्भीरलाल इतना अनुसन्धान और चौकसी रखेगा। अबतक वह दब रहा था क्योंकि नौकरी छूट जानेका उसे भय था ! अब यह पता लग जाने पर कि गम्भीरलालको सब कुछ मालूम हो गया है नौकरीका मोह भी त्यागकर गम्भीरलालसे निडर हो जवाब सवाल करनेके लिए तैयार हो गया।

मोघाराम पुराने विचारका आदमी था। उसे प्रारब्ध पर पूर्ण विश्वास था जिससे वह किसीकी जरा भी परवाह नहीं करता था। उसके मस्तिष्कमें अनेकानेक विचार उत्पन्न हुए जिससे गम्भीरलालकी पूछताछका क्या कारण हो सकता है इसका कुछ कुछ आभास उसे मिल गया था और सच्चे श्रेष्ठ ब्राह्मणका रौद्र स्वरूप थोड़ा बहुत दिखलाई पड़ा। उसने गौरवसे अपना सिर ऊँचा करके कहा—सरकार ! मैं झूठ बोलता हूँ पर वैसा कर्म करता नहीं। आप सब कुछ जानते हैं तब मुझे कुछ छिपानेकी आवश्यकता नहीं है। जी हाँ, मैं लड़की ले गया हूँ, तब ?

"तब मुझे उसे दे दो" गम्भीरलालने समझा कि मोघाराम अब हाथमें आ जायगा।

"क्यों किसलिए ? आप सरकारी कामके लिए उसकी माँको

खोज कर रहे थे, किन्तु लड़कीके विरुद्ध भी क्या कोई अभियोग है ?"

"इससे तुझे मतलब ? लड़की कहाँ रख आया है, बताता क्यों नहीं ? व्यर्थ माथापच्ची क्यों करता है ?"

"हजूर ! आप तो अन्नदाता हैं किन्तु मैं जानना चाहता हूँ कि किस नियमसे आप उसे माँग रहे हैं ?"

"नियम है मेरी इच्छा ! लड़की कहाँ है तुझे बताना है या नहीं ?"

मोघारामकी नसें तन गईं । उसने दृढ़ता से कहा—नहीं !

"नहीं ? मोघाराम ! तू क्या जानता नहीं है कि किसके साथ बात कर रहा है ।" गम्भीरलालने दाँत पीसकर कहा ।

"हाँ, साहब ! आप बड़े हैं, मैं गरीब हूँ किन्तु न देनेका कारण है !"

"क्या ?"

"जिस मनुष्यने माँको दुःख दिया, वह भला उसकी पुत्रीकी क्या रक्षा करेगा ?" मोघारामने अपनी कल्पनाशक्तिके सहारे गम्भीरलालके भेदका कुछ पता लगाकर अन्धेरेमें तीर चलाया जो जाकर सटीक निशाने पर बैठा । गम्भीरलालको मानो बिच्छूने डंक मारा हो इस प्रकार तिलमिलाकर वह कुर्सीसे उछल पड़े ।"

"क्या कहा ?"

"बिलकुल सच !" शांतिसे मोघारामने कहा ।

"तुझे खबर है कि तेरी रोटी अभी छिन जायगी; कुछ सोच समझकर बोल रहा है या योंही ?"

"रोटी छीनना क्या किसीके हाथकी बात है ? इच्छा हो तो

तो यह अपनी नौकरी! बारह रुपयेकी पटवारीगिरी। क्या भगवान इतना भी न देगा?"

"यह बात है! तब तू लड़की नहीं देगा? याद रखना—गम्भीरलालसे पाला पड़ा है।"

"साहब! आप बहुत बड़े हैं, लें अपनी नौकरी! या और कुछ! जाँगर सलामत रहे, जहाँ जाऊँगा वहीं दो रोटी कमा खा लूँगा। आपकी आज्ञा हो तो अब जाऊँ।"

"इस समय तो जाओ। गई फसलमें कितना रुपया घूस लिया था? कलेक्टर साहबसे कहने भरकी देर है। मुझसे शत्रुता करके सुखकी नींद न सो सकोगे।"

"उसमें क्या मैं अकेला ही साझीदार था? मैं भी कलेक्टर साहबसे दूसरे साझीदारका नाम बताऊँगा न" यह कहकर उसने गम्भीरलालकी ओर देखा। गम्भीरलालने आँखें नीची कर लीं, उन्हींको नम जाना पड़ा। अपना गौरव रखनेके लिए मोघारामको वह समझाने लगे।

"मोघाराम! तू बेकार जिद कर रहा है। इस लड़कीको क्या मैं मार डालूँगा? मैं तो उसे ऐसे स्थान पर रखना चाहता हूँ जहाँ उसे सुख मिले।"

"इस समय जहाँ वह है बड़े सुखमें है। इससे बढ़कर अच्छा ठिकाना उसे मिल नहीं सकता।"

"उसकी माँ कहाँ है यह तो मुझे बता दो।"

"मुझे पता नहीं।"

"कितना झूठ बोलते हो?" थाह लेनेकी गरजसे गम्भीरलालने कहा।

मोघारामने इसका कुछ भी उत्तर नहीं दिया। थोड़ी देर ठहरकर उसने कहा—हजूर! अब आज्ञा हो तो चलूँ। नमस्कार

मोघाराम चला गया। उसे गम्भीरलालका बड़ा डर लगा। वह सही सलामत उसे रहने देगा यह विश्वास नहीं हुआ।

तीसरे ही चौथे दिन कलेक्टरका हुक्म आया कि मोघाराम नौकरीसे अलग कर दिया गया है। गम्भीरलाल पर दाँत पीसता हुआ मीठा कुआँसे वह शहर आया, वहाँ भी उसके लिए फौजदारीका वारंट तैयार था।

गत वर्ष घूस लेनेके अभियोगमें उस पर सरकारकी ओरसे लम्बा मुकदमा चला। मदनलाल मारुतिने उसे बचानेका जीतोड़ प्रयत्न किया, किन्तु व्यर्थ। सेशन्स जजने उसे तीन वर्ष कठोर कारावासका दण्ड दिया। मोघारामको किसी बातकी चिन्ता नहीं थी अतः उसने हँसते हुए, इसे भी प्रारब्धका एक खेल समझकर दण्ड स्वीकार कर लिया।

गम्भीरलालको शान्ति मिली। मोघारामके जानेसे लड़कीका पता देने वाला कोई रहा नहीं और मणिका भी कहीं ठौर ठिकाना न था जिससे अपने मार्गका सब कंटक दूर कर अपने भविष्य जीवनके सुधारमें वह लगे। उनका विवाह भी थोड़े ही समयमें एक धनाढ्य कन्याके साथ हो गया।

२५

तरफड़दासकी एक नवीन युक्ति

समाज उद्धारकगण उस दिन उठकर अपने अपने घर चले गये किन्तु समाजका उद्धार करनेका उनका उत्साह पहलेके समान ही बना रहा, वह कम नहीं हुआ। धनेशचन्द्र अवश्य ही जरा नरम पड़ गये थे; 'प्रैक्टिकल' काम करनेकी लगन जरा भारी

पड़ गई थी। मदनलाल मारुति भी मणिके इतिहाससे कुछ निराश हो गये थे। उन्हें मणि बहुत याद आती थी, किन्तु वह गई कहाँ यह उनकी समझमें नहीं आता था।

पर 'मार्तण्ड प्रकाश' के विद्वान संपादक महोदयके मस्तिष्क में उद्धार करनेके अनेकों विचार चक्कर काट रहे थे। समाज उद्धारका काम ढीला पड़ जानेसे उनके सामने दो कठिनाइयाँ आ खड़ी हुईं। वह स्वयं सभाके खजाञ्ची थे जिससे सभाका पैसा उनके पास रहता था। अब वह आमदनी रुक जाने से 'मार्तण्ड प्रकाश' का बैंक खाली हो गया। इसके अलावा जो प्रसिद्धि प्राप्त होनेकी आशा थी वह भी नष्ट होती प्रतीत हुई। घरकी आय बढ़ती हुई नहीं दिखाई दी। किसी प्रकार कोई नया आडम्बर रचनेके लिए वह छटपटा रहा था। पहली बार धनेशचन्द्र और मारुतिने उसे पीछे रख कर सब मान स्वयं अपने हिस्से रखा यह तरफड़दासको बहुत ही कष्ट दे रहा था। यही सब विचार उनके परिपुष्ट मस्तिष्कमें चक्कर काटा करते थे।

एक दिन ऐसे ही विचार बड़ी तेजीसे उनके मस्तिष्कको मथ रहे थे—सागर-मंथनसे जैसे रत्न निकले थे वैसे ही प्रमथन से उनकी विचार-धाराके अनेक अंश टूट टूट कर आविर्भूत हो रहे थे। इन विचारोंका कैसे उपयोग किया जाय इसीका मार्ग वह ढूँढ़ रहे थे। कोई रास्ता नहीं सूझा। इतने ही में तरफड़दास की धर्मपत्नी उधरसे निकलीं—उनके पैरकी झङ्कार तरफड़दासके कानमें पड़ी। बस अब क्या था, 'मार्तण्ड प्रकाश' के ब्रह्माके अंधकारग्रस्त मस्तिष्क में नवीन प्रकाश फैल गया और उस प्रकाशका एक अंश साक्षात् सरस्वतीके समान ऊपर आया। तरफड़दास 'धत् तेरे की' कहते हुए तुरत खड़े हो गये।

उनके चेहरे पर उनकी धारणाके अनुसार दैवी तेज विराज

रहा था। विद्युत्‌की शोध करते समय फ्रैंकलिनके अथवा निर्वाण का मंत्र हाथ लग जाने पर भगवान बुद्धके मुँह पर जैसी प्रभा छा गई थी वैसी ही प्रभा छा गई। कैसा अन्वेषण? इतने दिनों तक यह कहाँ छिपा पड़ा था।

"डियर! जरा यहाँ आ जाओ!" तरफड़दासने अपनी धर्मपत्नी को सम्बोधन करते हुए कहा। उनकी धर्मपत्नीने हिन्दी की दूसरी पुस्तक तक केवल अभ्यास किया था किन्तु जब तरफड़दास स्वयं आनन्दसे ओत-प्रोत रहते थे तब उसे 'डियर' कहकर पुकारते थे। उनकी अर्धांगिनी भी उन्हीं के योग्य थीं। कदमें ऊँची ताड़ जैसी, सूखी सपाट, रंगमें कोयलेसी काली नाक चीयाँकी चपटी और कपोल दोनों बैठा हुआ होने पर भी कपड़ा पहननेकी ठसक और नखरेके साथ धीरे-धीरे बोलनेकी चतुराई उनके व्यक्तित्वमें चार चाँद लगा देती थी। 'मार्तण्ड प्रकाश' की बहुत कुछ आय प्रकाशक महोदयकी पत्नीके लिए सस्ते, भड़कीले और 'फैशनेबुल' कपड़े और जम्फर आदिकी खरीदमें व्यय होती थी; और ललिताकी सम्पूर्ण बुद्धि उन सब कपड़ोंको कलाके साथ उपयोग कर अपने लकड़ीके घोड़े जैसे शरीरमें अधिकाधिक छटा लानेमें लग जाती थी! जितना उसे अपनी चालका घमण्ड था उतना ही अपनी आवाजके लिए भी था।

उसकी आवाज धीमी और मीठी थी। प्रकृतिने ऐसा शरीर और रूप गढ़ते समय ऐसी आवाज क्यों दिया यह कोई तत्त्व-ज्ञानी ही बता सकता है। इसी आवाजके कारण वह गरबामें, जागरणमें, चार स्त्रियाँ जहाँ एकत्र होकर गाना बजाना करें वहाँ अथवा पुरुषों पर अपनी छाप मुद्रित कर देती थीं।

स्वभावकी भी पक्की होनेसे किसीसे वह साधारणतः ठगी

जानेवाली नहीं थी अपना काम सरलता पूर्वक समाप्त कर लेती। वह गालेदराज भी थी जिससे बाध्य होकर तरफड़दासको काफी पैसा उसके टीम-टाममें व्यय करना पड़ता था। इन सबका भी कारण था। उसके माँ बाप बम्बईमें पिञ्जरापोलकी गलीमें रहते थे।

तरफड़दासके मनमें भी अपनी धर्मपत्नीके लिए अथाह प्रेम था। यदि उनका वश चलता तो प्रत्येक घड़ी और पल उसे साष्टांग दण्डवत कर अपना जीवन बिताते। समस्त दिन वह ललिताका मनन किया करते थे और अपने चाहे जैसा फटा पुराना कपड़ा पहनते पर अपनी पत्नीको सुशोभित बनानेमें ही अपनी कृतकृत्यता समझते थे। इसका मूल कारण एक ही था। जहाँ वे जाते थे धुत्कारे जाते थे। बाहरसे कोई विनयी हो फिर भी सभी तरफड़दास को अपने मनमें तृणवत् समझते। यह आत्म-ज्ञान बिचारे तरफड़दासके जीवको रात दिन जलाये डालता था पर उस अग्निकी ज्वालामें ललिताकी मीठी वाणी ठंढे पानीका काम करती थी। इसीसे तरफड़दास इधर उधर धक्का खाकर पुनः अपनी ललिताकी शरणमें जाते थे और उसकी देवीके समान पूजा करते थे। इससे ललिताका भी एक लाभ था। दो मीठी मीठी बातें कहकर कपड़ोंके लिए पैसा गांठ से निकाल लेना उसके लिए सरल हो जाता।

इस देवीके दर्शनसे तरफड़दासके मस्तिष्कमें विचारका स्फुरण हुआ और पक्षीका वध हो जानेसे जैसे वाल्मीकिजीके मुखसे श्लोक निकल गया और रामायण बन गई—वैसे ही इस दर्शनसे तरफड़दासके मुखसे 'धत् तेरे की' का महामंत्र निकलते ही 'समाज-उद्धार' का नया मार्ग दृष्टिगत हुआ।

"डियर !"

"क्यों, क्या है ?" जरा एक तरफ कमर बाँकी कर सूखा बाँस जैसा हाथ रखकर पूरे नब्बे अंशका कोण बनाते हुए कुहकीं।

"और जरा इधर तो आओ।"

"मैं काममें हूँ, लो कहो क्या कहते हो ?"

"आज मुझे एक नई बात सूझी है !"

"क्या ?"

"अपना सुधार न होने का कारण।"

"आपको तो रोज ही नई नई बातें सूझती हैं, बताइये आज क्या है ?

"हमारे न सुधरनेका मुख्य कारण यह है कि अपने लोगोंमें स्त्रियोंकी जैसी प्रतिष्ठा होनी चाहिये वैसी नहीं है।"

"जाइये, बस रहने दीजिये ! प्रत्येक घरमें तो स्त्रियाँ अपने पतिके साथ उपले पाथती हैं। मेरी जैसी शायद ही कोई हो।"

"नहीं ! यह बात नहीं है। जहाँ पुरुष एकत्र हों वहाँ स्त्रियाँ भी आवें तो परस्पर प्रीति बढ़े, रीत भाँति सुधरे और संसार-सुधारका द्वार खुल जाय ?

"यह तो मैं नित्य ही कहती हूँ पर आप सुनें तब न। साथमें घुमाने तक तो ले नहीं जाते।"

"यह भी क्या बम्बई है ? लोग कच्चा हो चबा जायँगे।"

"तब बड़े सुधारक क्यों बनते हैं ? जरा ठहरिये। यह मेरी खिचड़ी जली जा रही है, पीछे भोजनके समय चिल्लाने लगोगे।" कहकर ललिता लालित्यहीन कदम बढ़ाती हुई खिचड़ी संभालनेके लिए चली। उसके पीछे-पीछे तरफड़दास भी गए और ललिताकी खिचड़ी उतारनेकी छटा ही ध्यानसे देखते रह गये। फिर वहीं जम गए।

"तुमने मेरी बात समझी या नहीं ?"

"नहीं, ठीक ठीक नहीं। आप करना क्या चाहते हैं? जैसा देस वैसा भेस।"

"जो भी हो फिर भी क्या यह बम्बईकी बराबरी कर सकता है? किन्तु अपने यहाँ यदि कोई ऐसा स्थान हो जहाँ सुधरे हुए स्त्री-पुरुष मिलें तो कैसा हो।"

"हाँ! लेकिन कोई स्त्री आयेगी भी?"

"क्यों नहीं, तू तो है न

"हाँ, मैं तो तैयार हूँ। लेकिन अकेला चना कैसे भाड़ फोड़ेगा।"

"एक दूसरा लाभ भी है?"

"वह क्या?"

"तुम्हें खबर है या नहीं कि विलायतमें पतिकी सहायता करनेके लिए स्त्रियाँ 'वोट' (मत) भी माँग लाती हैं। तब—"

"हाँ, समझमें आ गया, मेरे द्वारा आपका भी कुछ लाभ होगा।"

"शाबाश! तू भी कैसी चतुर है।"

ये शब्द सुनकर, सचमुच वह चतुर हो ऐसा समझ वह हँसी।

"तब एक क्लब चालू करो। बम्बईमें मेरे पिताजीके मालिक एक क्लबमें जाते थे।"

"लो, तब तो तुम्हें उसका अनुभव भी होगा?"

"क्यों नहीं!" कहकर फिर उसने आँखें मटकाईं "किन्तु गहना कपड़ा सब नया चाहिये, वहाँ तुम्हारी इन धोतियोंसे काम नहीं चलेगा।'

"अरे हाँजी, दुनियाँमें रहनेपर किसी बातसे भला छुटकारा मिल सकता है?"

मौखिक कौल-करार हुआ। तरफड़दासने मान-मर्यादा बढ़ाने के लिए पत्नीको आगे किया। ललिताने बापके मालिकके अनुभव से एवं नये कपड़ोंकी लालचसे यह योजना स्वीकार कर ली।

तरफड़दासको अनुभव हुआ कि इस योजनाकी सिद्धिमें मारुतिकी आवश्यकता पड़ेगी, अतः उसे मनाने चला। पहले तो मारुति कुछ तने पर बादमें स्वीकृति दे दी। समाज-उद्धारमें उसकी श्रद्धा अब कम हो गई थी। तरफड़दास फिर गम्भीरलाल से मिला।

गम्भीरलालको वह बात बहुत भाई, इससे उसने समाज-उद्धारिणी सभाकी एक बैठक की। प्रस्ताव पास हो गया। नसरवानजी सेठने अपने मकानका हॉल मुफ्त देनेका बचन दिया। सब धीरे-धीरे अनजानमें इस निश्चय पर आते गये कि समाज-उद्धार सुखसे होता है, सुख मौजसे मिलता है, मौज खाने पीने और गप शपसे मिलती है और जिस संस्थामें खाना मिले, पीना मिले, गप शप करनेके लिए मिले, वह संस्था समाजका उद्धार अवश्य कर देगी इसमें लेशमात्र भी सन्देहके लिए स्थान नहीं है।

द्वितीय खण्ड

१

विचित्र परिस्थिति

संध्याका समय है। आकाशमें काले बादलोंके समान धूआँ ही धूआँ दिखाई पड़ रहा था। बस्तीमें रहनेसे यह धूआँ विषाक्त हो गया था लेकिन वहाँके निवासियोंको इस विषका अनुभव नहीं होता। कीचड़के कीड़ोंको उसकी गन्ध नहीं मालूम पड़ती। पर विष तो चारो ओर फैलकर पुरुष, स्त्री और बालकोंके जीवन को नष्ट करता ही था। यह बम्बई जैसे बड़े-बड़े शहरोंकी वर्तमान संस्कृतिकी खूबी है।

कांदावाड़ी नामक बड़े मुहल्लेके एक मकानके ऊपर एक छोटीसी कोठरीमें मणि पड़ी थी। उसका फटा पुराना बिछौना और गद्दा था। मुख कुम्हलाया हुआ था जिस पर नैराश्य और दुःखकी रेखायें स्पष्ट दिखाई दे रही थीं।

मणिको रामजनीके साथ आये तीन मास हो गये थे। इन तीन महीनोंमें उसने गाना बजाना सीख लिया था पर उसके जीवनमेंसे रस जाता रहा। दुःखमें गर्भावस्थामें जो सन्ताप उसके मनको कभी सन्तप्त नहीं कर सके थे वे आज उसे सता रहे थे। बिछौना, घर, तुंगभद्रा, बम्बई आदि सब उसकी निगाह में घृणित थे। उसकी परिष्कृत आत्मा पर अनेक आघात लगे,

उसमें अनेक घाव हो गये थे जिनसे सदैव लोहू झरा करता था।

तुंगभद्राका कृत्रिम जीवन, उसके झूठे आभूषण, पाउडरका रंग, नीच संगत, यह सब उसे पीड़ा पहुँचा रहे थे। उसका गला घुटता हुआ मालूम पड़ता, नदी तालाबमें डूबकर जीवन नष्ट कर देनेकी प्रबल इच्छा होती। उसे प्रेमसे भरा रसपूर्ण गाना अच्छा नहीं लगता, वह तो दुःखपूर्ण गीतोंको ही गाती; वस्त्राभूषणकी ओर तो वह आँख उठाकर भी न देखती। न तो किसीके पास बैठती थी और न किसीसे बोलती।

उसे यहाँ सब प्रकारका वाह्य सुख था—अच्छा भोजन मिलता था, सोनेके लिए स्थान था। रात्रिमें गायन सुनती थी पर वह बन्दी थी—सब प्रकारसे बन्दी थी। अन्तरात्मा संस्कार कारागृहमें बद्ध था, शरीर भी कारागृहमें था। तुंगभद्राने बड़ा प्यार दिखा, उस पर धीरे धीरे ऐसा चौकी पहरा बैठा दिया था जिससे वह न तो बाहर निकल पाती और न किसीसे मिल जुल ही सकती थी। उसके दुर्भाग्यसे मिलनेवाला कोई था भी नहीं। पर बन्दी बनकर रहना कौन पसन्द करेगा? उसकी छत केवल चार फुट चौड़ी थी। वहाँ वह अपना समय किसी प्रकार काटती थी, बादलों द्वारा सुरेखाके पास सन्देशा भेजकर अपना जीवन व्यतीत करती थी।

तुंगभद्रा धीरे धीरे मणिको वशमें करनेका प्रयत्न कर रही थी और वह भड़कने न पावे इस विचारसे बड़ी ही सावधानीसे आगे कदम बढ़ाती। उसकी अवस्था अब उतर रही थी जिससे उसका गाना सुननेके लिये शायद ही अब कोई उसके पास आते। तुंगभद्राको विश्वास हो गया था कि अब उसका गला भी बिगड़ता जा रहा है, इससे वह सोच रही थी कि यदि अपने यारोंके लिए यदि कोई नई चीज वह न जुटा सकी तो घर पर

पड़ी पड़ी भूखों मरनेकी बारी आ जायगी, यही कारण था जिससे वह मणिको वशमें करना चाहती थी। मणिमें रूप था, गुण था, मीठा राग था, चतुराई थी। यदि वह वशमें हो जाय तो तुंगभद्रा का बेड़ा पार हो जाय। तुंगभद्राके यहाँ आने वालोंमें सेठ चन्दूलाल मुख्य थे। वह धनाढ्य था, मौजी था। अब वह भी पहले जैसे भावसे तुंगभद्राकी पूजा नहीं करता था।

एक दिन ऊपर अकेली बैठकर मणि अपना जी बहलानेके लिए भगवानसे प्रार्थना करती हुई एक दुःखपूर्ण गीत गा रही थी, उसी समय सेठ चन्दूलाल तुंगभद्राके यहाँ आ पहुँचे और मणिका गाना सुनकर चौंक उठे। उसने तुङ्गभद्रा पर व्यंग कसा और उसके सम्बन्धमें पूछताछ की। तुंगभद्रा उसे ऊपर लिवा ले गई, विवश हो दूसरेकी प्रसन्नताके लिए मणिको गाना ही पड़ा। सेठ चन्दूलाल तो उस पर लट्टू हो गये। उसे मणिका राग दुनिया भरमें सबसे श्रेष्ठ जँचा। मणिकी सुन्दर मुखाकृति उसके हृदय-पट पर अङ्कित हो गई। रात भर वह मणिका ही स्वप्न देखता रहा।

दूसरे दिन मणिने देखा कि तुंगभद्रा बात बात में चन्दूलाल के धन ऐश्वर्य आदि का बखान करती। क्या कारण था इसे शुरू में वह समझ भी न सकी। संध्या समय सेठजी आये और उन्होंने फिर मणि का गाना सुना।

तीसरे दिन तुंगभद्रा आकर कहने लगी मैंने तुम्हें भूखों मरनेसे बचाया है इसलिए उसके बदलेमें तुम्हें मेरी कुछ मदद करनी चाहिये।

"क्या मदद करूँ ? मेरे हाथ में कुछ हो भी। तुम कहो तो नीचे बैठकर गाऊं। यह एक सेठ तो ठीक है लेकिन मैं खुले आम नहीं गा सकती ?

"यह कैसे हो सकता है ? आज नहीं तो दो दिन बाद यही करना पड़ेगा। गाये बगैर कहीं चल सकता है ?"

"नहीं, मैं तो नहीं गा सकती। तुमसे मैंने क्या पहले ही तै नहीं कर लिया था ?"

"पर मैं कहाँ कह रही हूँ ?" तुङ्गभद्रा जल्दी करके काम बिगाड़ने वाली स्त्री नहीं थी "मात्र इस चन्दूलाल सेठको एक वश में तू कर ले, तो बस सब बेड़ा पार हो जायगा ?"

"वशमें कैसे करूँ ? तुम्हारे कथनानुसार मैं गाती हूँ। और क्या करूँ ?"

"क्या पागल हो गई है ? केवल गानेसे कोई रीझता है ?"

"तब मुझे जाने दो ?"

"कहाँ, दरदर भटकनेके लिए ?"

"जो भी हो, मुझे तुम्हारा धन्धा नहीं करना है। उससे पैसा पैदाकर मौज उड़ाना नहीं चाहती ! मैं यहाँ कौनसी सुखी हूँ ?"

"इतना करने पर भी तू ऐसा कहती है ? बड़ी कृतघ्न है। मेरा अन्न तूने खाया है वह क्या मुफ्त में ?"

मणि की आँखोंसे आग बरसने लगी; तुम्हारे बुलाने और वचन मिलनेपर ही मैं आई। तुम्हारे आसरे बैठी थोड़े ही थी, तुम्हीं ले आईं।

तुङ्गभद्राने हँसकर कहा—ऐसे वचनों का पालन नहीं होता।

"यह तो मैं पहलेसे ही जानती थी, भला तुम्हारी जातिसे इसकी आशाकी जा सकती है ! पर मैं तो अपने वचन का पालन करूँगी।"

"क्या ?"

"अपनी इच्छा के विरुद्ध मैं किसी पुरुषके सामने कभी नहीं जाऊँगी ?"

"तब तू सीधेसे नहीं मानेगी ? याद रख, मेरा मिजाज बिगड़ जायगा तो मेरी जैसी खराब दूसरी नहीं होगी ?"

इसकी मुझे अधिक चिन्ता नहीं है। दुनिया भरने मुझपर अत्याचार किया है, तो उसमें तुम एक और अधिक सही !"

"ठीक ! आज रातमें सेठ आयेगा तब तक यदि तुम्हारी बुद्धि ठिकाने आ गई तो ठीक है नहीं तो समझ रख ?"

"मेरी बुद्धि तो ठिकाने है ही।"

तुंगभद्रा आगबबूला होकर पैर पटकती हुई वहाँसे चली गई। शाम को उस्ताद बुलाने आया तो हिम्मत रख कर मणि चली गई। जरा भी चल-विचल होने पर घर छोड़कर चली जानेका उसने निश्चय कर लिया था। सेठ चन्दूलालने आज्ञा दी, मणिने गाया। धीरेसे उठकर तुङ्गभद्रा चली गई। गाना पूरा होते ही मणि उठकर खड़ी हो गई। वह समझ गई कि यह सब किसी पूर्व संकेतके अनुसार हो रहा है !

"बैठो, बैठो !" सेठ चन्दूलालने कहा।

मणि उनके सामने घूम कर खड़ी हो गई इतने ही में उस्तादजी भी वहाँसे उठकर चले गये और बाहरसे कमरेका दरवाजा बन्द हो गया।

"क्या काम है ?" एक भूखी बाघिनकी विकरालताके समान मणिने पूछा।

"यह भी क्या पूछनेकी बात है ?"

"हाँ !" दृढ़तासे मणिने कहा—"मैं कुछ तुङ्गभद्राका धन्धा नहीं करती। मेरे पीछे पड़नेसे कुछ सार नहीं निकलना है"

मणिका रूप और क्रोध देखकर सेठ दंग हो गया। उसने ऐसी वेश्या आज पहले ही पहल देखी थी।

"ओफ ! तेरा क्रोध तो गजब का है !"

"जो कुछ भी हो; मैंने तुङ्गभद्रासे पहले ही कह दिया है कि मैं अपनी इच्छाके विरुद्ध कुछ भी करनेवाली नहीं हूँ।"

"किन्तु यह कहता कौन है ? जो तेरी खुशी हो माँग।"

"मैं तो इतना ही माँगती हूँ कि आप अपने रास्ते जाइये और मुझे अपने रास्ते जाने दीजिये।"

"अरे यह भला कैसे हो सकता है ? आज मैं न सही तो कल कोई दूसरा आयेगा।"

"देखती हूँ कौन आता है। सेठजी ! यदि सीधेसे मान जायँ तो अच्छा है, नहीं तो लो यह खड़ी हूँ। आओ मेरे पास, तो देखूँ।"

सेठ लज्जित हो गया—इस महिषासुर-मर्दिनी जैसी तेजस्वी मूर्तिके सामने घबड़ाकर विमूढ़ सा वह खड़ा ही रह गया। उसकी आज्ञाका उल्लंघन करने वाला आज तक उसे ऐसा कोई नहीं मिला था। आज वह परास्त हो गया, पर मणिको छोड़ना भी नहीं चाहता था।

"अच्छी बात है, मैं तुङ्गभद्रासे बात करूँगा।"

"हाँ-हाँ करना।"

सेठजीको कोई दूसरा रास्ता नहीं सूझा, थककर उन्होंने दरवाजा खुलवाया। मणि एकदम वहाँसे निकलकर ऊपर चली गई। उसे पूर्ण विश्वास था कि सेठ इस प्रकार आसानीसे छोड़ने वाला व्यक्ति नहीं है पर वह भी इसके लिए तैयार थी।

वहाँसे भाग जानेके लिए मणि रातमें उतरकर दरवाजेके पास गई। रोज दरवाजा खुला रहता था—आज उसमें ताला बन्द था। पास ही में पहरेदार घों घों करता हुआ सो रहा था।

"जमादार साहब ! जमादार साहब ! जरा कुञ्जी लाइये।"

"कौन है ?"

"यह तो मैं हूँ" मणिने जवाब दिया। उसे ऐसा लगा कि जमादार सोनेका ढोंग कर रहा है।

"अब कुछ नहीं, चली जा।" कहकर उसने करवट बदली।

"जमादार साहब यह तो मैं समझ गई लेकिन बेकार सोने का ढोंग क्यों करते हो ? नहीं खोलोगे तो सारा महल्ला एकत्र कर दूँगी, चलो उठो।"

"ऊँ हूँ।"

"खोलते हो या नहीं ?" मणिने ऊँचे स्वरमें कहा, किसी भी तरह भाग जानेका उसने निश्चय कर लिया था।

"चुप बे बदमाश !" कहकर जमादार उठा। मणिका मुँह उसने अपने एक हाथसे दबा दिया और दूसरे हाथसे उसे गठरी की तरह उठाकर वह ऊपर ले आया। उसके हाथमें निर्बल मणि मछलीके समान छटपटा रही थी।

जमादार उसे ऊपर कमरेमें रखकर और उसका बाहरसे दरवाजा बन्द करके चला गया।

२

कैसे भागा जाय

पता नहीं कबतक मणि इसी प्रकार पड़ी रही। अब क्या करना है ? उसकी अभिमानी आत्मा परिस्थिति से दबी जारही थी, उसमें भी चन्दूलाल सेठकी लिप्सा और

जमादारकी शक्ति इन दोनोंने उसे विह्वल कर दिया। चाहे जैसे भी हो आधीनता स्वीकार कर यह नीच कर्म न करनेका उसने दृढ़ निश्चय कर लिया था अतः किसी भी प्रकार वहाँ से भागे बिना उसका निस्तार नहीं था।

लेटे लेटे उसने बहुत कुछ विचार किया। वह घर अब बन्दीगृह जैसा था। तुङ्गभद्रा मीठी मीठी बातें कर रही थी किन्तु उसका संकल्प दूसरा ही था। वह अपनी शान्त, मीठी पर निश्चल रीतिसे उसे वशमें करना चाहती थी। ऐसी परिस्थितिमें पड़ी रहना उसकी आधीनता स्वीकार करनेके समान ही उसे प्रतीत हुआ।

रातभर वह यही विचार करती रही। दृष्टिके सामने उसका भूतकालिक जीवन आकर खड़ा हो गया। कैसे कैसे अनुभव और कैसे कैसे कष्ट उसे सहन करने पड़े हैं? ये सब किसलिए? क्या उसके लिये ईश्वर संसारमें नहीं है? अब क्या बाकी रह गया? यह स्थिति किस अपराधसे प्राप्त हुई? वह बहुत रोई, बहुत चिल्लाई। पुत्रीकी याद आई, गम्भीरलालको गाली दी, जिन माँ-बापने जन्म दिया उन्हें भी जी भर कोसा। जिस समाज ने उसे बाल-विधवा रखकर इस निन्दनीय, कष्टमय दशाको पहुँचाया उसका सत्यानाश कर देने की भगवानसे प्रार्थना की। बिछौने पर अकेली पड़ी हुई उसने बहुत आक्रन्दन किया—उसका सन्ताप देखनेवाला कोई नहीं था और न कोई उसका आँसू पोंछनेवाला ही था। ईश्वर, समाज और सम्बन्धियोंने उसे पंगु बना दिया था।

आखिर आँसू बन्द हुए; प्रकृतिका साम्राज्य प्रारम्भ हुआ—वह सो गई। सबेरे जागने पर पुनः अपनी स्थिति पर विचार करने लगी।

विचार सभी निष्फल गये। इस सन्तापसे छुटकारेका मौतके सिवा दूसरा कोई मार्ग दिखाई नहीं दिया। ईश्वरने ऐसा सुगम और छोटा रास्ता दिया है तब क्यों न उसका उपयोग किया जाय, क्यों इतना कष्ट उठाया जाय? वह डोरी खोलने लगी—न खुलने पर उसने चादर उठाया। उसे मरोड़कर उसमें फन्दा बनाया। फन्दा गलेमें डालकर और उसे छतसे बाँधकर वह चारपाईपरसे ज़मीनपर कूद पड़ी। चादर पुरानी थी वह फट गई। थोड़ी देर तक मणि जमीनपर पड़ी रही। इतनेमें तुंगभद्रा बाहर आकर दरवाजा खटखटाने लगी।

"मणि! मणि! दरवाजा खोल!"

"क्यों?" मणिने पूछा।

"क्यों क्या? नहाना-धोना खाना-पीना नहीं है?"

"नहीं, मुझे कुछ भी नहीं करना है। मुझे घर के बाहर जाने दो, मुझे तुम्हारे घरमें नहीं रहना है।"

"अरे ऐसी टूटी क्या पड़ रही है? दरवाजा तो खोल"।

"जबतक घरसे निकल जाने देनेका वचन नहीं दोगी तबतक दरवाजा नहीं खोलूँगी?"

"ठीक, ले वचन!" हँसकर तुङ्गभद्राने कहा।

मणि उठकर दरवाजेके पास आई और तुङ्गभद्राके हँसनेकी आवाज उसे सुनाई दी। तुङ्गभद्राके वचन पर भरोसा! मणि एकदम पीछे हट गई।

"तुङ्गभद्रा! ठिठोली करती हो? कलकी तरह जमादारसे फिर कोई अत्याचार कराना होगा।"

"नहीं, नहीं, पहले तू दरवाजा तो खोल।"

"नहीं खोलूँगी। चन्दूलाल सेठके आने पर खोलूँगी ताकि वह साक्षी रहे" मणिने जवाब दिया। वह जानती थी कि इस

प्रकारकी दुर्गति तुङ्गभद्रा कभी भी स्वीकार न करेगी, इसलिए वह कभी उन्हें साथ नहीं लावेगी और यदि लावेगी तो उनके सामने की की हुई प्रतिज्ञाका पालन करेगी।

"मणि! इतने दिन खिलाने पिलानेका यह बदला। ठीक! पड़ी रहो, मैं जब तीसरे पहर आऊँगी तब पता चलेगा।" कहकर वह चली गई।

मणि समझ गई कि उसे भूखी रखकर वशमें करनेकी योजना की जा रही है। अब क्या उपाय किया जाय? वह भूखी खिन्न मनसे पड़ी रही। कोई रास्ता सूझता नहीं था। वह छतपर गई, वहाँसे कूद पड़नेका विचार किया। उसने चारो तरफ आँख दौड़ाई तो आसपासके मकानोंके छप्पर सटे दिखाई पड़े। एकदम विचार उत्पन्न हुआ कि क्यों न इन छप्परों पर कूदकर भाग जाऊँ? यह स्थिति तो सबसे गई गुजरी है। इस समय वह निकृष्टतम आदमियोंके आश्रयमें है। दुनियामें अच्छे आदमियों का क्या बिलकुल ही अभाव हो गया? मणिमें जीवनकी आशा दुर्जय थी, उसने कूदनेका विचार स्थगित रखा। भागनेका यह उपाय मनमें रखकर वह नीचे उतर आई।

सन्ध्या समय पुनः तुङ्गभद्राने आकर दरवाजा खटखटाया।

"मणि! क्या कुछ निर्णय पर पहुँची?"

"चन्दूलाल सेठ आ गये?" मणिने प्रश्न किया।

"सेठ वेठ कोई नहीं है। तू सीधेसे मानेगी कि मुझे अब जबरदस्ती करनी पड़ेगी?"

"क्या मुझपर अत्याचार करनेके लिए तुम ले आई थीं?"

"नहीं तो क्या तुझे बैठाकर खिलानेके लिए लाई थी? तेरी नसें जरा तन गई हैं, तू बाहर निकल तो उसे जरा ढीली करवा दूँ।"

"बाहर निकलूँगी तब न? मैं छतपरसे लोगोंको इकट्ठा करूँगी।"

"मैं पहले ही सबसे कह चुकी हूँ कि मेरे घरमें एक पगली लड़की है अगर वह चिल्लाये तो कोई ध्यान मत देना।"

"ऐसा! तब देखो तुम्हें भी बतलाऊँ?" "क्या?"

"जोर जुल्मसे तुम मुझे वशमें करना चाहती हो न? देखें, किसकी विजय होती है।"

"चुड़ैल! मुझे माथापच्ची करनेकी फुरसत नहीं है। नहीं मानती तो खड़ी रह! अभी बढ़ई बुलवाकर दरवाजा तोड़वा देती हूँ" कहकर तुङ्गभद्रा पैर पटकती हुई वहाँसे चली गई।

मणिने तत्क्षण निश्चय कर लिया। उसने धोतीका कछाड़ा मारा और छतपर चढ़ गई। आसन्न विपद्से भूख और दुःख उसका सब कुछ काफूर हो गया। स्वातन्त्र्य ही मुक्तिका साधन उसे ज्ञात होने लगा। छतके छज्जे परसे पड़ोसके छप्पर पर छलांग मारकर वह कूद पड़ी।

कुछ देर बाद तुङ्गभद्रा बढ़ई लेकर आई और दरवाजा तोड़ डालनेके लिए कहा। बड़ी कठिनाईसे दरवाजा टूटा किन्तु पिंजरे में से पंछी उड़ गया था और पिंजरा खाली पड़ा था।

३

एक ग्रैजुएट

मुचकुन्द एक ग्रैजुएट था।

हिन्दू ग्रैजुएट अर्थात् एक अनुपम व्यक्ति। उसकी स्थिति सृष्टिमें सबसे न्यारी, अद्‌भुत होती है। न तो उसे किसीको

परवाह रहती है और न किसीके सहायताकी आवश्यकता। दुनिया उसकी ओर तिरस्कारसे देखती है और वह अपने मनोराज्यमें विशाल विश्वको तिरस्कारकी दृष्टिसे देखता है।

ग्रैजुएट एक प्रकार हीन से हीन व्यक्ति है। हमारे आदर्शहीन शिक्षाके पूजक—कहते हैं कि हिन्दू ग्रैजुएटमें मिठास नहीं है, नवीनता नहीं है, स्वदेश-सेवक कहते हैं कि उनमें सत्याग्रह नहीं है, सुधारक कहते हैं कि उनमें साहस नहीं है, प्राचीन विचारके पंडित कहते हैं कि वह बिगड़ गया है, राजदरबारी कहते हैं कि वह राजद्रोहका चिन्तवन किया करता है, ऑफिसके कार्यकर्ता कहते हैं कि वह गलेमें बँधा हुआ एक पत्थरके समान है, और भी कितने ही उसे देशकी वर्तमान दुर्दशाका कारण मानते होंगे।

इतना सब कुछ होते हुए भी वह अपना काम करता चलता है। गरीब माँ बापके पेटसे उत्पन्न होकर अतिशय मँहगी शिक्षा ग्रहण करनेका प्रयत्न करता है, पेटमें पट्टी बाँधकर, दुखते हुए माथाको दबाकर अरुचिकर विद्या-लाभ करता है, अपनी भावनाओंमें और मनके मनोराज्यमें भ्रमण किया करता है, खूनको पानी करके केवल नाम मात्रके मूल्यकी उपाधि प्राप्त करता है और असन्तोषजनक वेतन पर कार्य प्राप्त करनेके लिए विकल होकर इधर उधर मारा मारा फिरता है। दरिद्रतासे पीसा जाने पर भी अपनी भावनाओंको उच्च बनाये रखता है, स्वयं दुःखी रहकर आधा पेट भोजन करके कुटुम्बियोंको पढ़ाता है, चाहे कैसी भी अपढ़ स्त्री मिले, उसका निर्वाह करता है, चाहे जैसो सन्तान हो, सहनशीलता पूर्वक उसका उद्धार करनेका प्रयत्न करता है।

वह स्वार्थहीन होकर समाजका उद्धार चाहता है, भारतमाता की भक्तिमें तल्लीन रहता है। लोगोंके धिक्कारने पर हँसता है,

सरकार द्वारा दबाये जाने पर भी आशावान बना रहता है। वह अपनेको भारतके भविष्यका विधाता मानता है।

वह स्वयं प्राय: रोगी और अशक्त रहता है पर उसी बड़वानल में तिरोहित रहता है। जिस अनलने प्राचीन ऋषियों के हृदयमें रहकर हमारी अपूर्व संस्कृतिको जन्म दिया, जिस अनलने ब्राह्मणों की बुद्धिमें पैठकर हमारे इतिहास कालके दु:खमय दिनोंमें उस संस्कृतिका संरक्षण किया वही अनल ग्रैजुएट—स्नातकमें भी विद्यमान रहता है। वर्तमान कालके ग्रैजुएट प्राचीन ब्राह्मणोंके अवतार हैं—भविष्यके ऋषियोंके पुरोगामी हैं। हमारी संस्कृति और देशकी आशा हैं।

मुचकुन्द इसी श्रेणीका ग्रैजुएट था। काँदावाड़ीमें एक छोटा सा कमरा ही उसका भुवन था, एक तीन फुटका टेबुल और काठके तख्तेकी बनी हुई कुर्सी ही उसके अभ्यासका स्थान था। एक कोनेमें एक छोटासा ट्रंक पड़ा हुआ था। कमरेमें एक आला था जिस पर एक स्टोव और चा के सामान पड़े हुए थे। वही मुचकुन्दकी गृहस्थी थी।

टेबुल पर मिट्टीके तेलका एक छोटासा लैंप जल रहा था। मुचकुन्द नीचा सिर किये हुए पढ़ रहा था 'Culpable homicide is murder' कि इतने ही में छत पर एक धमाकाकी आवाज सुनाई दी। मुचकुन्दने सिर उठाकर ऊपर देखा। छत परसे एक स्त्री दौड़ती हुई आई। वह हाँफ रही थी। उसने धोती का कछाड़ा मार रखा था। मुचकुन्द कुर्सीसे उठ खड़ा हुआ, चिल्लाने जा ही रहा था पर रुक गया। आनेवाली स्त्री रूपवती थी। दौड़ने और हाँफनेसे उसका चेहरा आरक्त हो गया था, उसका मुख आकर्षक और परम रूपवान था। कछाड़ा मारनेसे आधी जाँघसे नीचेका भाग दिखाई दे रहा था। मुचकुन्दके मनमें

संस्कृत कवि जो उपमा दे गये थे वह सार्थक प्रतीत हुई। वह कुछ भी बोल नहीं सका।

"भाई! भाई! चिल्लाना मत, मैं एक दुःखकी मारी हुई अबला हूँ।

"आप इधर आईं कहाँ से?"

"मैं भागकर आई हूँ, मुझे पापिष्टोंने कैद कर रखा था" मणिने आस पासमें बैठनेकी जगह देखते हुए कहा—ठहर जाइये सब बताती हूँ।"

मुचकुन्दने तुरत ही एक शतरंजी लाकर बिछा दी। कछाड़े की ओर ध्यान जाते ही लज्जासे मणि नीचे देखने लगी और कछाड़ा खोल शतरंजी पर बैठ गई।

"आपके घरमें क्या और कोई नहीं है?"

"नहीं मेरा घर इतना ही है" कहकर मुचकुन्द मुस्कुराया।

"चलो, यह भी अच्छा ही है।"

"क्यों?"

"नहीं तो कोई निकाल बाहर करता। भाई! मुझे यहाँ रात भर पड़ी रहने दो। मैं निराधार हूँ, न तो कोई मेरा संगी है और न सम्बन्धी; कहीं जानेके लिए स्थान भी नहीं।

"तब आप आईं कहाँ से?"

मणिको कँपकँपी छूटी। "एक वेश्या की कैद से।"

"ऐसा?" मुचकुन्दकी समझमें कुछ कुछ बात आने लगी "वहाँसे आप भाग आई हैं? शाबाश! फिर?"

"फिर क्या? संसारमें मेरा कोई है नहीं। कल सबेरे कहीं जानेका प्रबन्ध करूँगी।"

"आपका स्थान कहाँ है?"

"भाई! मैं देशमें थी वहाँसे यह वेश्या मुझे ले आई।"

"तब आपके भाई, बाप, पति कोई नहीं है ?"

"भाई ! पति दस वर्षकी छोड़कर मर गया, बापने पुत्रीको जीवित भाड़में झोंक दिया, आखिर दुःखसे थककर भाग आई।

"आप बाल विधवा हैं ?" "हाँ !"

"अररर, हमलोगोंकी क्या परिस्थिति है। शुभ नाम।"

"मैं ब्राह्मण हूँ; मेरा नाम मणि है।"

"पर आपकी खोज खबर लेनेवाला क्या कोई है ही नहीं ? आज तक इस प्रकार किसी स्त्रीको कष्ट उठाकर मारी मारी फिरते हुए नहीं सुना।"

"लेकिन आज तो देख रहे हैं। आप घबड़ाएँ नहीं; मेरे कारण आपको किसी प्रकारका कष्ट न होगा।"

"इसकी मुझे चिन्ता नहीं है। जो कुछ आप कह रही हैं यदि वह सत्य है तो रातमें यहाँ आप रह सकती हैं।"

"भाई ! झूठ बोलनेसे क्या मतलब है ? नहीं तो इस प्रकार भटकनेसे क्या लाभ ?"

मुचकुन्दका मन भर आया। एक निराश्रय स्त्रीको आश्रय देनेसे बढ़कर पुण्यका काम और क्या हो सकता है ?"

"आपने कुछ भोजन किया है या भूखी हैं ?"

"कल सबेरेकी खाये हुए हूँ।"

"अच्छा ! लो यह थोड़ा खा लो" कहकर एक तबेलीमें से कुछ मीठा निकालकर उसने दिया "यह थोड़ा दूध है। कहो तो चा बना दूँ।

"नहीं, मैं बना लूँगी, आप निश्चिन्त होकर पढ़ें।"

मुचकुन्द इतना घबड़ाया हुआ था कि वह कुछ कह नहीं सका। किन्तु मणि ठोकर खा खाकर साहसी बन गई थी।

खाकर मणिने चा तैयार की और मुचकुन्दके आगे एक प्यालामें रख दिया।

"अच्छा! मणि बहन! मैं भोजनालयमें भोजन करके आता हूँ, आपके लिए भी कुछ लेता आऊँगा।"

मुचकुन्द चला गया। मणि थक गई थी जिससे बैठकर सुस्ताने लगी।

मुचकुन्द अपने साथ कुछ भोजन लेता आया जिसे मणिने खाकर अपनी क्षुधा निवारण की। पीछे मुचकुन्द पढ़नेके लिए बैठ गया किन्तु मन नहीं लगा इससे पुस्तकमें आँखें गड़ाये हुए सोनेका क्या प्रबन्ध होगा इस पर विचार करने लगा। अब तक पर-स्त्रीसे बातचीत करनेका प्रसंग तक कभी नहीं आया फिर यह तो एक ही कमरेमें सोनेका मसला था। उसने बहुत विचार किया पर व्यर्थ। बिछानेके लिए उसके पास एक चारपाई, एक चटाई, एक शतरंजी और एक कंबल था। समयके साथ उलझन भी बढ़ती गई।

सोनेका समय होने पर मणिके मनमें भी यही विचार उदय हुआ। सामान्यतः वह स्वभावकी दृढ़ और बेशरम हो गई थी, पर मुचकुन्दका निर्मल मुख, उसकी बुद्धि प्रदर्शक उज्वल आँखें और निर्दोष बातचीत देखकर उसमें भी कुछ निर्मलता आ गई थी। उसे भी ऐसा ज्ञात हुआ मानों वह अपने घरमें है और मुचकुन्द उसका भाई है। वह भी लजाने लगी। कुछ निर्णय न कर सकनेके कारण बार बार मुचकुन्दकी ओर देखने लगी। मुचकुन्द भी थोड़ी थोड़ी देर पर मणिकी ओर देखता था। अब मुझे क्या करना चाहिये? मामला बड़ा टेढ़ा होता जारहा था। मुचकुन्दने बाहर जाकर किसी होटल या मित्रके यहाँ सोनेका विचार किया। दोनों एक दूसरेकी दृष्टिसे मानों

भावकी कल्पना कर रहे हों इस प्रकार कनखीसे एक दूसरेकी तरफ देख रहे थे। एकाएक दोनोंकी आँखें एक बार मिलीं, दोनोंने बिछौने की ओर देखा और एकदम खिलखिलाकर हँस पड़े। मणि अपना दुःख भूल गई,—उसका मधुर आकर्षक हास्य कमरे में गूँज उठा।

"क्या करियेगा ?" मणिने पूछा।

"मैं भी यही सोच रहा था, मैं अपने किसी मित्र के यहाँ जाकर सो रहूँगा।"

"नहीं, यह कैसे हो सकता है ?"

"क्यों इसमें हर्ज ही क्या है ?"

"एक तो समय अधिक हो गया है, दूसरे मैं आपको कष्ट देने नहीं आई हूँ, मैं ऊपर जाकर अकेली सो रहूँगी।"

"जी नहीं, मैं सोऊँगा, मुझे क्या कोई मार डालेगा ? आप भला इस प्रकार अकेली सो सकियेगा ?"

बहुत देर तक बक-झकके पश्चात् निर्णय हुआ कि मुचकुन्द बाहर बरामदेमें चटाई पर सो रहेगा और शतरंगी एवं कम्बल पर मणि भीतर कमरेमें सोयेगी।

मुचकुन्द को इच्छा होने पर भी नींद नहीं आई। यह संयोग ऐसा विचित्र आ बना था कि इससे नींद न आवे तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं। ऐसे प्रसंग साहित्यमें कहाँ आये हैं और उनका क्या रास्ता साहित्यकारोंने निकाला है इसे वह सोचने लगा। उसकी विचार-शृंखला सुबह तक जारी रही।

४

स्त्री सम्मानके सूत्र

मणि रात भर गहरी नींदमें सोई। ऐसी नींद उसे बहुत दिनों बाद आज आई थी। उसके उठनेके पहले ही मुचकुन्द नहा धो चुका था और बैठकर 'पीनलकोड' का अभ्यास कर रहा था।

"ओ हो! आप इतने सवेरे उठ गये! मुझे तो रात कहाँ गई, इसकी खबर ही नहीं रही।"

"क्यों?"

"कितने दिनों बाद आज मुझे इस प्रकार सोना नसीब हुआ है, अच्छा निपटकर चा तैयार कर लाऊँ।"

"चा मै पी चुका हूँ और तुम्हारे लिए ढाँक दिया है। मुझे ट्यूशन पर जाना है?

मुचकुन्द दो घंटे लड़कोंको पढ़ाता, सात घंटे ऑफिसमें गधा पचीसी करता, एक घंटा लॉ-कालेजमें पढ़ने जाता और पाँच घंटा घर पर पढ़ता था। इससे कमाता था रुपया पैंतालीस। पैंतालीसमें से बीस रुपये घर भेजता और पचीस रुपये से बंबई में अपना एकांत जीवन व्यतीत करता था।

मणि यह सुनकर शर्मा गई। ऐसा व्यक्ति उसने आजही देखा था जिसने अनाश्रित को आश्रय दिया, साथ ही उसकी सेवा भी की।

"भाई!" मुचकुन्द चलने लगा तब मणि ने कहा "जानेके

समय कुञ्जी कहाँ रख दूँ ?"

"कहाँ जाओगी ?" मुचकुन्दने घूमकर पूछा।

"क्यों, तब क्या यहीं रहने आई हूँ ?" मणि ने उतरे हुए चेहरे से पूछा।

"पर कहाँ जाने का निश्चय किया ?"

"जहाँ भी भाग्य ले जाय, विश्व विशाल है ?"

"ऐसे भाग्यके भरोसे कहाँ जाओगी ?"

"मुचकुन्द भाई !" मणि की आँखोंमें कृतज्ञता से जल भर आया "एक रात मैं कौन हूँ, यह पूछे बिना आपने आश्रय दिया इसके लिये मैं आपकी ऋणी हूँ। किन्तु भला मैं यहाँ रह कैसे सकती हूँ ?"

"पर जाओगी कहाँ ?"

"कल मैं कहाँ से आई, यह क्या आपने पूछा था ? मैं स्वयं अपना रास्ता ढूँढ़ लूँगी।"

"मुचकुन्द ने सिर हिलाते हुए कहा—यह नहीं हो सकता। हाँ, यदि तुम्हारा कोई सम्बन्धी हो तो प्रसन्नतासे जा सकती हो; ऐसे जाने की इतनी जल्दी ही क्या है ?

"भाई ! आप तो देवलोक के निवासी से लगते हैं। आप नहीं जानते कि मैं कौन हूँ।"

"प्रत्येक स्त्री को मैं देवी समझता हूँ। केवल पुरुष ही उनकी अधमताके कारण होते हैं। यदि पुरुष सन्मार्ग पर चलें तो स्त्री कभी देवी-पद को छोड़ नहीं सकता।"

अनुभवी मणि खिलखिलाकर हँस पड़ी। "भाई आपको अभी अनुभव नहीं है, दुनिया ने इस मंत्र को स्वीकार नहीं किया है और न कभी स्वीकार करेगा। पुरुषोंके लिए तो स्त्री

अवकाश के समय की आमोद की वस्तु है; किन्तु इन बातों को जाने दीजिये, इनसे कोई लाभ नहीं है।"

"तुम तर्क भी करना जानती हो।" मुचकुन्द बोल उठा।

"बात मत उड़ाइये, आपको समझ लेना चाहिये कि जहाँ जहाँ मैं जाती हूँ मेरा दुर्भाग्य मेरे पहुँचनेके पहले ही वहाँ पहुँच जाता है और आश्रयदाता को कष्ट भोगना पड़ता है।"

"मैं समझता हूँ।"

"कुछ समय घर में मुझे रख लेने पर आपको विश्वास हो जायगा। पागल कुत्ते के सदृश घर से लोग मुझे ठोकर मार कर भगाते रहते हैं।"

"कोई परवाह नहीं। लोग मूर्ख हैं, "यत्र नार्यस्तु पूज्यंते, रमन्ते तत्र देवता।"

"ये तो किताबी मूर्खतापूर्ण कहावते हैं। जरा सोचिये तो !"

"क्या ?"

"आप मुझे ठहरने के लिए तो कहते हैं; किन्तु पछतायेंगे।"

"मणि बहन ! इस प्रकार बात बढ़ाने से क्या कोई लाभ है ? रात में तुम जब सो रही थीं उस समय मैं जाग रहा था—विचार कर रहा था। मैंने बहुत विचार किया, अन्त में एक ही निश्चय पर पहुँचा कि जब तक तुम्हें कोई स्थान सुख-पूर्वक रहने के लिए न मिल जाय तब तक यह घर तुम्हारा है।"

"भाई ! आप भी मुझे सहोदर भाई के समान मालूम पड़ते हो। पर मुझे विश्वास है कि यदि मैं यहाँ दो दिन भी रही कि आपके सिर पर विपद का पहाड़ टूट पड़ेगा। लोगों की जीभ में ताला बन्द नहीं किया जा सकता। आपको पापी दुनिया का अनुभव नहीं है ?

"तो तुम इसी उम्र में बड़ी अनुभवी हो गई हो ?" कहकर मुचकुन्द हँसा।

"अनुभव तो हजारों हैं। आपके क्या कोई भाई बन्धु, माँ-बाप नहीं हैं ?"

"हैं! सब देशमें हैं। अररर! इस बातचीतमें पढ़ानेका समय निकल गया।"

"तब व्यर्थ क्यों हठ कर रहे हैं ?"

"तुम तो जानती ही होगी कि पहले लोग निराश्रय नारियों का दुःख दलन करनेके लिए दूर देश जाया करते थे। तब यह तो घर बैठे गंगा आ गई हैं।"

"भाई! यह तो सब आख्यानमें लिखा हुआ होगा।

"क्यों ?"

"अब तो वीरत्व केवल स्त्रियोंको दुःख देनेमें दिखाई देता है।"

"मालूम होता है तुम पर बहुत बीती है।"

"हाँ भाई! किन्तु आपकी स्त्री कहाँ है ?"

"अभी केवल सम्बन्ध निश्चित हुआ है, विवाह नहीं।"

"तब मेरे यहाँ रहनेसे आप पर कैसे कैसे आक्षेप होंगे क्या इसका भी ज्ञान है ?"

मुचकुन्दके अभ्यास-क्रममें कहीं भी ऐसी घटना नहीं आई थी, उसकी कल्पना-शक्ति शुद्ध और सात्त्विक थी, वह भला क्या समझे ? वह तो सरल मार्गका विद्यार्थी था।

"जो भी हो, आक्षेप होंगे तो अनुभव प्राप्त होगा, इतना ही कि और कुछ ?"

"अरे मेरे भाई! आप सतयुगी हो।"

मुचकुन्द हँसकर बोला—चलो तुम स्वयं भोजन बनाओगी

अथवा भोजनालयसे मैं ले आऊँ ? अभी आफिस जानेका समय हो जायगा।"

"तब मैं क्या यहीं रहूँ ? हे भगवान्! तूने क्या सोच रखा है ?"

"भगवान इस समय दूसरे काममें लगे हुए हैं, अतः हम अपना निर्धारित कार्य करेंगे।"

"अच्छी बात है, भोजन बनानेका क्या प्रबन्ध है ?"

"मेरा बहनोई आया था तब वह अपने हाथ ही भोजन बनाता था, उस समयकी थोड़ीसी सामग्री बची हुई रखी है।"

"बहुत ठीक! कहकर मणिने अपने आँसू पोंछे। दुनियामें पहलेसे ही यदि ऐसे व्यक्तिसे उसकी भेंट हो गई होती तो उसकी दशा आज कुछ दूसरी ही होती।

———

५.

अध्यापिका

मुचकुन्द ऑफिस गया तब उसका कलेजा बाँसों उछल रहा था। एक निराश्रय अबलाको आश्रय देनेसे भला किसका हृदय हर्षसे परिपूर्ण न हो जायगा फिर यह तो एक अकेला, गरीब, स्वालम्बी विद्यार्थीका हृदय था। उसके भाई बन्धु सभी दूर रहते थे। आज कितने ही वर्षोंसे कुटुम्ब-सुख उसे सुलभ नहीं था, उच्चवर्गकी या बुद्धिमान स्त्रीसे सम्भाषण करनेका कभी मौका उसे मिला नहीं था इन अपरिचित वस्तुओंके प्राप्त हो जाने पर

उसके हृदयमें कैसी कैसी तरंगे उठ रही थीं। उसके जीवनमें नया रस, उसकी बुद्धिमें नया प्रकाश व्याप्त हो रहा था।

अपने संसारके गठनके कारण अथवा अपने स्वभावमें होने वाले परिवर्तनके कारण अट्ठारह-बीस वर्षमें पुरुषके हृदयमें वात्सल्यके अंकुर फूटते हैं और जब कोई स्त्री, पुत्र अथवा निराधार स्त्री या पुरुष उसका आश्रय लेता है तब उसे चैन पड़ती है, उसके बाहुमें बल आता है और उसमें स्वावलम्बनकी शक्ति प्रस्फुटित होती है। जीवनवृत्तमें बल आता है—किन्तु उसी समय जब लता उसका आश्रय लेनेके लिए आगे बढ़ती है।

यह उभड़ता हुआ वात्सल्य हमारे जीवनकी न्यूनता नहीं है बल्कि उसका सर्व प्रथम छिपा हुआ रहस्य है। आर्य सच्चे आर्यपुत्र तभी कहे जाते हैं जब रस बरसानेवाली गृहिणी स्नेह भारसे नमकर उन्हें उस नामसे सम्बोधन करती है। मुचकुन्दका जीवन अब तक शुष्क था। एक निराश्रय अबलाने उसका आश्रय लिया जिससे उसकी शुष्कता पर अमी-वृष्टि हुई। माता पिताको उसने छोटी अवस्थामें ही छोड़ दिया था, बहन-भाईका सुख उसे मिला नहीं था। बम्बईके घोर वीरान जीवनमें वह अकेला मूकवत समय व्यतीत कर रहा था। उस जंगलमें आज उसे मणि मिली। जीवन रस-मय लगा, ऑफिसमें सेठका काम शीघ्र ही खेल ही खेलमें समाप्त हो गया सा मालूम हुआ, सन्ध्या समय कानूनके दर्जेमें दूसरे शिक्षार्थियोंके समान वह भी ध्यान-विहीन होकर स्वप्नराज्यमें परिभ्रमण करता रहा, वहाँसे लौटते समय ट्राममें बैठकर वह घर आया जिसमें पहले शायद ही कभी बैठा हो।

वह घर पहुँचा, उसकी आत्मामें शान्ति थी। उसकी इधर उधर पड़ी हुई पुस्तकें टेबुल पर अपरिचित सौन्दर्यसे सजाकर रखी हुई थीं, उसके इधर उधर बिखरे हुए कपड़े खूँटी पर टँगे

हुए थे, कमरेमें सभी वस्तुओं पर सौन्दर्य देवीकी दृष्टि स्पष्ट दिखाई देरही थी। सुख और शान्तिकी लहरमें मुचकुन्द बहने लगा। यह अपरिचित व्यवस्था मोहक लगी। बन्द हवामें रहने वाला खुली हवाको जिस आदरसे स्वीकार करता है वैसे ही इस व्यवस्थाको मुचकुन्दने स्वीकार कर लिया।

"मणि बहन!" मुचकुन्दने इधर उधर देखकर पुकारा।

थोड़ी देरमें ऊपरसे जवाब मिला। मुचकुन्द वहीं गया।

"क्यों भाई!" कृत्रिम हँसीसे स्वागत करते हुए अपनी आँखों के आँसूको सुखानेका प्रयत्न करते हुए मणिने कहा—"आ गये?"

मुचकुन्द दो एक पल गम्भीरताके साथ देखता रहा। उसने आँसू सुखानेके मणिके प्रयत्नको देख लिया था, उसने पूछा—क्यों बहन! यह क्या? यहाँ क्या अच्छा नहीं लगा?

"मुचकुन्द भाई! मैं क्या करूँ? मेरे भाग्यमें सदैव रोना ही बदा है। इसके सिवा और है क्या? अभी आप जानते नहीं जिससे ऐसा प्रश्न कर रहे हैं।"

"पर इस प्रकार रोनेसे लाभ क्या है?"

"भाई! पहले मैं रोती नहीं थी। दुनिया मुझे दुःख देती थी और मैं उसका दृढ़ता-पूर्वक सामना करती थी, उस समय मेरे आँसू सन्तापसे सूख गये थे। आपके आश्रयने, आश्वासन और सात्विक भावने तथा आपकी सहृदयताने उसे फिर हरा भरा कर दिया है जिससे वे पुनः बहने लगे हैं।"

"तब तो अपराध मेरा ही है!" जरा हँसते हुए मुचकुन्दने कहा। उसका हृदय खिन्न हो उठा।

"भाई! ऐसा क्यों कह रहे हो? क्या आपके व्यवहारसे रो रही हूँ? एकान्तमें इस प्रकार रोनेका अवसर भी न जाने

कितने वर्षोंके बाद आज मिला है। चलूँ, भोजनकी तैयारी करूँ
"जल्दी क्या है" मुचकुन्दने कहा "जरा चित्त शान्त होने दो, पीछे हो जायगा।"

"भाई! मेरे मनमें एक बात बहुत खटकती है।"

"क्या?"

"मैं आपके यहाँ इस प्रकार कब तक पड़ी रहूँगी?"

"जब तक कोई दूसरा अच्छा ठौर-ठिकाना न मिले, तबतक। बहन! व्यर्थ ऐसी बातोंसे मुझे क्यों दुःखी करती हो? तुम्हारे समान एक रमणी इधर उधर भटके और उसे कोई रहनेका स्थान भी न दे?"

"आपको खबर है मैं कौन हूँ?"

"मैं सवेरे ही कह चुका हूँ कि मेरे विचारसे तो सभी स्त्रियाँ देवांगना हैं।"

"भाई! भाई! ये बातें जाने दो। मैं अधम हूँ, पापिनी हूँ। यदि मैं यहाँ रहूँगी तो आपको कष्ट उठाना पड़ेगा।"

"मैं यह सब सुनना नहीं चाहता।"

"किन्तु मैं तो कहना चाहती हूँ।"

"जैसी तुम्हारी मरजी" कहकर मुचकुन्द बैठ गया। मणि उसे बड़ी ही व्याकुल दिखाई दी, साथ ही उसे यह भी मालूम पड़ा कि वह अपनी पीड़ामें किसीको साझीदार बनाना चाहती है

"आपको खबर है कि मैं संसारमें अधम—निकृष्टसे भी निकृष्ट—बाल-विधवा हूँ" यह सुनकर मुचकुन्द चौंक उठा

"भाई! आपने नरकके सम्बन्धमें सुना होगा—लेकिन मैं तो उसका प्रत्यक्ष अनुभव करती रहती हूँ। दस वर्षकी अवस्थामें मैं विधवा हुई—मुझे साधुनी बनानेका प्रयत्न प्रारम्भ हुआ। कहाँ मैं अनाथ बाला—और कहाँ मुझपर किया जानेवाला

अत्याचार ! भाई ! मेरा हृदय फट गया—मेरा शरीर गल गया किन्तु जीनेकी, सुख प्राप्त करनेकी साध नहीं मिटी।

"इसीसे बहुतसे लोग विधवा-विवाहके पक्षपाती हैं।

"इन विधवा-विवाहके पक्षपातियोंकी बात जाने दो। ऐसा ही एक अधम आया और उसने मुझे स्वर्ग-तुल्य भोग-विलासका स्वप्न दिखाकर फँसा लिया पर वह नरकसे छुटकारा दिलानेका ढोंग करनेवाला एक पापाचारी निकला उसने मेरे साथ विवाह करनेका वचन दिया। उसके दिये हुए प्रलोभनमें फँसकर भाई ! मैं अपना सर्वस्व गँवा बैठी।" मणिकी छाती उछलने लगी, उसकी आँखसे सावन भादोंकी झरी लग गई।

"बहन ! बीती हुई बात स्मरण करके बेकार क्यों रोती हो ?"

"भाई ! इतने वर्षोंके बाद आपने आश्रय दिया—तो क्या मैं कैसी हूँ यह भी बतानेसे रही। कल यदि आपने आदरसे ठहरनेका स्थान न दिया होता तो हृदय पत्थरके समान कठिन करके संसारमें विचरण करती। किन्तु आपकी भलाई, सज्जनता देखकर मेरी कठिनता जाती रही। भाई ! मैं दयाकी पात्र नहीं हूँ। मैं समाजकी अपराधिनी—कुलाङ्गार—कुलटा हूँ।"

अवाक् होकर मुचकुन्द उसकी ओर देख रहा था। उसे संसारका अनुभव इतना कम था कि वह कुछ बोल ही नहीं सकता था।

मणि आगे बढ़ी—"मुझे दिन चढ़ गया। जिस चाण्डालने ठगकर मेरा धर्म भ्रष्ट किया वह अब पास फटकता भी न था। धर्मका ढोंग करनेवाले बहुतसे मेरे पास आये। गर्भ गिरा देनेकी बहुत योजनायें की गईं। किसीने कुआँ दिखाया, किसीने विष और किसीने गर्भपात करनेका उपदेश दिया। अविचलता पूर्वक सबका सामना मैं करती रही" कहकर मणिने आँसू पोंछा।

"फिर ?" आतुरतासे मुचकुन्दने पूछा।

मैंने सबका सामना किया अपने गर्भस्थ बालकके लिए! घर-द्वार छोड़कर चली गई। मेरी सुरेखा आई और उसे दूसरेको सौंपकर दर-दर मारी मारी फिर रही हूँ।"

"हे भगवन्! यह हमारे समाजकी खूबी है। सुधार करनेके लिए कहा जाता है लेकिन कोई सुनता नहीं" रानाडे और तेलंगके भाषणोंसे परिपुष्ट मस्तिष्क वाला मुचकुन्द बोल उठा।

"समाजका सुधार! सिंहनीके समान गरजकर मणिने कहा। उसकी आँखें अजीब प्रकारसे चमकने लगीं" "भाई! मैं भटकती हुई आपके धर्म-धूर्तोंके पास—आपके संसार-सुधारकोंके पास गई। सबसे विनती की, सबका हृदय टटोला। आपके संसारको बुराई दूर करनेका ढोंग रचने वालोंने मुझे और भी भटकाया। प्राचीन और अर्वाचीन दोनों पंथोंके समाज-वैद्योंसे मिली—दोनोंकी औषधि लेनेकी अपेक्षा रोगसे मर जाना मुझे अधिक अच्छा मालूम हुआ।"

"कह क्या रही हो ?"

"बिलकुल सच! सभी मेरी असहायावस्थासे अनुचित लाभ उठानेके लिए ललचाये। मात्र अपनी टेकको मैंने नहीं छोड़ा, उसे अपने जीवसे भी अधिक चिपटाकर रखा, और यदि यह अधम वेश्या न होती तो न मालूम मेरी क्या दुर्दशा होती!"

"फिर ?"

"फिर मैं उसके साथ भागी, उसके यहाँ कुछ समय तक रही, किन्तु मेरा रूप शत्रु हो गया। उसने मुझे बेच देनेका विचार किया। मैं दृढ़ रहा। एक बार इस प्रलोभनमें फँस चुकी थी।"

"वहाँसे भागकर कहाँ गई ?"

"यहीं आई। भाई! यही मेरी जीवन-कथा है। मैं अच्छे

घरमें पैर रखने योग्य भी नहीं हूँ। इसलिए यदि मेरा कहना मानो तो कहीं मेरा प्रबन्ध कर दो। मुझमें इतना वैराग्य नहीं है कि भक्ति कर सकूँ और न भले घरमें रहने लायक सदाचार ही है।"

"तब कहाँ जाओगी ?"

"जहाँ भी हो सका। मुझे कुछ संगीतका ज्ञान है—कहीं नौकरी कर लूँगी।'

"बहन ! तुम्हें कोई भाई था ?"

"नहीं।"

"समझ लो था—सहोदर भ्राता—जिसके साथ लड़कपनमें तुमने खेला कूदा। तुम्हारी इस हीन दशा पर तरस खाकर यदि तुम्हें बुलाकर वह अपने यहाँ आदरके साथ रखना चाहे तो क्या तुम उस भाईकी इच्छाको अनादरसे ठुकरा दोगी ?"

"भाई ! संसारमें मेरे लिए स्नेह और सम्बन्धकी सृष्टि ही नहीं हुई है।"

"कौन कहता है ? मान लो कि यह भाई अपनी बालसखा बहनको स्नेहसे पूजता हो, उसके लिए रोता-बिलखता हो, और वह भाई तुमसे कहे कि बहन यह घर तुम्हारा है, एक जननीकी आँखके हम दो बालक हैं, एक उदरसे जिस प्रकार हम एक साथ निकले हैं वैसे ही एक साथ जीवन व्यतात करेंगे तो उसका तुम क्या उत्तर दोगी ?"

"मैं कहूँगी कि भाई ! तुम्हारी पवित्र आत्माको कलुषित कलंकित करनेकी अपेक्षा मुझे मृत्यु अधिक प्यारी है। मुचकुन्द भाई ! आपका वाक्-चातुर्य मैं समझती हूँ किन्तु आशा-रूपी रोटीसे मेरी तृप्ति नहीं होगी।"

"भाईकी रोटी क्या ऐसी हो सकती है ?"

"भाई ! भाई ! क्यों उपकारके बोझसे दबा रहे हो ? मैं आपके दयालुताकी आभारी हूँ, उसे मैं अच्छी तरह जानती हूँ। किन्तु यदि आप मेरे लिए आजीविकोपार्जनका कोई साधन ढूँढ निकालनेका वचन दें तभी तो मैं रह सकती हूँ अन्यथा भार-स्वरूप होकर रहना मैं नहीं चाहती।"

"अच्छी बात है ! यदि तुम्हारा ऐसा ही हठ है तो यही सही, पर अभी तो यहाँ ठहरो" खिन्नतासे कहकर मुचकुन्द उठ गया। तुरत मणिको कुछ ख्याल आया जिससे वह उनके पास आई।

"भाई ! एक बात कहती हूँ, मैं बड़ी ही विचित्र हूँ, मेरा स्वभाव स्वच्छन्द है, जो मनमें आता है बक जाती हूँ। यदि आपको कुछ कष्ट पहुँचा हो तो क्षमा कीजियेगा।"

"यह बात ही अब जाने दो। तुम यहाँ रहो। कोई काम ढूँढनेका प्रयत्न करूँगा लेकिन तब तक मैं भाई और तू मेरी बहन !"

"तब तक ? अच्छा" मणिने जवाब दिया और उसकी आँखोंसे झर-झर आँसू गिरने लगे।

× × × ×

मुचकुन्द और मणि सगे भाई-बहनके समान रहने लगे। मुचकुन्द अधिक उत्साहसे पढ़ने लगा। उसका स्वामी म्युनिसि-पैलिटीका सदस्य था। उससे मुचकुन्दने मणिको किसी कन्या पाठशालामें एक अध्यापिकाका स्थान दिला देनेकी प्रार्थनाकी — मणिके सद्भाग्यसे उसे सफलता प्राप्त हो गई और उस सेठकी कृपासे मणिको जगह मिल गई।

मणि तीस रुपये मासिक पर अध्यापिका हो गई और एक मास इसी प्रकार बीत गया।

६

बे बादल का वज्र

एक महीनेमें मुचकुन्द और मणि एक दूसरेके स्वभावसे पूर्ण परिचित हो गये, एक दूसरेके रहन-सहनको अच्छी तरह समझ गये। इतना अनुभव प्राप्त, ऐसा सरल पर विद्वान, ऐसा बुद्धिशाली पर निर्दोष व्यक्ति मणिको आज तक नहीं मिला था। कभी वह उसकी प्रभावशाली बुद्धिसे परास्त हो जाती कभी उसकी भलमनसाहत पर हँसती, सदैव उसे प्रसन्न रखनेका प्रयत्न करती और प्रायः बहुतसे कामोंमें उसे प्रोत्साहित करती थी। मुचकुन्दको भी भिन्न-भिन्न प्रकारके अनुभव होने लगे। घरका उसे एक अनुपम अनुभव हुआ। स्वच्छ टंगे हुए कपड़े, सजाकर रखी हुई पुस्तकें और रसमय भोजन-सामग्रीसे उसका छोटासा कमरा स्वर्गके समान शान्तिमय वातावरणसे व्याप्त मालूम पड़ने लगा। उसका आज तक किसी स्त्रीसे सम्पर्क नहीं हुआ था, अब प्रति दिन एक युवती मुस्कुराहटसे उसका अभिवादन करती। मणिकी तत्परता, बुद्धिमत्ता, उसकी ओजस्विनी भाषा, आदि उसे दिग्मूढ़ बना देती। वह प्रति दिन हँसता हुआ अपने काम पर जाता था।

स्त्रीके हास्यरूपी मदसे ऐसा कौन नरपुंगव है जो मदान्ध न हो जाय? माता, बहन, स्त्री या पुत्रीके स्नेहसे किसका पाषाण-हृदय नहीं पिघल जाता? कौन इस प्रकारका शुद्ध प्यार पाकर अपनेको श्रेष्ठ न समझे? जब यह प्यार पारस-मणिमें परिवर्तित

हो जाता है तभी नरपुंगव गरीब गाय जैसा बन जाता है। नीचा सिर कर ठंढा-गरम जो कुछ मिले, खाकर तृप्त हो जाता है।

पर मणिके सिर पर मँड़राने वाला शैतान उसे छोड़ने वाला न था। भला वह मणिको इस प्रकार सुख-पूर्वक जीवन व्यतीत करते हुए कैसे देख सकता था? मुचकुन्द अकेला था वह सहसा दुकेला कैसे हो गया, यह बात उसके पड़ोसियोंकी समझमें नहीं आई। मणिका सौन्दर्य्य इतना दीप्त था कि जो कोई भी उसे देखता वह उसकी ओर आकृष्ट हुए बिना नहीं रहता था और उस व्यक्तिकी उसके सम्बन्धमें पूछताछ करनेकी प्रबल इच्छा होती थी। इस कारणसे उसके पड़ोसी मुचकुन्दका पूरा नाम ठिकाना न जानते हुए भी उसके जीवनमें दिलचस्पी लेने लगे और उसके सम्बन्धमें अनेक प्रकारकी किंवदन्तियाँ उड़ाने लगे।

संसारकी दयालुताका लम्बा अनुभव होनेसे मुचकुन्दने यह नहीं समझा कि इस प्रकारका निर्दोषपूर्ण जीवन व्यतीत करना भी घोर पाप है। उसे इस प्रकारके जीवनमें किसी प्रकारका कलंक अथवा दोष दिखाई नहीं देता था।

एक दिन रविवारको वह बरामदेमें खड़ा था, उससे थोड़ी ही दूर पर मणि भी खड़ी थी। दोनों इस प्रकार खड़े हुए सड़ककी एवं आसपासके मकानोंकी शोभा देख रहे थे।

नीचे मुचकुन्दके दो जानपहचानी जा रहे थे। एकने सिर ऊपर उठाकर देखा और अपने साथीको सम्बोधन करते हुए कहा—गमनलाल! यह तो अपना मुचकुन्द पंड्या ही है न?

"हाँ!" धीरजलालने ऊपर देखते हुए जवाब दिया "अपना साथी। भाई! यह तो बड़ा गुरुघंटाल है। इसके साथमें कौन खड़ी है? ऐसी रूपवती स्त्री यह कहाँसे ले आया?"

"स्त्री कैसी! अभी इसका विवाह कहाँ हुआ है? गत 'वैकेशन' (अवकाश काल) में इसका पिता मिला था वह तो अभी विवाह करनेकी चर्चा कर रहे थे और इतनेमें वह इतनी बड़ी भी हो गई।"

"तब यह किसे उड़ा लाया है?"

"कौन जाने, है यह छिपा रुस्तम! मुझे मालूम पड़ता है कि भाईसाहब एक भाड़ेकी स्त्री लाकर गृहस्थी जमाना चाहते हैं।"

"ऐसा! तब तो इस बातका पता लगाना चाहिये" धीरजलालने भी अपनी कल्पना शक्ति दौड़ाते हुए उसमें इतना और जोड़ दिया "मैंने भी सुना था किन्तु भला मुचकुन्दके सम्बन्धमें ऐसा कौन विश्वास करेगा? मुझसे तो कोई यह भी कह रहा था कि इसके दो एक लड़के भी हैं।"

"धुत्तेरेकी! तब तो अवश्य ही सब भेदका पता लगाना चाहिये। चलो एक काम किया जाय, अभी ऊपर चलें। मैं बन जाता हूँ बीमार और तुम मुझे ले चलो ऊपर।"

"पर यदि तुम बीमार थे तो इस प्रकार घूमने कैसे निकल पड़े?"

"अजी कह देना कि एकाएक पेटमें पीड़ा प्रारम्भ हो गई, कोई देखने जाता है! चलो" कहकर गमनलाल आगे बढ़कर ऊपर चढ़ने लगा।

"पंड्या! पंड्या! ओ पंड्याजी!" धीरजलालने जोरसे पुकारा।

"क्या है?" दरवाजा खोलते हुए मुचकुन्द बोला।

"अरे यह गमन मर रहा है।"

"एं! क्या हो गया?" मुचकुन्दने घबड़ाहटके साथ पूछा।

"अरे, अ—ओ ओ—" गमनलालने ढोंग रचते हुए कहा "यह पीड़ा, प्राण निकले जाते हैं। यह अभी हो गई है। अरे, जरा लेटने दो, ओ—क्षमा करना—तुम्हें—ओ—ओ—ओ—" कहकर वह जमीन पर ही लेट गया। मुचकुन्द और भी घबड़ाकर बोला—धीरजलाल डाक्टरको बुलावें?

"ऊँ हुँ हुँ—" गमनने रोका। उसने चारो ओर नजर दौड़ाई लेकिन कोई दिखाई नहीं दिया, क्योंकि मणि बरामदेमेंसे भीतर नहीं आई थी "यह तो मुझे प्रायः हो जाया करती है; अभी जाती रहेगी। मित्र! बगलसे जरा चा ले आ न, उससे मिट जायगा—ओ—ओ—

धीरजलाल ताड़ गया, चारो तरफ देख बोला—अरे लाओ न वह स्टोव।

"अरे हाँ जी" मुचकुन्दने कहा "लाओ हम सभी चा पीएँ" कहकर बरामदेमें जाकर मणिसे उसने पूछा कि दूध है या नहीं। 'हाँ' कहकर वह स्टोव जलाने गई।

जमीन परसे पुनः आवाज आई "ओ—धीरजलाल—ओह"

मुचकुन्द बिचारा सेवा-शुश्रूषामें लग गया।

"मिसेज पंड्याको कष्ट दे रहा हूँ। क्षमा करना" धीरजलालने वाक्-बाण छोड़ते हुए कहा।

मुचकुन्द यह सुनकर तिलमिलाकर पीला हो गया किन्तु मित्र बिचारे क्या जानें।

"यह तो मेरी बहन है!" उसने उत्तर दिया।

"अरे! भाई माफ करना, भूल हो गई। बेकार मैं उन्हें कष्ट दे रहा हूँ।"

"इसमें कष्टकी कौनसी बात है?"

"गमनकी पीड़ा थोड़ा थोड़ा अब कम हो रही है।" धीरजने कहा।

"हाँ! अब जरा कम है, पर इसका कुछ कहा नहीं जा सकता। ओ......ओह......अरे!" चा लानेके लिए मुचकुन्द गया। गमनने आँख मारी।

"हुआ!" धीरेसे धीरजने कहा।

"तेरा सिर!"

"क्यों?"

"इसे इतनी बड़ी बहन है कहाँ?"

"ओह! समझ गया।"

इसी समय मुचकुन्द आ गया जिससे इनकी बात अधूरी ही रह गई। सबने मिलकर चा पी।

"प्राण शंकर पंड्या कैसे हैं?"

"अच्छी तरह हैं, अभी पत्र आया था।"

"सब कुशलपूर्वक तो हैं?"

"हाँ! अब तुम्हारा दर्द कैसा है?"

"अब जरा ठीक है। धीरज! चलो अब चला जाय। नीचे एक गाड़ी कर लेंगे।"

"नहीं, नहीं। अभी थोड़ा और ठहर जाओ न?"

"नहीं, अब जाऊँगा।"

दोनों मित्र बाहर निकले। दिखानेके लिए नीचे गाड़ी कर ली गई। गाड़ीके रवाना होते ही गमन खिलखिलाकर हँस पड़ा।

"मित्र! अब मजा देखना। चोर चालाक होकर कैसी लम्बी चौड़ी बातें बना रहा था!" कहकर उसने गाड़ी रुकवाई और चार आने देकर गाड़ीवानको बिदा किया। पास ही एक डाकघरमें वे दोनों गये। गमनलालने एक कार्ड लेकर और

उसपर कुछ लिखकर उसे धीरजलालको दिखाया।

दोनों पेट पकड़कर हँसते हँसते लोट-पोट हो गये, पत्र लेटरबक्समें छोड़ दिया गया।

× × × ×

इस परिहासके कारण रूप निर्दोष दो व्यक्ति—मणि और मुचकुन्द—अज्ञानतावश जीवनको आनन्दपूर्ण समझने लगे। व्योममें वे बादलका वज्र गरजा था। उसमेंसे तूफान निकलना ही बाकी था।

—·—

७

प्राणशंकर पंड्या

पाणु ' पंड्या चौतरा पर बैठे हुए संहिताका पाठ कर रहे थे।

गाँव वाले उन्हें पाणु ' पंड्या कहकर पुकारते थे किन्तु उनका असली नाम प्राणशंकर पंड्या था। इनका काम पुरोहिताईका था और इसीके परिणाम स्वरूप सकुटुम्ब सुख पूर्वक रहनेका प्रबन्ध यजमान राजाओंकी कृपासे उन्हें हो गया था। इनका सच्चा दावा सरदारीका था, यह अपने जातिके चौधरी सरदार थे। कभी अपने गाँवके यह पटेल भी रह चुके हैं। थोड़ी बहुत विद्वत्तासे और यजमानोंकी कृपासे अपने घरमें भी प्रभुत्व करनेका उन्हें अधिकार प्राप्त हो गया था। वे अभिमानी थे, उनके चौड़े रोबीले चेहरे, बड़े कन्धे, भूदेव सदृश गर्व आदि अनेक तत्वोंसे उनकी लोगों पर इतनी धाक जमी हुई थी कि उनका अभिमान सकारण मालूम पड़ता था।

इनके गाँवमें अभी भी पाश्चात्य सुधारोंने प्रवेश नहीं किया था इससे जब पाणु पंड्या बीचके चौतरे पर बैठते थे तब किसीका साहस नहीं था कि उन्हें प्रणाम किये बिना उधरसे निकल जाय और किसी स्त्रीकी हिम्मत नहीं थी कि वह उस तरफसे गुजर जाय। गाँवके प्रत्येक व्यक्तिको यहाँ तक कि उनका पूर्व इतिहास तक जानते थे, उसे सन्मार्गसे चलनेके लिए विवश करते थे और अपनी सत्ता जमाते थे। प्रत्येक गाँवमें प्राय: ऐसे पड्या मिलते हैं।

पाश्चात्य विद्याके पारंगत इन्हें ब्राह्मणोंकी स्वार्थपरताका एक नमूना रूप बताते हैं, सुधारक सब दोष इनके सिर मढ़ते हैं, हमारे उत्तेजित नवयुवक इनका जड़मूलसे नाश करनेकी योजनायें रचते हैं और स्वार्थान्धता, नीचा शयता, मदमस्ती आदि दुर्गुणोंसे युक्त ऐसे देशके कलंक रूप व्यक्तियोंसे, मानों वे लज्जित हों, इस प्रकार पाणु पंड्या जैसे लोगोंके सम्बन्धमें वे ये बातें किया करते हैं।

यह क्या सच है? ऐसे कलंकित व्यक्ति इस प्रकार अमरत्व प्राप्त कर देशमें भला क्यों जड़ जमाकर बैठे हुए हैं? वर्त्तमान कालमें पश्चिमकी कसौटी पर कसे जाने पर ये कैसे दिखाई पड़ेंगे? इस समय हम इस वर्गका मूल्य आँक नहीं सकते, यह हमारी मूर्खता है। दूसरे लोग जो कीमत आँक दें उसी कीमतको हम अंगीकार कर लेते हैं यही हमारी बुद्धिके सत्यानाशका प्रथम चरण है।

अज्ञानी, मूर्ख और दम्भी हैं, वर्त्तमान कालके पाणु पड्या ऐसा कहा जाता है कि अज्ञानी इस अर्थमें हैं कि उन्होंने कॉलेजों में शिक्षा ग्रहण नहीं की है पर हमारे आजकलके कॉलेजोंकी शिक्षा न तो राष्ट्रीय है और न सम्पूर्ण है। इसका विस्तार अभी

हमारे देश-समुद्रमें कुछ बिन्दु तक ही सीमित है। पंड्या यदि कॉलेजमें पढ़ें तो वे भी रानाडे, मदनमोहन, सुरेन्द्रनाथ बनकर निकलें और संसारको उज्जवल करें, लेकिन कॉलेजमें शिक्षा ग्रहण न कर भी उन्होंने क्या नहीं किया है ?

इन भू-देवोंने भूतकालमें आर्य संस्कृतिको बढ़ाया, संस्कृति, भाषा और रीति रिवाजको देशके कोने-कोनेमें; छोटेसे छोटे गाँवमें ले जाकर इतने बड़े भूमण्डलको राष्ट्रीय एकता दी, महाभारत और रामायणकी कथाएँ स्थान स्थान पर कहकर देशके आदर्शोंको महा-कष्टप्रद स्थितिमें भी सुरक्षित रखा, शास्त्र और संस्कारकी शिक्षा दी, अनीति, मदिरापान व्यभिचार आदि दुर्गुणोंसे रक्षा कर आज भी उनके आदर्शको उच्च रखा। और इस सेवाके लिए उन्हें मिला क्या ? एक मुट्ठी चावल, एक पैसा और एक सुपारी।

किस देशमें ऐसा शतक-परंपरासे चला आता हुआ भगीरथ, एकनिष्ठ प्रयत्न देखा जाता है ? किस प्रजामें इतने इतने विदेशीय आक्रमणोंके होने पर भी ऐसे उच्च मार्गका आत्मत्याग, ऐसी सेवा भावना देखी जाती है ?

पर उनका मूल्य लोग ऐसा तुच्छ समझते हैं, इसका विचार किये बिना पाणु पंड्या संहिताका पाठ कर रहे थे। युवावस्थामें काशी जाकर इसे पढ़ना सीखा था, आज साठ वर्षकी अवस्थामें भी वह उनकी सतत सहचरी रही है।

गौरीशंकर गोटली नामक गाँवका एक युवक जोशी, जो जरा शरीरका नाटा, मोटा और काला था इधरसे चला जा रहा था। पंड्याजीके पाठमें विघ्न पड़ गया।

"गोटली, जरा इधर आओ इधर ! पंड्याजीने चिल्लाकर पुकारा।

गौरीशंकर और पंडयाजी में जरा षड़ाष्टक योग पड़ा था। पंडयाजी वृद्ध-पक्षके नेता और प्रभुता प्राप्त करनेके आकांक्षी थे, जोशी युवकोंका नायक था।

"ओहो! पडयाजी! कैसे हैं? नमस्कार।"

"क्यों बेटा! तू बड़ा बुद्धिमान बन गया है क्या?" अपने प्रचड ढोंढ़ी परसे पसीना पोंछते हुए पंडयाजीने चिल्लाकर पूछा "उस रामशंकर तिवारीके लड़केको जाति में लेनेका प्रयत्न कर रहे हो? एं! मैंने तुझसे क्या कहा था?"

"पंडयाजी! कौन कहता है?"

"कौन? इस प्रकार मैं क्या धोखेमें आ जाऊँगा?" सिर झुमाते हुए पंडयाजीने कहा।

"इन विलायत जाकर भक्ष्य अभक्ष्य सब कुछ खा पीकर आनेवालोंको क्या हम जातिमें शामिल कर लेंगे?"

"पर कहता कौन है? पंडयाजी! जहाँ आपका पसीना गिरे वहाँ मैं अपना खून गिरानेके लिए तैयार हूँ। आपके पीछे मैं हूँ।" गोटलीने कहा।

"शास्त्र स्पष्ट कहता है कि विदेशगमनका प्रायश्चित है ही नहीं

"बिलकुल ठीक है महाराज! पर—"

"पर क्या? मैंने सुना है तू कहता था कि जाति तो गंगाजी का प्रवाह है।"

"बिलकुल ठीक तो है, पंडयाजी! जिस प्रकार दक्षिणा।"

"दक्षिणा! दक्षिणा क्या? यह नरदेह एक बार नष्ट हो जाने के पश्चात् भवोभव नरकका अधिकारी! भाई! मेरी मृत्युके पश्चात् जो कुछ तुम्हें करना हो करना! अपनी जातिकी पंचायत कब होने वाली है?"

"जातिके मुखिया तो आप हैं, बुलाओ न पंचायत।"

"हाँ! आज ही! पर सावधान! देख, तू लड़कपन मत करना" कहकर पंड्याजीने गोटलीको सावधान किया।

गोटली नमस्कार कर वहाँसे चला गया। उस ठिंगनेके मनमें पंड्याजीके प्रति द्वेष दिन प्रति दिन बढ़ता जाता था जिससे ऐन केन प्रकारेण उसका घमंड तोड़नेके मौकेको बराबर ढूँढ़ता रहता था।

पंड्याजीने पुनः पुस्तक पर दृष्टि डाली। इतनेमें लकड़ी ठोंकता हुआ डाकिया पहुँचा।

"पंड्योजी! रोम रोम!"

"कोई पत्र है क्या?"

"होवे महाराज! एक कारड है। देखूँ, भाई कहाँ से होय, मम्माईसे?"

"दो देखूँ" कहकर पंड्याजी पत्र लेकर पढ़ने लगे।

"क्यों भाई तुम्हारो होय न" डाकियाने पूछा, किन्तु पंड्याजीके तो आँखके सामने अन्धेरा छा गया था, उनका सिर चक्कर खा रहा था। उनका ओंठ पत्रसे भिड़ा हुआ था। डाकिया तो यह देखकर घबड़ाया और प्रश्नका उत्तर लिये बिना ही वहाँसे चलता बना।

पत्र नीचे लिखे अनुसार था:—

कृपानिधान राजश्री पंडितवर पंड्याजी!

आप समझते होंगे कि आपका पुत्र विद्याभ्यास कर रहा है किन्तु ये भाई साहब यहाँ सगाई करके मौज उड़ा रहे हैं। ऐसा सुननेमें आता है कि दो एक लड़का भी हो गया है इसलिए पुंनरकमें से तरनेके लिए आप सावधान हो जायँ।

भवदीय

रामजी सामजी भट्टाचार

कुछ देर तक तो पंडयाजीकी समझमें कुछ आया ही नहीं, पीछे समझ पड़ते ही उनके उग्र स्वभावकी उग्रता जाती रही। कुछ विचारके बाद धीरे धीरे पत्र फाड़कर फेंक दिया।

पंडयाजी शीघ्रातिशीघ्र घर पहुँचे और ज्येष्ठ पुत्र पर आया हुआ क्रोध अपने छोटे पुत्रों पर निकाला इतनेमें इनकी नवीन पत्नी बाहर निकल आई।

"क्यों, आज कुछ ज्यादा गुस्सा चढ़ गया है क्या? इन बिचारोंने आपका क्या बिगाड़ा है जो आप इन्हें पीट रहे हैं।"

"तेरा सिर फोड़नेके लिए, जा तू अपना काम कर!" अपनी पत्नीका मुँह गायके समान पकड़कर उसे शान्त करते हुए कहा।

"कौन पुराणीजी महाराज! नमस्कार!" कहकर एक लम्बा, छोटे छोटे बाल और लम्बी शिखा वाले, त्रिपुण्डसे विराजित कपालसे महाभक्त मालूम होने वाले ब्राह्मणने भीतर प्रवेश किया

"पंडयाजी! यह क्या? मेरे और आपके दोनोंके नाम पर पानी फेर दिया।"

"किसने? क्या बात है?" इसे कहाँसे मालूम हो गया, यह न समझ सकनेके कारण पंडयाजीने पूछा।

"आपके पुत्र और मेरे भावी जामाता। और कौन? कष्ट-नष्टेश्वरमें तो सबलोग बैठे बातें कर रहे हैं कि उसने एक मुसल-मानिनको रख लिया है और उसे दो लड़के भी हैं। आप तो विवाहकी बात करते हैं?"

"किसने कहा? कौन चाण्डाल—पापी—मेरी पीठ पीछे ऐसी ऐसी बेतुकी बातें गढ़ा करता है?"

"अरे, सच्ची बात है! अभी अभी बम्बईसे खबर आई है। भैया! मैंने क्या पहले ही नहीं कहा था कि पाश्चात्य विद्या मत सिखाओ। किन्तु आपको किसीकी परवाह है? लीजिये भोगिए"

"अरे पुराणीजी! यह तो 'सर्वे ग्रपाष्टके विनियोगः–' है। आप निश्चिन्त रहें। किसी चाण्डालकी धृष्टता है—"

"अरे धृष्टता क्या है पंड्याजी! वे सब अभी आपके पास आते हैं। लड़केने सीमोल्लंघन किया है। पंचायत करनेकी कुछ चर्चा चल रही है। यदि ऐसा हुआ तो यद्यपि हम सच्चे बाल-मित्र हैं फिर भी मैं अपनी पुत्री कुपात्रको नहीं दूँगा।"

"अरे क्या कहते हो पुराणीजी! ये सब नरपिशाच हैं नर-पिशाच! सबको मैं ठिकाने लगा दूँगा। देखता हूं कौन पंचायत करता है। जातका चौधरी तो मैं हूँ।"

"किन्तु इससे कहीं काम चलना है?"

"नहीं, पर मैं भी खोज करूँगा। मेरा पुत्र यदि 'अधमा-वस्थाम् आगत' तो उसकी चुटिया पकड़कर जात बाहर विसर्जयेत्।"

"कष्ट-नष्टेश्वरमें सब बैठे हुए हैं वे अभी सब ठीकठाक कर यहाँ आवेंगे। मैं भी नहीं समझता कि आपके पुत्रने ऐसा काम किया होगा।"

"अरे ऐसा क्या कभी सम्भव है? चीर डालूँ कुलाङ्गारको" कहकर पुराणीजोको विदा कर भीतर जाकर पत्नीसे बोले—देखो, जल्दी भोजन तैयार करो।

"क्यों, कौनसी जल्दी आ गई है?"

"पर्यटन करना है। तीसरे पहर रेलगाड़ी जाती है।"

"कहाँ जाओगे? इतनी जल्दी?"

"गुप्त रखना, बम्बई। यजमानराजका पत्र आया है, वहाँ शत्चण्डी प्रारम्भ हो गई है, मेरी खास जरूरत आ पड़ी है।"

पुरोहितानीको विस्मय हुआ, उसने पुराणीजी और पंड्याजी

की कुछ बातचीत सुन ली थी किन्तु पंडयाजीकी इच्छा विरुद्ध उनका विचार जान लेना बहुत बड़ा अपराध होनेसे वह चुपचाप यात्राकी तैयारी करने लगी।

८

पुत्रके यहाँ

पाणु पंडया चर्नी रोड स्टेशन पर, उतर बड़ी कठिनतासे कांदा-वाड़ी खोजते हुए मुचकुन्दके घर पर किसी प्रकार पहुँच ही गये। वह बम्बई पहले पहल आये थे जिससे इतने ऊँचे मकान लम्बी-चौड़ी सड़कें और इतना जनसमूह देखकर किसी दूसरे पर क्रोध निकालनेमें अशक्त होनेसे मुचकुन्द पर ही गालीकी बौछार करने लगे। अपने कपूत पर उन्हें झुंझलाहट थी ही और मानों बम्बई ऐसे नगरको खराब बनानेका उत्तरदायित्व भी उसी पर है यह ख्याल कर उनकी झुंझलाहट बढ़ती ही जा रही थी।

मरे ऐसा लड़का! ऐसे पुत्रकी अपेक्षा तो पुत्रहीन रहना कहीं अच्छा है।" कहकर पंडयाजी लोगोंसे मुहल्ला पूछने लगे। चार पाँच आदमियोंसे पूछने पर मुहल्ला मिला और छठेसे पूछने पर मुचकुन्दका मकान मिला। ऊपर चढ़कर वह इतनी जोरसे साँकल खटखटाने लगे कि सारा महाल गूँज उठा।

धीरेसे दरवाजा खुला। मणिका परम सुन्दर, तेजस्वी मुख दरवाजे पर दिखाई दिया। उसने पूछा—आप किसे चाहते हैं?

"किसे क्या? यह घर किसका है? मुचकुन्द पंडयाका या

किसी दूसरे का ?" हाँफते हुए रोषसे पंडथाजी ने पूछा।

"जी, उन्हींका है! पधारिये, मुचकुन्द भाई पढ़ने गये हैं।"

पाणु पंडथाने सोचा था कि मुचकुन्द-सम्बन्धी बात झूठी होगी, नहीं तो वह छिप कर रखता। लेकिन यह क्या? पाणु पंडथाने एक गहरी साँस ली। ऐसा लज्जाहीन, अपवित्र, चाण्डाल अधम पाषाणवत् पुत्र किस घोर पापके परिणामसे उसके वीर्यसे उत्पन्न हुआ। वह क्रोधसे, तिरस्कारसे आँखें फाड़ फाड़कर मणि की ओर देखने लगा।

"तू कौन है?" लाल पीले होते हुए पंडथाजीने पूछा।

"मणिको नहीं सूझ पड़ा कि क्या उत्तर दे, न वह यह समझ सकी कि यह वृद्ध है कौन। उसने बहुत बार मुचकुन्दसे सुना था कि उसके एक बहन है। अतः उसने कहा—मैं मुचकुन्द भाईकी बहन होती हूँ।"

इस विकराल स्वरूप वाले वृद्धको देखकर मणिको कुछ भावी विपद् की अग्र सूचना मिल गई। पाणु पंडथाके क्रोधका ठिकाना नहीं रहा। जोरसे झोली फेंककर वह जमीन पर बैठ गये।

"कैसी बहन? क्या मुचकुन्दकी माँके पेटसे जन्मी हुई? मैं कौन हूँ तुझे खबर है?" वृद्धने चीत्कार कर कहा।

"जी नहीं!" मुचकुन्दके किसी मित्र या सम्बन्धीका दिल न दुःखे, इसका ख्याल कर शान्तिपूर्वक मणिने कहा।

"मैं उसका बाप होता हूँ किन्तु तू इसकी बहन कैसे हुई यह तो बता?"

मणिने देखा कि यह भूल गहरी हो गई "क्षमा कीजिये! मैं मुचकुन्द भाईकी धर्म-भगिनी होती हूँ।"

"अरे धर्मकी या कर्मकी! तू यहाँ आई कबसे है?"

"डेढ़ महीना हो गया। आप कपड़ा उतारें, मैं चा तैयार कर लाती हूँ। आप थक गये होंगे।"

वृद्धका ध्यान सर्व प्रथम मणिके मोहक रूप और उसके कोकिल कंठ पर गया एवं उसका असर जादूसा वृद्धपर भी होने लगा।

"तू किस जातिकी है"

"ब्राह्मण। आप दाँतुन आदिसे निवृत्त हो चुके हैं?"

"नहीं, करना है।"

मणिने दाँतुन पानी लाकर दिया। वृद्ध मणिके अंग लालित्यको देखने लगा।

"तेरा पति क्या करता है?"

"मेरे कोई नहीं है" मणिने खेदयुक्त स्वरमें उत्तर दिया।

"किंवदसि ?" मणिने कुछ उत्तर नहीं दिया।

"तेरे बाप था या स्वयंभू है?" वृद्धने कटाक्ष करते हुए पूछा

मणि चुप रही।

"कहाँसे आकर तूने मेरे पुत्रको भ्रष्ट किया?"

"पंड्याजी! आपको किसीने व्यर्थ भ्रममें डाल दिया है।"

"हाँ रे हाँ, तेरा यह ढंग ही सब कुछ बता रहा है। इस कमबख्त लड़केको आने तो दो। तुझसे कोई झगड़ा-टंटा मुझे नहीं करना है। तू जहाँसे आई हो वहाँ चली जा।"

"मुझे कुछ इन्कार नहीं है। आपके पुत्रके अनेकानेक उपकारोंसे मैं लदी हुई हूँ, अतः उन्हें आने दीजिये मैं चलीजाऊँगी"

वृद्धने कुछ विचार किया "उसके आने तक क्यों? मैं उसका बाप हूँ, मैं कहता हूँ कि तू जा, गच्छ!"

"आप भले ही कहें। उपकार किया है आपके पुत्रने न कि आपने। उनके आते ही मैं चली जाऊँगी।"

"तू समझती है कि वह आयेगा और मेरा कहना नहीं मानेगा ?"

मणिने गौरवसे सिर ऊँचाकर कहा—"नहीं।" उसका भी क्रोध भड़क उठा।

"अर्थात् !"

"मैं तो उन्हें जानती हूँ, आपको नहीं।"

गाँव के पुरोहित और अपनी जाति के चौधरी, जिनकी मर्यादा पर आज तक किसी ने आक्षेप नहीं किया था और न आज्ञा का उल्लंघन किया था वह इस छोकरी की यह धृष्टता देखकर स्तब्ध हो गये।

"तू मुझे अभी पहचान जायगी। मेरी इज्जत पर पानी फेरने के लिए तू पैदा हुई है ?"

"नहीं।" मणि का नथुना गर्व से फूल उठा। दूसरे ही क्षण अपनी पिछली जीवन-कथा उसे याद हो आई। लज्जा से अपना सिर उसने नीचा कर लिया। अभी यह वृद्ध तो जानता न था। किसी भले मानस के यहाँ रहने का—उसके मकान में पैर रखने का—उसे अधिकार ही क्या ?

"तब किस लिए हठ करती थी ? मेरे पुत्र को किस लिए बिगाड़ती है ?"

"मैं कब नहीं करती हूँ ? मैं तो जैसी हूँ वैसी हूँ। मुचकुन्द भाई के आ जाने पर निर्णय हो जायगा। मैं उन्हें वचन दे चुकी हूँ।"

"क्या ?"

"कि उनकी आज्ञा बिना यहाँ से नहीं जाऊँगी।"

"बड़ी वचन की पालन करने वाली ! तू इस तरह नहीं मानेगी ?"

"नहीं ?"

"बहुत ठीक" कहकर पैर पर पैर रखकर पाणु पंड्या बैठ गये और झोले में से सरौता सुपारी निकालकर पान लगाने के लिए सुपारी कतरने लगे।

मणि को उस दिन का धक्का लगा हुआ था, उसे आने वाले तूफान की भयङ्कर गर्जना सुनाई देने लगी थी। इस समय गर्जन के साथ वर्षा भी प्रारम्भ हो गई और उसकी छोटी सी झोपड़ी उसी में टूट-फूटकर गिरने लगी।

जब उस पर दुःख के पहाड़ टूट रहे थे तब उसका हृदय वज्ररूप कठिन हो गया था, उसको लालसा मिट चली थी। गत मास ने इस भूतकाल पर पर्दा डाल दिया था और हृदय की कठिनता, वासना की निष्ठुरता अदृष्ट हो गई थी। प्राकृतिक कोमलता आने लगी थी कि पुनः आघात होने लगे। पहले जिस साहस से उसने दुःख सहन किया था उस साहस में मणि को अब संशय होने लगा।

उसने आज घटनेवाली घटना का ख्याल करके ही डरसे मुचकुन्द से पहले ही यहाँ रहने में अपनी अस्वीकृति प्रकट कर रही थी; उसका वह ख्याल—वह डर—आज सच निकला। उसका दुर्भाग्य अभी पीछा नहीं छोड़ रहा है, इसका उसे विश्वास हो गया। किस लिए वह मुचकुन्द के साथ रही ? किस लिए उसके निर्दोष, पवित्र, विद्वत्तापूर्ण जीवन को कलंकित किया ? इस समय भी भाग जाने का विचार उठा। किसी का जीवन नष्ट होना बचाने से वचन-पालन करना क्या अधिक महत्व रखता है ? वह भोजन बनाना छोड़कर उठ खड़ी हुई।

"पंड्या जी। मेरे ही कारण तो आपको तथा आपके पुत्र को ये सब दुर्वचन सहने पड़ रहे हैं; क्यों ?"

"नहीं तो किसके कारण से ?" पंड्याजी ने प्रश्न किया ।

"यदि आप ऐसा ही समझते हैं तो मुचकुन्द भाई से मेरा प्रणाम कहियेगा, मैं जाती हूँ ।" कह कर मणि जाने की तैयारी करने लगी ।

पाणु पंड्या इस स्त्री को हलकी निगाह से देखने लगे थे पर उसका यह अचानक निर्णय देख उन्हें जरा अचम्भा हुआ ।

"मुचकुन्द कब आयेगा ?"

"अब आते ही होंगे ।" कहकर मणि अपना छोटा ट्रंक तैयार करने लगी ।

पाणु पंड्या को जरा दया आ गई "सगे सम्बन्धी नहीं हैं तब कहाँ जायगी ?"

"यह प्रश्न मेरे सामने इस समय नहीं ?"

"अच्छा ! और कुछ कहना है ?" इतनी सरलता से विजय प्राप्त होते हुए देख आह्लादित होते हुए पंड्याजी ने पूछा ।

"कह दीजियेगा कि भेंट नहीं कर सको इसके लिए क्षमा करेंगे" मणि ने अपना छोटा ट्रंक उठाते हुए कहा ।

९

पिता और पुत्र

किससे भेंट नहीं किया ?" पूछते हुए मुचकुन्द भीतर घुसा और ट्रङ्क उठाकर जाने के लिए प्रस्तुत मणि और बैठे हुए अपने पिता को देखकर वह चौंक उठा । पाणु पंड्या का आह्लाद दुःख

में बदल गया, मणि अस्थिर चित्त से खड़ी रही। "ओह! पिता जी, आप यहाँ कहाँ से ?"

"कोई बिना काम भी आता है ?" चल बेटी! चलती बन।

"कहाँ चलती बने ? यह है क्या ?" मुचकुन्द ने पूछा।

"मैंने आपसे क्या कहा था ? मेरे कारण यदि आप पर कोई विपद् आयेगी तो मैं चली जाऊँगी, अब मैं जाती हूँ।" मणि ने कहा।

"किन्तु मेरे सिर पर कौन सी विपद् आ गई ?"

विपत्ति! पाणुं पंड्या ने गरज कर कहा "तुम्हारे ख्याल से तो यह सब खेल है क्यों ? तुझे खबर है कि लोग क्या क्या कह रहे हैं. कैसा धिक्कार रहे हैं—मेरे शुभ्र मुखपर कालिख पुतनेका समय आगया है, वृद्धावस्थाम् आगतोऽपि"

"किस बातसे ?"

"यह तेरे कार्य-कलापसे। इस स्त्रीको तूने घरमें क्यों रखा ? अपने गाँवमें तो जो जिसके मुँहमें आता है कह देता है" पाणुं पंड्याने कहा।

"उन लोगोंका दूसरा धन्धा ही क्या है ? जहाँ तहाँ दूसरेकी चुगली करना।"

'पंच तो परमेश्वर !"

"पर पंच कैसे—निठल्ले, आलसी, दुष्ट। ऐसे लोग जो जी में आवे कहें, इससे मुझे क्या ?"

"तब क्या ? लोक-विरुद्धम्। धिग्मूर्ख ! अपने बाप-दादाका नाम डुबाने बैठा है ?"

"पिताजी इस बकझकका तात्पर्य क्या है ? मेरा अपराध क्या है ? मेरा दोष क्या है ? एक आधारहीन अबलाको आश्रय दे दिया तो इसमें कौनसा घोर पाप कर डाला ? लोगोंकी जैसी

नीयत होती है वैसा ही तर्क करते हैं। शुद्धता यदि कोई न समझे तो शुद्धता पर प्राण कोई कैसे अर्पण कर सकेगा ?"

"अरे ओ शुद्धताकी पूँछ ! अपनी पुस्तकोंके लम्बे कीड़ोंको जरा अलग धर दे। यह बात नहीं चलेगी।"

"क्या नहीं चलेगी ?"

"इस स्त्रीको रखना। तू बड़ा संत हो तो भले ही लोकलाज.."

"लोकलाजकी मुझे परवाह नहीं है।"

"तुझे परवाह किसकी रखी है ? छोकड़ा ! नराधम ! जरा मुँह सँभालकर बोल। मेरे सामने इस प्रकार बोलता है ! कहाँ गया तेरा शिष्टाचार ? तू ब्राह्मण-पुत्र ! धिक्कार है तुझे !"

"पिताजी ! मैं ब्राह्मण-पुत्र हूँ इसीसे कहता हूँ। लोकलाजकी प्रणाली भले ही टूट जाय लेकिन मैं तो करूँगा अपने मनका।"

अपने मनका करेगा ! तू—तू—देखता हूँ कैसे करता है।"

पिता और पुत्र एक दूसरेकी ओर क्षणभर देखते रहे। दोनोंकी आँखोंका दृढ़ तेज प्राचीन योद्धाओंकी तलवारके समान भिड़ गया। एक दूसरेके पानीका अन्दाज लगानेके लिए दोनों खड़े हो गये। पाणुं पंड्याने पहली बार पुत्रका यह रूप देखा। सदैव मुचकुन्द उसे सीधा आज्ञापालक बुद्धिमान और भला लड़का लगता था आज उसे मालूम हुआ कि वह भी टक्कर ले सकता है। पुरानी कहावत वह हमेशा मुचकुन्दको सुनाया करता था 'रोटी खाना शक्करसे और दुनिया जीतना टक्करसे' आज अपने पुत्रमें यह कहावत पूर्णरूपेण चरितार्थ होती हुई दिखाई दी।

मुचकुन्द सदैव पिताके साथ नम्रताका व्यवहार करता था। वह लज्जालु था, गम्भीर था, इस समय भी झगड़नेकी आकांक्षा उसकी बिलकुल नहीं थी। शिक्षाने जिन संस्कारोंकी सृष्टि उसमें

की थी उन पर आज कुठाराघात हो रहा था, जिससे जान अनजानमें वे संस्कार तर्क वितर्क करनेके लिए उसे बाध्य कर रहे थे।

पाणु पंडयाने क्रोधके प्रवाहको रोका, जरा साँस ली। उसने मणि पर नजर डाली। वह किसी कामसे भीतर चली गई थी। वृद्धने धीरेसे पूछा—तेरा क्या जाता है जो बेकार झगड़ा मोल ले रहा है? निकाल दे न अभी। जान पहिचान वालोंको जरा शान्त तो हो जाने दे।"

"किन्तु मैंने ऐसा कौनसा अपराध किया है जो जाति वालों को पंचायत करनेकी आवश्यकता आ पड़ी।"

"तूने इसे रक्खा इससे। लोग तो कहते हैं कि इसे दो चार लड़के भी हैं।" धीरेसे दाँत पीसते हुए पंडयाजी ने कहा।

सच्चा निर्दोष मुचकुन्द बड़ी बड़ी आँखें निकालकर घूरने लगा। उसकी मुट्ठियाँ बँध गई।

"और भी कुछ ?"

"इतना क्या कम है ? बुद्धिमान हो तो इस लतको छोड़ दे"

"मैं आपसे एक बार तो कह चुका कि मूर्खों को प्रसन्न करने के लिए मैं कुछ करने वाला नहीं हूँ।"

"बेटा ! मेरा भी कहना नहीं मानेगा ?"

"और सब बातों में मानता हूं और मानूँगा भी, लेकिन इसमें नहीं।"

"पर यह जानेके लिए राजी है, जाने दे न ? कौन है, कौन नहीं। तू तो उच्चकुलोत्पन्न है।"

"मैं जानता हूँ, वह एक निराधार विधवा है।"

"ऐं !" कहकर पाणु पंडया उठ खड़े हुए।

"हाँ, अत्याचारसे सताई जाने पर घरसे निकलकर वह दर दर भटकती फिर रही थी, उसे मैंने अपने यहाँ रहनेका स्थान

दिया। यह क्या मैंने घोर पातक कर डाला ?" उसका पिता क्यों चौंककर खड़ा हो गया, इस पर लक्ष्य न कर अपना बचाव करते हुए मुचकुन्दने कहा।

"तू विधवा को घरमें रखे हुए है ? शान्तं पापम्, छोकड़ा ! पिशाच ! नराधम् !" वृद्ध क्रोधसे चिग्घाड़कर बोला "मेरे कुलका आर्यत्व तूने भ्रष्ट कर डाला। अब समझमें आया, तू सुधारक हो गया है ?"

"पिताजी ! जरा शान्त होइये। मिजाज बिगाड़नेसे क्या लाभ ?"

पंड्याजीकी चिग्घाड़ सुनकर मणि पुनः बाहर निकल आई थी।

"जा...जा ! अनार्य ! मेरी इकहत्तर पीढ़ीको तूने नरकमें डाल दिया। बोल, इसे घरसे निकालता है या नहीं ?"

हठ, क्रोध एवं आग्रहसे मुचकुन्द दाँत पीसने लगा। इस अनुचित क्रोधसे उसका हृदय धधकने लगा। उसके सरल स्वभावमें कठोरता आ गई।

"नहीं। आप शान्तिसे—"

"शान्ति ! अब शान्ति ! तू क्या करना चाहता है ? मैं समझ गया, तू विधवा-विवाह करना चाहता है।" वृद्धने जो कुछ समझा था, उसे स्पष्ट कह दिया।

मेरी दृष्टिमें जो उचित जँचेगा, करूँगा। आपके इस प्रकार कहनेसे नहीं मानूँगा।"

"तू नहीं मानेगा ? तो बेटा ! तेरे नाम पर पानी ! तेरे नाम पर स्नान करता हूँ। आजसे मैं तेरा पिता नहीं और तू पुत्र नहीं। धिक् यवन !" कहकर पंड्याजी झोला उठाकर जानेके लिए उद्यत हुए।

"पर पिताजी—!"

"चल हराम—! तेरे घरमें पलभर भी नहीं रहूँगा। पापिष्ठ!' कहकर पैर पटकते हुए लकड़ी लेकर पंड्याजी वहाँसे चलते बने। क्रोधमें, घबड़ाहटमें क्या करना चाहिये, यह न समझ पड़नेसे मुचकुन्द चित्र लिखासा खड़ा रहा। उसका पिता इस प्रकार क्रुद्ध हो जायगा इसका उसने स्वप्नमें भी अनुमान नहीं किया था।

मुचकुन्दके स्वभावमें दो बातोंकी प्रधानता थी। एक तो जो सत्य हो उसे करनेकी उत्कण्ठा और किसीको दुःख न पहुँचे, इसकी चिन्ता। वर्त्तमान शिक्षासे उत्पन्न कर्त्तव्य-दक्षता तथा हीन-बुद्धि-प्राबल्य इन दोनोंका ही उसमें आधिक्य था। जिससे कर्त्तव्य परायणताके भीष्म प्रसंगों पर विचार करने की आवश्यकता प्रतीत होती थी, किन्तु अनुभव प्राप्त करनेकी तत्परता न थी। आज ऐसे ही एक प्रसंगका अनुभव तो हुआ किन्तु उसके समाप्त होते ही वह काँप उठा। उसने क्या कर डाला, इसका परिणाम क्या होगा, यह अच्छा हुआ या बुरा। ये प्रश्न एक के बाद एक उसके मस्तिष्कको उद्वेलित करने लगे; उसमें उलझन पैदा करने लगे।

पन्द्रह मिनट तक विचारके जंजालमें बैठे रहनेके पश्चात् उसे ज्ञान हुआ। पिताको विस्मरण कर उसका ध्यान मणिकी तरफ गया। उसने विधवा-विवाहकी बात स्वीकारकी थी। जल्दी में अविचारसे ऐसा करनेकी इच्छा प्रदर्शित की थी। मणि जिसे वह बहनके समान समझता था, जिसे बहन के समान समझनेका वचन दिया था, वह इस उद्गारसे क्या कहेगी? उसके सामने अब वह सिर ऊँचा कर कैसे देख सकेगा? ये शब्द उसके मुँहसे निकल कैसे गये? उसकी व्याकुलता और भी बढ़ गई। बापको निकाल बाहर किया, घरमें रहने वालीको उसने फँसाया। अपने

हाथ पर रखे हुए सिरको वह ऊँचा नहीं उठा सका।

थोड़ी देरमें मणिने उसके कन्धे पर हाथ रखा। उसे ऐसा मालूम हुआ जैसे किसीने कोड़ा मारा हो। उसने चौंक कर ऊपर देखा।

मणि खड़ी थी, उसकी आँखें डबडबाई हुई थीं।

१०

भावना या भविष्य?

"भाई! उठो। क्या आज ऑफिस नहीं जाना है? भोजन ठंडा हो जायगा" मणिने कहा।

"भाड़में जाय ऑफिस और भोजन। अब होगा क्या?" मुचकुन्दने पूछा।

"मैंने आपसे पहले ही कहा था? मेरे पैरमें तो शनीचर है। जहाँ जाती हूँ वहीं ऐसा होता है। भाई! मेरी एक बात मानो?" मणिके आँखसे आँसू गिरने लगे।

"क्या?"

"आपके पिताजी ठीक कह रहे थे। मेरे कारण जीवन नष्ट करनेसे क्या लाभ—सगे सम्बन्धियोंको दुःख देनेसे क्या फायदा? मुझे अपने रास्ते जाने दीजिये। आपकी कृपासे दो रोटी कमाकर खा लेती हूँ। एक बार पहले भी मैंने आपसे कहा था और आज पुनः कहती हूँ। आपको संसारका अनुभव नहीं है।"

"क्या होगा करके ?" कुछ न सूझते हुए मुचकुन्दने कहा।

"पिताने छोड़ा—जातिवाले, सगे सम्बन्धी छोड़ेंगे। बाहर समाचार फैलजाने पर दूसरे व्यक्ति भी छोड़ देंगे, समस्त जीवन नष्ट हो जायगा। यह सब किसके लिए ? किसके लिए ?"

मुचकुन्द 'तुम्हारे लिए' कहने जारहा था लेकिन रुक गया, उसे अविचारमें मुँहसे निकली हुई विधवा-विवाहकी बात याद आ गई।

"बहन ! तुझे खबर है ? आज तककी शिक्षाके अभ्याससे चरित्रवान बननेका प्रयत्न किया। न्याय, नीति, स्वातन्त्र्य एवं साहसके आदर्शोंको पढ़ा और उनका अनुसरण करनेके लिए तरसता रहा। उनके अनुसरण करनेका यह तो मुझे आज पहला अवसर मिला है।"

"मुझे रखकर ?"

"हाँ, और दुनियाके सामने खड़े होकर। यदि मैं पीछे हट गया तो आदर्श ही कहाँ रह जायगा ? मेरा साहस कहाँ रहा ?"

"भाई पढ़ी लिखी नहीं हूँ पर इतना तो जानती हूँ कि संसार के साथ सब लोग युद्ध करते हैं—और अन्तमें हारना पड़ता है"

"कोई नहीं विजयी होता ? क्या बात करती हो ?"

"शायद ही कोई विजयी हुआ हो, मैंने तो देखा नहीं किन्तु जितना लड़ेंगे उतना ही पीछे पछताना पड़ेगा। आपने आज प्रत्यक्ष प्रमाण देख लिया न ? अभी भी समझकर यह हठ छोड़िये। इस प्रकार हम कब तक रह सकते हैं ? जाकर अपने पिताजी को समझाइये वे मान जायँगे।"

मणि ने अत्यन्त विनीत भाव व नम्रता से कहा; आज उसका हृदय, निर्दोष और उच्च भावना से ओत प्रोत मुचकुन्द को देखकर, भर आया। उसकी उच्च भावना देखकर वह

चकित हो गई; किन्तु स्वप्नवत् उच्च भावना रूपी प्रकाश पर एक फतिंगा के समान जल मरने के लिए प्रस्तुत मुचकुन्द को बचाने के लिए वह व्याकुल हो रही थी। आज तक किसी मनुष्य ने उसके लिए ऐसा स्नेह प्रदर्शित नहीं किया था, आज उसका विशुद्ध प्रेम इस व्यक्ति के लिए हो रहा था।

मणि द्वारा दी गई शिक्षा को मानों उसने स्वीकार कर लिया हो, इस प्रकार मुचकुन्द उठा। कुछ देर खड़ा रहा फिर अत्यंत निराशा से अपना सिर पीट कर वह बोला—अर्थात् अपने आदर्श···आदर्श···

"किसी का रहा है कि आपही का रहेगा?" मणिने कहा।

"तब उच्च चारित्र्य, दृढ़ साहस, निःस्वार्थ जीवन—यह स्वप्न है—झूठ है; और यह सत्य है कि मूर्खों को रिझावें, उनकी कही हुई बात का पालन करें, उसीके अनुसार आचरण करें और जिसे वे मनाकर दें उसे त्याग दें! पढ़ लिखकर यह अधःपतन! हा भगवन्!

"भाई! यह नयी बात नहीं है।"

"क्यों?"

"यही हम सब के जीवन की कहानी है। मुझे इसी का अनुभव हुआ है किन्तु वह हुआ पन्द्रह वर्ष में और आज आपको हो रहा है पचीस में, इससे आप भाग्यवान हैं!" मणि ने कंपित स्वर में अपने भूतकालिक जीवन को स्मरण कर कहा।

"मेरा साहस बस इतना ही है कि पहले आघात में सफा!" नीचा सिर कर मुचकुन्द ने इस प्रकार कहा मानो वह स्वयं अपने को ही सम्बोधन कर रहा हो।

मणि ने कोई उत्तर नहीं दिया।

"अच्छी बात है, मैं भी देख लूँगा।" दाँत पीस कर ऊपर देखते हुए मुचकुन्द ने कहा।

"क्या देखियेगा?"

"क्या होता है यह? मैं अपने आदर्श को नहीं छोड़ूँगा।"

"नहीं, नहीं। ऐसी भूल मत करियेगा, जीवन भर पछताकर रहना पड़ेगा।"

"जीवन की भावना यदि संचित रखी जा सके तो पछताना किस बात का!"

"भाई! भाई! अभी आपने पढ़ा है किन्तु गुना नहीं है। ऐसा मत करो, मैं करने नहीं दूँगी" प्रभुता सूचक स्वर में मणि ने कहा।

"क्यों? तू न करने देने वाली है कौन?"

"अच्छी बात है, मैं चली जाऊँगी; होली के नारियल के समान आपको भस्मीभूत होने देने के पूर्व मैं अपनी आहुति दूँगी।"

"पर इसमें तुम्हारा क्या जाता है?"

"मेरे ही कारण से तो यह सब हो रहा है। मैं स्वतन्त्र हूँ, मेरे लिए कोई भी बाधा नहीं है, मैं ही जाती हूँ।" कह कर मणि जाने के लिए उद्यत हुई।

"नहीं नहीं, यह क्या कर रही हो? तू ही जायगी?"

"तब क्या करूँ?" थोड़ी दूर पर पड़ी हुई ट्रङ्क को उठाने का प्रयत्न करते हुए मणि ने कहा। उसका जी भी दुःखी हो गया और इस दुःखद प्रसंग का शीघ्र अंत कर देने का उसने निश्चय कर लिया था।

"जा, जा, तू भी जा!" कहकर मुचकुन्द भी व्याकुल होकर पुनः कुर्सी पर धम से बैठ गया। ये शब्द कुछ ऐसे निराशापूर्ण

थे कि मणि पीछे लौट पड़ी किन्तु उससे कुछ बोला नहीं गया। 'पराये की आशा सदा निराशा' कहकर कमजोर मतवाले मुचकुन्द ने फिर अपना सिर पीट लिया। उसकी आँखें डबडबा आईं।

मणि उस निराशा की मूर्ति को देखती रही। उसके आक्रंद-शब्दों में छिपे उसके अनुताप को मणि समझ गई, 'पराये' शब्द से उसे भी धक्का लगा।

"तब मैं क्या करूँ ? आपके भविष्य का विचार करूँ या कटूक्ति का ?" मणि ने पूछा।

"भावना बिना भविष्य किस काम का ?"

"भाई ! मेरे रहने से भविष्य भी नष्ट होगा और भावना भी नष्ट होगी।"

"तुम्हारे जाने पर भावना किसके लिए ?" अनजान में मुचकुन्द की जबान से निकल गया "बहुत ठीक, मैं भूल गया कि एक मास पूर्व मैं तुम्हें जानता भी न था। तू मेरी सगी नहीं, संबन्धी नहीं। मैं भूल गया कि तुम्हारे जीवन में मेरा कोई स्थान नहीं है।"

मणि की आँखों से झर झर आँसू गिरने लगे। उसने ट्रङ्क रख दिया। वह पास आ गई। अनेकानेक दुःखों को लगातार झेलते रहने से उसका शरीर अभ्यस्त था किन्तु मुचकुन्द की व्याकुलता देखकर वह भी अधीर हो उठी।

"मुचकुन्द भाई ! परमेश्वर के लिए ऐसा न कहो। मैं जा रही हूँ आपके भले के लिए !"

"मेरी परवाह हो तो रहो अन्यथा चली जाओ, दुःख के दिनों में पराये को पास में नहीं रहना चाहिये।"

"परवाह है; किन्तु रहने से लाभ क्या है ?"

"भावना के लिए सब का त्याग कर सकूँगा पर उसी समय

जब तू रहेगी। अकेले कुछ नहीं हो सकता। मुझमें अकेले दुःख सहन करने की शक्ति नहीं है। तुम्हारे आने के पहले मैं अकेला था, जो कुछ मैं आज हूँ उतनी शक्ति उस समय मुझमें न थी। मेरा हृदय, मेरी बुद्धि आज विकसित है। तुम्हारे बिना मैं निर्बल निकम्मा और निराधार हो जाऊँगा।"

मणि और भी पास आ गई। इस आवेश से उसका हृदय भी जोश से भर रहा था, उसकी आँखें भी तेज से चमकने लगी थीं।

"मेरे लिये आपके हृदय में ये भावनायें उत्पन्न हो रही हैं?" अपनी मीठी आवाज में अनजान में मोहक रसिकता मिश्रित कर मणिने पूछा।

"मुझे पता नहीं" उलझन में पड़ा मुचकुन्द बोला—"किन्तु दुःख के समय अकेले जीवन वहन नहीं कर सकूँगा। दुःख पड़ेगा तो सहन करूँगा, आघात लगेगा तो बरदास्त कर लूँगा किन्तु उसी समय जब तुम यहाँ मेरे निकट रहोगी। मणि बहन! बुरा लगे तो क्षमा करना। यदि इस प्रकार न रह सको, यदि पिता जी जैसे लोगों के वचन चुभते हों, यदि तुम्हें कलंक का अंदेशा हो तो चलो हम दोनों विवाह करलें। पिताजी के मुँह पर तो मैंने हठ-वश कह दिया लेकिन तुमसे सचमुच कहता हूँ।"

दोनों हाथ टेबुल पर रख कर उसी के सहारे झुककर मणि खड़ी हो गई। उसका हृदय भर आया, रोने से हिचकियाँ बँध गईं। बहुत देर तक उसके मुँह से एक शब्द भी नहीं निकल सका। अनुमान हुआ कि अपनी इच्छा से नहीं बल्कि उसे कलंक से बचाने के लिए मुचकुन्द इस मार्ग का अवलंबन कर रहे हैं। इस निर्मल, निर्दोष, रीति से यह योजना सम्मुख रखने वाले

विरागी पुरुष की ओर वह श्रद्धा से देखने लगी। जरा स्वस्थ होने पर अश्रुपूर्ण आवाज से वह बोली—भाई! क्यों वासना को उत्तेजन देते हो? क्यों कलंकित करते हो? नहीं बोलती इस-लिए दोषी मत ठहराना। मेरा हृदय बिलकुल मर गया है। इस अभागिनी बाला के भाग्य से आपसे भेंट होगी, इसे किसने सोचा था? मैं भटकती भटकती थक गई। अंत में देवता-सदृश आप मिले उस समय जब मेरी समस्त भावनायें नष्ट हो चुकी थीं, कामनाएँ कुचल डाली गई थीं। आप विवाह करने के लिए कह रहे हैं? एक समय देव कहे जाने वाले पत्थरों से भी विनती कर कर मैं थक गई कि कोई मेरा पाणि-ग्रहण करो; कोई मुझ पतित से विवाह कर मुझे पावन करो। उनकी दासी होने के लिए तैयार थी लेकिन उन देवों ने स्वीकार नहीं किया। आज आप विवाह करने के लिए कह रहे हो? किन्तु कौन सा मुँह लेकर मैं स्वीकार करूँ? आप मेरे लिए ईश्वर समान हैं। आपके भाव आदर्श योगियों जैसे हैं, आपका आचरण देवों जैसा है। कहिये तो आपकी पाद पूजा करूँ; विवाह तो नहीं कर सकती।"

"क्यों?"

"नहीं नहीं। आपके निर्मल जीवन प्रवाहमें अपना कलंकका कीचड़ उछालकर नहीं डाल सकती।"

"कलंक?"

"भाई! कलंकका एक भी ऐसा रंग नहीं है जो मेरे अंगमें न लगा हो। मैं आपको कलंकित कर रही हूँ—आपके अधःपतन का कारण बन रही हूँ—" मणि रुक गई, उसकी छाती उछ-लने लगी।

मुचकुन्द मौन धारण कर उसकी ओर देखता रहा। कुछ देर

बाद बोला—मणि ! मणि ! यह बात जाने दो। तुम्हारे बिना मेरा जीवन-निर्वाह होना असम्भव है। तुझे खबर है कि तेरे आनेके पूर्व मै शुष्क विद्याभ्यासी था। तेरे प्रफुल्लित तेजस्वी व्यक्तित्वने मुझे मनुष्य बना दिया है। मेरे जीवनमें नये रसका संचार हो रहा है, काव्यमें, संसारमें, भावनाओंमें नया रंग दृष्टिगत होता है, मेरी बुद्धिमें, कल्पनामें अदृष्ट रत्न दिखाई देते हैं। तुझे कैसे जाने दूँ ? देखो यदि मेरे लिए तुम्हारे हृदयमें तनिक भी दया हो तो रहो। एक साथ ही दुनियाका—दुःखका—सामना करेंगे, नहीं तो साथ ही मर जायँगे।

कहकर मुचकुन्द याचकवृत्तिसे, दीन दृष्टिसे मणिकी ओर देखने लगा, मणिके हाथ पर हाथ रखकर उसने दबाया, वह दब गया।

"भाई ! यदि ऐसा है तो लो मैं हाजिर हूँ। जैसे हम अब तक रहते आये हैं वैसे ही रहेंगे।"

"तुमने मुझे बचा लिया, मैं बड़ा कृतज्ञ हूँ। मुझे और कुछ नहीं चाहिये।"

"अच्छा तो उठो अब, आजका भोजन तो पानी हो गया।"

११

पाण्डु पंड्याकी दौड़

बहुत सोच विचारके बाद धीरे धीरे मुचकुन्दके ऑफिस जानेके पश्चात् भी मणिकी विचार-धारा नहीं टूटी। अनेक

वर्षोंसे पाप पंकमें लिपटे हुए हृदयको निर्मल रस-तरंगमें स्नान करानेका आनन्द भला किसे अमूल्य मालूम न होगा। सीताकी अग्नि-परीक्षाके सदृश रस-तरंगका स्नान पुनर्जीवन देता है। पुरानी मैलको काटकर भूतकालके कलंकको दूर करता है। मणिने आज वही अग्नि-स्नान किया।

विधवा होनेके पश्चात्से उसने कुटुम्ब वात्सल्य देखा न था, हमारे संसारके अधम प्रकारका भी पति-प्रेम उसे प्राप्त न हुआ था। युवावस्थाके तूफान पर चढ़े हुए रससागरके कीचड़, मलयुक्त प्राणियोंकी अशान्त—अरसिक क्रीड़ाको उसने देखा था, उस स्वच्छ जलको मर्यादाका त्याग करते हुए, मर्यादाका त्याग करनेके पश्चात् प्रलयंकर नृत्य करते हुए उसने देखा था और अन्तमें प्रलयकी समाप्ति पर, उसी प्रलयसे उत्पन्न भयङ्कर परिणामको देखकर रुदन करते हुए अथवा उससे युद्ध करते हुए ही आज तक उसने जीवन व्यतीत किया था। अम्बा माताके लिए बलि चढ़ाये जाने वाले खसीकी पीड़ा वह जानती थी, पीड़ित बन्दीके त्रास और मुमुक्षताको वह जानती थी, चोरीसे लुकछिपकर घूमने वाले विषयीकी लिप्साका आत्मीय अनुभव था, अन्याय और अत्याचारके नीचे रौंदे जाने वाले निरपराधी बलवाइयोंका भयंकर रोष उसे स्वाभाविक हो गया था किन्तु निर्मल स्नेहकी आर्द्रता उसने निरखा नहीं था, विषय-वासनासे उत्पन्न मोह रहित सम्बन्ध उसने नहीं देखा था, उसके मीठे, मनोहर प्रसङ्ग, उसके दिव्य, कलंकहीन उत्साहका उसने अनुभव भी नहीं किया था। आज उन्हें उसने देखा, अनुभव किया। हृदयमें छिपे हुए गोलार्धकी वह शोधक बनी। जो हर्ष कोलम्बस को अमेरिकाकी शोध कर लेनेके पश्चात् हुआ उससे कहीं अधिक आज उसे हुआ।

वह बहुत देर तक मौन धारणकर एक ही स्थान पर बैठी रही। अपने शब्द व मुचकुन्दके शब्द उसके कानमें गूँजते रहे। मुचकुन्दके प्रत्येक शब्दकी झङ्कार, उसकी प्रत्येक चितवनने उसके स्मरण पटपर सुवर्णकी रेखा चित्रित कर दिया था। आज बैठी हुई वह इन चित्रोंमें अनेक प्रकारके रंग भर रही थी। शीतकाल, कड़कड़ाते हुए ठंढमें सूर्य-किरणें प्रकट होकर जैसी शान्तिदायी होती हैं वैसी ही शान्ति उसके धधकते हुए हृदयमें विराजने लगी। मुचकुन्द पहले केवल प्रकाश करनेवाला दीपक था आज अपने साहससे उसका जीवनदाता सूर्यनारायण हो गया।

सद्भाग्यसे मुचकुन्दके पवित्र उत्साहने उस पर भी अपना प्रभाव डाला। विषय-वासना, विवाहकी इच्छा, ये सब लालसायें जरा भी उसके मनमें नहीं आईं। उसके भूतकालिक सांसारिक अनुभव और वर्त्तमान मानसिक स्थितिके बीचमें अन्तर्पट पड़ गया। वह भी मुचकुन्दके समान अनुभवहीन सरलतासे दुनिया का विचार करने लगी।

सुनहली स्वप्न सृष्टिमें भ्रमण करते हुए समय बड़ी तेजीसे व्यतीत होने लगा। सन्ध्या हो गई। मुचकुन्द आज अभी तक नहीं आया, उसके आनेमें देर हुई, मणिका हृदय धड़कने लगा। उसने उस छोटेसे कमरेको सुघड़तासे सजाया। उसके दुःखी-हृदयको किसी प्रकारकी पीड़ा न पहुँचने पाये इसलिए प्रत्येक छोटीसे छोटी वस्तु पुस्तक आदि सबको यथास्थान सजाकर रखा। उसके कागज-पत्रोंको बार बार नये नये ढंगसे रखा। ज्यों ज्यों मुचकुन्दके आनेमें देर होने लगी त्यों त्यों उसकी घबड़ाहट बढ़ने लगी। मनमें यह भी ख्याल आया कि क्रुद्ध पंडयाजी फिर मनावेंगे और जीवनका मार्ग सरल हो जायगा।

सात बजा। वह बार बार बरामदामें जाकर देखने लगी।

अभी मुचकुन्दके आनेका समय न होने पर भी उसे चिन्ता होने लगी, और घड़ी बार बार देखती। साढ़े सात बजा किन्तु मुचकुन्द नहीं आये। उसकी काल्पनिक चिन्ता सत्य होने लगी। आठ बजा और वह काँपने लगी, शंकाओंके भूत सामने खड़े होने लगे और किसी प्रकार भी वे दूर न हो सके, क्षण प्रतिक्षण वह अधिकाधिक अधीर होती गई। आखिर सीढ़ी पर दो चार आदमियोंके चढ़नेकी आवाज सुनाई दी, उसके जी में जी आया। वह साँस बन्द कर एकाग्रतासे दरवाजेकी ओर देखती हुई खड़ी रही।

"आप यहाँ खड़े रहें, मैं दस मिनटमें आता हूँ।"

मुचकुन्दको किसीसे कहते हुए सुना। किन्तु उसकी आवाजमें इतना अन्तर क्यों? मणिका हृदय फटने लगा। यह भय दूसरे ही क्षण सच निकला। मुचकुन्दकी आकृति प्रभाहीन और आँखें निकली हुई थीं, उसका अंग प्रत्यंग काँप रहा था। वह आया और "मणि! मणि बहन!" कहकर कुर्सी पर बैठ गया।

"क्यों भाई? यह क्या?"

क्यों क्या? मुझे पुलिसने पकड़ लिया है।"

"ऐं!" मणिने घबड़ाकर कहा।

"हाँ! पिताजीकी कारगुजारी! मेरे मालिक दूरके मेरे रिश्तेदार लगते हैं। पिताजी उनके पास जा पहुँचे होंगे। तीसरे पहर सेठने बुलाकर मुझे डराया धमकाया, नौकरीसे छुड़ा देनेकी धमकी दी, पर मैंने इसकी कुछ भी परवाह न की।"

"पर कारण क्या है?"

"कारण क्या, यही कि तुम्हें छोड़कर जिस लड़कीके साथ पिताजीने मेरा विवाह निश्चित किया है उसके साथ विवाह कर अपना जीवन व्यतीत करूँ, मेरे इन्कार करने पर पहले वेतन-

वृद्धि कर देनेकी लालच दी और जब उस पर भी दाल न गली तो मुझे विनष्ट कर देनेकी धमकी दी।"

"आपने क्या कहा?" मणिके सब सुख-स्वप्न टूट गये और दुनियाकी क्रूरताका दृश्य पुनः उसकी आँखोंके सामने नाचने लगा, जिससे उसका जी व्याकुल हो उठा।

"मैं? तुमने समझ क्या रखा है? मैंने साफ कह दिया कि आप मेरे स्वामी हैं—मेरी तन-सेवाके मालिक हैं, मेरे मनके मालिक नहीं हैं। यह कहकर मैंने उनके प्रस्तावको अस्वीकार कर दिया।"

"भाई! यह आपने क्या किया?"

"ये सब क्या जानें? संसारमें केवल पैसा और अत्याचार की ही क्या प्रभुता रहेगी? सन्ध्या समय टेलीफोन कर अपने जान पहचानके एक पुलिस सुपरिटेण्डेण्टको सेठने बुलाया, उसी ने मुझे अपनी हिरासतमें ले लिया है।"

"हाय हाय! अब क्या होगा? आप ऐसा हठ क्यों कर रहे हैं?"

"हठ नहीं है! जो भाग्यमें बदा है, होगा। अब तो अपने सिद्धान्तों पर दृढ़ रहनेकी बात है। मुझे तुमसे मिलना था इससे बहाना निकाल कर चला आया।"

"क्या?"

"कि तुमसे सलाह करके जवाब दूँगा। इससे मुझे यहाँ आने दिया गया है।"

"मेरी तो राय है कि अब इस प्रकारके दुस्साहसका समय नहीं है। मुझे जाने दीजिये, मैंने भी निश्चय—" मणि आगे न बोल सकी।

"पर मेरा भी निश्चय क्या सुनोगी?" मुचकुन्दने पूछा।

"क्या ?"

"मेरा सब कुछ चला गया, मेरी आशा गई, पढ़ाई गई, सम्बन्धी छूटे" मुचकुन्दका गला बोलते बोलते भर गया। इस विनाशके विचार मात्रसे उसका हृदय उमड़ आया "पर मैं अपना निश्चय बताने आया हूँ कि मेरा कोई अपराध तो है नहीं जिससे दण्ड मिले। शीघ्र ही मैं लौटूँगा, और यदि दण्ड मिला भी तो वह बहुत थोड़ा—छः मास या एक वर्ष। इसके बाद लौटकर आऊँगा ही। घबड़ाना मत" मुचकुन्द एक साँसमें कह गया।

"नहीं भाई! नहीं......"

"नहीं कहनेकी जरूरत नहीं है। थानेमें बैठकर सब कुछ अच्छी तरह सोच विचार लिया है।"

"अरे! किन्तु कैद ...।"

"जो भी हो, मैं जाता हूँ। मैं इस अत्याचारके वशीभूत नहीं होऊँगा। अच्छा, जाता हूँ, हिम्मत रखना।" कहकर मुचकुन्द जाने लगा। उसकी आँखें डबडबा आई। मणि भी रोने लगी किन्तु दुःखके साथ उसकी गाढ़ी मैत्री थी जिससे अपने पुराने मित्रके आकर खड़े हो जाने पर उसे अधिक व्यग्रता नहीं होती थी, उसकी बुद्धि यथावत् कुशाग्र एवं सतेज रहती थी। उसने पूछा—आपके सेठका नाम तो चन्दूलाल है न ?'

"हाँ, क्यों ?"

"कहाँ रहते हैं ?"

"भुलेश्वरमें .. ...महालके पास" कहकर मुचकुन्द चला गया। जाते जाते दोनोंकी आँखोंने पुनः बिदाई ली।

"महालका नाम सुनकर मणि चौंक उठी। मणिकर्णिका द्वारा दिया हुआ उसकी बहनका पता याद आया। इस समय मणि घबड़ा

कर बिलकुल चेतनाहीन नहीं हो गई। उसने देखा कि मुचकुन्द बिलकुल सीधा सादा है। पुस्तकोंमें पढ़े हुए आदर्शोंके पीछे जीवनकी आहुति देनेके लिए प्रस्तुत है। इस कैदका भयङ्कर दुष्ट परिणाम का ज्ञान उसे नहीं है। ऐसे उदीयमान और चतुर युवकके जीवन को ऐसी मूर्खताकी वेदी पर बलि देनेसे भला क्या लाभ ? और किसके लिए ? मेरे समान अकिञ्चना, कुटुम्बरहिता, कुल कलङ्किनी समझी जाने वाली स्त्रीके लिए ? उसमें निश्चयात्मक बुद्धि अधिक मात्रामें थी। तुरत कपड़ा बदल कर और घरमें ताला बन्द कर वह भुलेश्वर चली।

मुचकुन्दसे सर्व प्रथम जब उसने चन्दूलाल सेठका नाम सुना था तब उसके मनमें संशय हुआ कि तुंगभद्राके मकान पर आने वाले सज्जन ये ही तो नहीं हैं। पर ऐसे न जाने कितने चन्दूलाल सेठ बम्बईमें होंगे ऐसा सोचकर पहले तो वह कुछ निश्चिन्त हो गई किन्तु जब उसने पता सुना तब उसे एक उपाय सूझा। मणिकर्णिकाकी बहन इसी ठिकाने पर रहनेवाले चन्दूलाल सेठकी पत्नी थी। यदि ऐसा हुआ तो किसी प्रकार चन्दूलाल सेठकी सेठानीजीको मना कर उसे बीचमें डालकर अपना मनोरथ सिद्ध करनेका उसने संकल्प किया। इसीसे उसे कुछ ढाढ़स हुआ।

१२

चन्दूलाल सेठके मकान पर

चन्दूलाल सेठका मकान ढूँढ़नेमें मणिको जरा विलम्ब हुआ पर आखिर मिला ही। वह उस मकानके अन्तिम मंजिल पर

रहते थे। धड़कते हुए हृदयको कठिनतासे शान्त कर उसने सेठानी को पूछा। एक दरवाजेमेंसे एक दुबली पतली, कम आयु होते हुए भी अधिक उम्रकी मालूम होती हुई स्त्रीने निकलकर पूछा—आप कौन हैं ? किसे चाहती हैं ? सेठजी अभी हैं नहीं।"

"मुझे आप ही से काम है, सेठजीसे नहीं। आप ही सेठानीजी हैं न ?"

इतने ही में एक पाँच छः वर्षका बालक इस स्त्रीका कपड़ा पकड़े हुए, मुँहमें एक हाथ रखे हुए उसके पीछे-पीछे रोता हुआ आकर खड़ा हो गया। मणिने उसे देखा। मणिकर्णिकाके मुखकी आकृतिसे इस लड़केका चेहरा कुछ मिलता जुलता था।

"जी हाँ, मैं ही हूँ। क्या काम है ?" जरा अमीरीके दम्भसे कर्कश बनी हुई आवाजमें सेठानीने पूछा।

"मैं आपके बहनकी परिचिता हूँ।

"श्रीमतीजी ! आप भूलती होंगी। मेरे बहन कहाँ है ?" जरा क्रोधसे सेठानीने कहा।

"यह आपका भाञ्जा ही है न ? मैं आपकी बहनका समाचार लाई हूँ।"

"मेरी बहन तो कभीकी मर चुकी है। आप बेकार क्यों इस प्रकार झूठ बोल रही हैं ?" आपको चाहिये क्या ?

मणिने समझ लिया कि सीधी ऊँगलीसे घी नहीं निकलेगा।

"तब आप जानिये ! मुझे तो आपकी बहन मावजीके यहाँ मिली थी उसने—"

"ऐं . ऐं !" यह नाम सुनकर सेठानीका रूप बदलने लगा और वह बिलकुल नम्र पड़ गई। भीतर आइये—"

मणिने समझा कि अब वह सीधेसे बात करेगी किन्तु इतने ही में सीढ़ी पर किसीके चढ़नेकी आवाज सुनाई दी और

भीतर जानेके पूर्व ही वह व्यक्ति ऊपर आ गया। उस व्यक्तिको देखनेके लिए मणि घूमी और उसे ऐसा जान पड़ा मानों उसका कंपित गात अभी ठंढा पड़ जायगा। उसके कपाल पर पसीना चुहचुहाने लगा। आने वाला व्यक्ति तुंगभद्राके यहाँ आने वाला चन्दूलाल सेठ ही था—जिस व्यक्तिने म्युनिसिपैलिटीके सदस्योंसे कहकर, नौकरी तलाश कर उसे घर पर बुलाया था—वह इस रमणीका ही पति है। दो दिनों बाद घर पर आनेकी प्रतिज्ञा को ठुकरा दिया था और आज लम्पटकी तरह उसके घर पर माथा टेक रही थी।' भाग जानेकी इच्छा हुई, उसे यह अधमताकी परिसीमा मालूम होने लगी, पर मुचकुन्दका सरल दयापूर्ण तेजस्वी मुख उसके सामने आकर खड़ा हो गया। उसे क्या वह दुःखी होने दे ? उसे बन्दी-गृहमें जाने दे ? मुचकुन्दकी चतुराई, उसकी बड़ी बड़ी आशाएँ, उसका भविष्य आदिका विचार पल मात्रमें उसके स्मृति-पटलमें दौड़ गया। साहस-पूर्वक वह खड़ी रही। गम्भीरलाल और महात्मा महायोगीने जो भयङ्कर परिस्थितिमें उसे ढकेल दिया था उसके समक्ष इसकी क्या बिसात ?

मणिको देखकर सेठजी भी चौंके। हर्षकी किरणें उनके चेहरे पर प्रस्फुटित हुईं। आनन्दसे काँपते हुए स्वरमें उसने पूछा—क्या पंडिताइनजी स्वयं आप ! कैसे कष्ट किया ?

"जी हाँ, मैं आपसे मिलने आई हूँ" जरा तिरस्कारसे हँसकर मणिने कहा।

"आइये ! बड़ी खुशी हुई, उस दिन जरा आप नाराज थीं" कहकर सेठ अपनी स्त्रीकी तरफ गया। मणिको समझनेमें देर न लगी कि पति-पत्नीका सम्बन्ध एक दूसरेके साथ कैसा है, उसने धीरेसे सेठानीसे कहा—श्रीमतीजी मैं सेठसे बातें कर आपसे मिलूँगी।

सेठजी अपने चमक दमक वाली बैठकमें गये। उसने बिजली के तीन चार लट्टू जला दिये; जिससे कमरा चकाचौंध करनेवाले प्रकाशसे प्रकाशित हो उठा; एक पंखा भी खोल दिया और आराम कुर्सी पर बैठकर छोटी सी पर सुन्दर कुर्सी अपने पास खींचते हुए मणिसे उस पर बैठनेका संकेत किया।

मणि उस पर बैठ गई। सेठकी आतुर आँखें उसके मुख पर पड़ीं। उसने कहा—कहिये! आखिर हमलोग मिल ही गये!

"भाग्यमें मिलना ही बदा होगा।"

"क्यों मुझसे मिलना बहुत दुःखद मालूम पड़ रहा है क्या?

"जो भी हो, मैं यह बात करने नहीं आई हूँ। आपसे प्रार्थना करने आई हूँ।"

"क्या?"

"यही कि आज आपने अपने जिस कर्मचारीको बन्दी कराया है उसे छुड़ा दें।" मणिने धीरेसे कहा।

सहसा चन्दूलाल सेठ आराम कुर्सी पर लेटकर खिलखिला उठे; दो मिनट तक यही दशा रही। इस हँसनेका कारण मणिकी समझमें कुछ भी नहीं आया जिससे हक्काबक्का होकर उसकी ओर देखने लगी। हँसीका वेग कुछ कम होने पर जेबसे 'सिगार' निकालकर जलाते हुए उसने कहा—यह तो बड़ी विचित्र बात हुई।

"क्यों?"

"मैंने तो समझा था कि तुम कोई सती माता होगी" कहकर पुनः हँसी न आनेसे सेठ उठकर बैठ गया।

मणिकी आँखोंमें विष उतर आया और वे चमकने लगीं।

"यह भी भाग्यकी बात है सेठजी!" बड़ी कठिनतासे अपना स्वर अविकृत बनाते हुए मणिने कहा—"अब मैं सब कुछ समझ

गई, आपको दो बार तिरस्कार करनेके पश्चात् भी आपके एक तुच्छ कर्मचारीके पीछे-पीछे मेरा पागल होकर घूमना भला आपको कब सहन हो सकता है ?" सेठ फिर हँसा "आपने पंडयाजीकी बात सुनी होगी ? आप भला कहाँसे विश्वास कर सकते हैं कि मैं मुचकुन्दको अपना सहोदर भ्राता समझती हूँ ।"

"सहोदर भ्राता ! ओहो !" सेठ फिर हँसा "तुम्हारी जैसी स्त्रीसे आज तक मेरा पाला नहीं पड़ा ।'

"हो सकता है, किन्तु मुझे भी ऐसा ही मालूम होता है । भले ही आप मानें या न मानें । आप जैसे व्यक्ति जिसके हाथमें संसार पर प्रभुत्व करनेकी शक्ति है, जिसके हाथमें शासनाधिकार है भला वह कहाँसे इसे स्वीकार कर सकता है ?"

सेठने हँसकर कहा—तब आप मुचकुन्दको मुक्त कराने आई हैं; किन्तु कारण ?

"कारण ! क्योंकि वह निर्दोष है । केवल उसके पिताके कहनेसे आपने उसपर अत्याचार करनेके लिए यह झूठा अपराध उसके सिर मढ़ा है ।"

"इसमें क्या धरा है ? यदि यह बात होती तो वह पकड़ा ही क्यों जाता ?"

"उसके प्रभुको—स्वामीको— भगवानने पैसा और सत्ता दी है, इस कारणसे ?"

"हाँ, इस लड़केको मूर्खतासे बचानेके लिए।" सेठने शान्तिपूर्वक कहा ।

"दूसरा कारण बताऊँ ? मेरे कारण इस पर दोष लगाना बिलकुल झूठ है ।"

"सती माता !" सेठ पुनः हँसने जा रहा था किन्तु मणिके

मुँह पर उमड़ने वाले भयङ्कर बादलको देखकर वह रुक गया।

"हाँ! सती माता कह लो क्योंकि दुनियाके निकृष्ट दुराचार देखकर आप सब इतने पतित हो गये हैं कि सत्य क्या है और झूठ क्या है, यह आपमें समझनेकी शक्ति ही नहीं रह गई है। पर मैं अपने प्रभुकी शपथ खाकर कहती हूँ कि आप सब भूल कर रहे हैं और बिना किसी अपराधके एक निर्दोष व्यक्ति पर सन्देह कर रहे हैं।"

यह जोश, यह तेज देखकर चन्दूलाल सेठ जरा शरमिन्दा पड़ गया। उसके कठोर हृदयमें भी मणिके हृदयस्पर्शी शब्दोंने कुछ असर किया किन्तु वेश्याके यहाँ देखी हुई इतनी कम अवस्था वाली और सुन्दर स्त्री निर्दोष हो यह बात उनके मनमें बैठी नहीं।

"अच्छा, यह छोकड़ा समझता नहीं है, इसका क्या उपाय होगा?"

"क्या?"

"क्या तुम्हारे साथ इसे रहने दिया जा सकता है? पंडयाजी कह रहे थे कि तुम बाल-विधवा हो। तुम्हारे साथ इस प्रकार खुले आम रहनेसे भविष्यमें इसका फल क्या होगा?"

"यह मैं भी समझती हूँ। मुचकुन्द भाई दुनियाके तूफान—छल कपट—से अभी अनभिज्ञ हैं, किन्तु मैं नहीं हूँ। मैंने उनसे पहले ही कहा था कि अपने साथ रखने में उन्हें हानि ही उठानी पड़ेगी।"

"हाँ! किसी ऐसे व्यक्ति की संगत खोजना था जो दूर रख सके?" चन्दूलाल ने जरा हँसकर कहा।

यह प्रश्न मणि ने मानो सुना ही न हो इस प्रकार उसका जवाब न देते हुए कहा—पर उन्हें लोगों की निर्मलता पर श्रद्धा थी।

"अब तो मालूम हो जायगा। जब तक ऊँट पहाड़ पर नहीं चढ़ता तभी तक बहुत बिलबिलाता है। 'पर' निर्मलता—कटाक्ष से इस शब्द पर सेठ ने जोर देकर कहा—की पूँछ वह तो तुम-से विलग होना चाहता ही नहीं, मैंने उसे बहुत समझाया।"

"हाँ! किन्तु मैं तो स्वीकार करती हूँ। मुझे उनका भविष्य बिगाड़ना स्वीकार नहीं है।"

"बहुत ठीक, तब तो कुछ हो सकता है! उसके बापको बुलाऊँ पर—"

"पर क्या?" मणि ने पूछा।

"पर मैं यह सब कष्ट क्यों उठाऊँ?"

"जाति के अपने एक सम्बन्धी की रक्षा के लिए, आपने उसे पकड़वाया है इसलिए।" मणि ने कहा। वह सेठ के प्रश्न का मर्म समझ गई? सेठ को एक तमाचा मारने की इच्छा हुई किन्तु अपने को किसी प्रकार संभाला।

सेठ उत्तर सुनकर हँस पड़ा। "यह मानो सतयुग चल रहा है! तुम तुङ्गभद्रा के मकान से भाग निकली, पाठशाला में जगह पाने के पश्चात् तुमने धोखा दिया; आज भगवान ने तुम्हें बिना बुलाये यहाँ मेरे घर पर भेज दिया है। अपने भाग्य को दैव ने कैसा अच्छा रचा है!" कह कर सेठ हँसने लगा। उसके हास्य से ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मनुष्यके अधम स्वभाव और निकृष्टतम आचारके वशीभूत होकर वह इतना पतित हो गया था कि किसी भी विषयंको पवित्र दृष्टि से देख ही नहीं सकता था।

"अर्थात् इतनी तुच्छ प्रार्थना का भी आप मूल्य चाहते हैं?" मणि ने तिरस्कार से पूछा।

"बिना मूल्य भी क्या कोई कार्य होता है ?" बम्बई के लखपति सेठ ने कटाक्ष किया।

"क्या मूल्य चाहते हो ?" साहस से मणि ने पूछा।

प्रश्न में इतना गाम्भीर्यपूर्ण अर्थ भरा हुआ था कि सेठ की नजर मणि के सामने टिक नहीं सकी। उसका निष्ठुर मस्तिष्क भी क्षुब्ध हो उठा। वह क्षण भर तो कोई जवाब ही नहीं दे सका। अभी वह गम्भीरलाल और महात्मा महायोगी की लम्पटता की उच्चतम श्रेणी तक नहीं पहुँचा था।

मणि मनुष्य स्वभाव की परीक्षा कर करके अच्छी पारखी बन गई थी। वह ताड़ गई कि सेठ अभी कितने पानी में है; वह अपने सम्बन्धी में सेठ के मनमें उत्पन्न होने वाले विचारों और लिप्साओं को कभी की समझ चुकी थी। एक चतुर नाटक-कार के लिए भी अलभ्य विलक्षणता से उसने अपने चेहरे के आवेश को बदल दिया; प्रार्थी की दीनता को दूर कर दानेश्वरी के प्रताप को मुख पर धारण किया।

"मूल्य ?" मणि ने तेजस्वी मुख को ऊँचा कर प्रभुता सूचक स्वर में पूछा। "कभी किसी ने मूल्य चुका कर स्त्री का हृदय जीता है ? कीमत देकर खरीदी हुई स्त्री को कब तक अपने आधीन रख सके हो ?" पल भर मणि रुकी। उसकी तेजस्वी आँखें अपना काम करती रहीं।

सेठ इस मुख का, आँख का; तेज देखकर दिग्मूढ़ सा हो गया। एक स्वरूपवान हिरण को पकड़ने गये थे, सामने एक सिंहनी आकर खड़ी हो गई। इस गर्जना से घबड़ा जाने पर भी उसकी लिप्सा दूर न होकर कुछ बढ़ी ही। इस महाशक्ति के विराट स्वरूप ने उसे अपने वश में कर उसे निराधार बना दिया, वह एक अक्षर भी न बोल सका।

"सेठ !" मणिने कहा "स्त्री तो जीती जाती है—खरीदी नहीं जाती।"

सेठ जरा हँसा। उसने हाथ-पैर फैलाया। यह ताप उसे असह्य हो रहा था फिर भी धनवान, आत्म-संतोषी बंबई वालों के साहस से उसे टाल जाने का प्रयत्न करते हुए उसने पूछा—तुम कैसे जीती जा सकती हो ?

"मैं ? हाँ, यह भी बताती हूँ" ग्रीष्मकाल की उष्णता में जिस प्रकार संध्या हो जाने पर कुछ शांति आ जाती है वैसे ही कुछ शांत हो मणिने कहा—अभी तक न तो कोई मुझे खरीद सका है और न जीत सका है। खरीदने वाले तुम्हारे ही समान हाथ-पैर पटककर मर गये; अभी जीतने वाला कोई मिला नहीं है। तुम्हें मुझको अपनी बनाना है ? इसके लिए पानी चाहिये। इस प्रकार मूल्य माँगने से क्या होता जाता है ?" कहकर मणि फिर तिरस्कार से हँसी।

सेठ दंग रह गया। यह रूप और यह वाक्चातुर्य—जादूगरकी लकड़ीके समान उसे बेहोश कर—नचाने लगा। उसमें उसके आत्म-संतोषी स्वभाव का अर्घ्यदान हुआ; जीतने की बात उसे रुची क्योंकि उसके समान चतुर धनीके सामने मणिके समान एक निराधार अबला का अस्तित्व ही क्या था ? इसके अतिरिक्त यह सुन्दरी भी उसे कुछ अलौकिक जँची और खरीदने की अपेक्षा जीतना ही अधिक सरल मालूम पड़ा। मणि द्वारा बिछाये हुए जाल में सेठ सीधा जाकर फँस गया।

"मैं भी यही चाहता हूँ, मैं भी कुछ कुछ इसी मार्ग का पथिक हूँ।

"अच्छी बात है, तब आप मुझ पर इतना उपकार करें;

मैं आपको अपना परम मित्र समझूँगी, किन्तु कोई वचन देकर अपने को बाँधती नहीं।"

"तो मैं कहाँ कह रहा हूँ?"

"तब मुचकुन्द भाई को बंधन-मुक्त करा दीजिये।" एक दम सातवें स्वर्ग में पहुँचे हुए सेठ को पृथ्वी पर लाकर मणि ने कहा।

"हाँ! पर पहली शर्त यह है कि आप मुचकुन्द से मिल नहीं सकतीं, इसे स्वीकार किये बिना कुछ नहीं हो सकता।

स्वीकार है और कुछ? वह छूट जायँ बस। उनके पिता से भी उन्हें माफ करा दीजियेगा।"

"खड़ी रहो, मैं वृद्ध से पूछ आऊँ" कह कर सेठ भीतर चला गया। थोड़ी देर बाद बाहर आकर सेठ बोला—पंड्याजी कहते हैं कि उसके विवाह में तुम्हें कोई रोड़ा अटकाना नहीं होगा।

"मैं क्या रोड़ा अटकाऊँगी?"

"ठीक...तब...कल सबेरे..."

"नहीं, जैसे हो इसी समय छुड़ाइये। मुझसे मुचकुन्द भाई कह रहे थे कि पुलिस इन्सपेक्टर आपके परिचित हैं।"

"तब तुम कहाँ रहोगी? क्योंकि वृद्ध कह रहा था कि तुम्हें उससे मिलना जुलना बिलकुल ही बन्द कर देना पड़ेगा।"

"मैं कल सबेरे कोई कोठरी तलाश कर लूँगी, इस समय जहाँ तहाँ पड़ रहूँगी।"

"मेरे घर से काम चल जायगा?" सेठ ने जरा हँस कर पूछा।

"यह मित्रता का प्रारम्भ है क्या? क्षमा कीजिये, मेरी एक सखी हैं उनके यहाँ जाकर सो रहूँगी।"

"ठीक है तब एक-दो लाइन लिख दो मैं मुचकुन्द को छुड़ा लाऊँ।"

"अच्छा ! यह रही उनके घर की कुञ्जी। क्या मैं भी..." मणि ने कहा।

"क्या काम है ? मैं ही जाकर उसे पहुँचा आऊँगा। मेरी मोटर नीचे ही खड़ी है।" कह कर चन्दूलाल सेठने पुनः पगड़ी सिर पर रखी।

१३

भावना नष्ट

चंदूलालने जाकर मुचकुन्द को बन्धनमुक्त कराया और मणि का पत्र व कुञ्जी के साथ साथ 'चलो अब जरा बुद्धि से काम लेना' का उपदेश दे वहाँसे चलते बने। मुचकुन्द बाहर निकलकर थाने की ओर बहुत देर तक पागल की तरह देखता खड़ा रहा। वह क्यों पकड़ा गया, क्यों छोड़ा गया, यह कुञ्जी और पत्र कैसा है आदि बातों का स्पष्ट विचार करने की उसमें शक्ति नहीं थी। गिरफ्तार किये जाने पर पहले वह बहुत घबड़ाया, बाद में जो कुछ सिर पर पड़े उसे दृढ़तापूर्वक सहने का बड़े साहस के साथ उसने निश्चय किया था। किन्तु जब मणि से मिल कर लौट आने पर थाने के भीतर घोर अंधकारमय हवालात में बन्द कर दिया गया उस समय उसका दम घुटने लगा। हवालात का दरवाजा बन्द होते ही, समस्त जीवन, प्रिय आदर्श, स्नेहमय स्वप्न इन सबका दरवाजा बन्द होता हुआ दीख पड़ा। उसका कृत्रिम साहस जाता रहा। वह एक कोने में पड़ा

रहा। सगा बाप ही दुश्मन हो रहा है यह विचार कर उसका हृदय फटने लगा। दुःख से उत्पन्न कल्पना ने कोर्ट, दण्ड, बन्दीगृह आदि के भयङ्कर भूतों को उसके सामने लाकर खड़ा कर दिया। उसके मित्र क्या कहेंगे, उसके प्रोफेसर कैसी कल्पना करेंगे, ये विचार आते ही वह काँप उठा। इस दुर्गति की अपेक्षा मर जाना उसे कहीं अधिक अच्छा लगा।

उसके संस्कार में आत्मबल नहीं था, उसका स्वभाव कोमल था, उसे अभी तक दुःख किसे कहते हैं मालूम न था जिससे पापी अथवा अनुभवी स्वभाव की निष्ठुरता उसमें न आ पाई थी; अन्याय से उत्पन्न क्रोध का तेज अथवा अभिमान उसमें न था, आत्मनिष्ठ प्रभावशाली स्वभाव की गौरवशील शांति की भी उसमें कमी थी; पहले उसने कृत्रिम प्रयास से उत्पन्न किये हुए वृक्ष के समान रचना की थी, इस समय उस अस्वाभाविक वातावरण के नष्ट हो जाने पर और स्वाभाविक शिक्षा के अभाव से वह वृक्ष धराशायी हो चुका था। वह रोने लगा, दीवाल के साथ माथा भी टकराने लगा था।

ऐसी अवस्था में चन्दूलाल सेठने वहाँ पहुँचकर उसे मुक्त किया। यह परिवर्तन कैसे हुआ, वह कुछ समझ न सका। सेठ की मोटर चली जाने के पश्चात् उसने सिर ऊपर उठा कर देखा। चारों ओर शून्यता थी; मणि का स्मरण आते ही हाथ में पड़ी हुई कुञ्जी और पत्र का ख्याल आया। लैम्प के पास जाकर वह पत्र पढ़ने लगा :—

प्रिय मुचकुन्द भाई,

विधि ने बहुत समय तक हमें एक दूसरे के साथ रहने का विधान नहीं किया है। बिना मिले जा रही हूँ, क्षमा करना।

अपने कारण आपका भविष्य बिगाड़ने का पाप बटोरना मैं नहीं चाहती।

आपकी ही,

मणि।

मुचकुन्द को इस पत्र का अर्थ कुछ भी समझ में नहीं आया। तीन बार पढ़ने पर पत्र का तात्पर्य कुछ कुछ समझ सका और वह दाँत पीसने लगा। जिसके लिए वह यह सब सहने को तैयार बैठा था वह भी नमकहराम निकली! अनजान, इधर उधर भटकनेवाली स्त्री के साथ परिचय करने की अपनी मूर्खता को भी बार बार वह धिक्कारने लगा।

पागल के समान दौड़ता हुआ आकर मुचकुन्द ने घर का ताला खोला। चारो ओर घूर घूर कर उसने देखा किन्तु मणिका ट्रंक या उसका नामोनिशान भी उसे कहीं दिखाई न दिया, उसका गला भर आया। उसे घर, संसार, सर-सामान सब काटने दौड़ रहा था। वह बैठ गया और सिर पर हाथ रख कर रोने लगा।

मुचकुन्द यदि विलायती विलास में पला होता तो दुःख भुलाने के लिए सिगरेट जलाकर समय काटने के लिए सोमपान करता; जंगली होता तो चिल्ला चिल्ला कर सारा महाल सिर पर उठा लेता, यदि अनार्य होता तो सब कुछ भुला कर सो जाता; अगर कहीं कवि होता तो हाथ में कलम लेकर दिल को हिला देनेवाली कवितायें रच डालता। विदेशी विद्या से पूर्ण रंगा हुआ न होता तो विधि के खेल पर श्रद्धा रख कर संतोष करता। वह प्रेम दर्द का शौकीन भी तो नहीं था जिससे जोग जगाता; और न कर्मयोगी ही था नहीं तो मणि को बुलाकर अपनी इच्छा-शक्ति प्रदर्शित करता। मुचकुन्द बिचारा इनमें

से कुछ भी न था। प्रत्येकका कुछ कुछ आभास उसमें पाया जाता था, भिन्न भिन्न आदेशोंके कण उसके स्वभावमें भरे हुए थे। इस कारणसे वह कुछ भी न कर सका—केवल घंटों आँसू बहाता रहा, बहुत देर तक मौन धारण कर बैठा रहा और मन ही मन इस प्रकार विचार करने लगा।

"मुचकुन्द ! मुचकुन्द ! तू मूर्ख है, किसलिए इतना रो रहा है ? क्यों इतना चित्तमें दुःखी होता है। पराई स्त्री किसीकी हुई है कि तेरी ही होगी ? जिस अचानक मार्गसे वह आई थी उसी मार्गसे चली गई। इसमें तेरा क्या ? वह तेरी थी कब ? तेरे साथ रहेगी, इस धारणाका कारण ?

"पर ऐसे ही चली जाती तो कोई बात नहीं थी, यह तो अत्याचारसे, पिताजीके द्वेषसे भाग गई। पिताके आगे, मैं पढ़ा लिखा होकर भी कायर साबित हुआ। वाहरे मेरी होशियारी ? मैं हारा—खैर—पर किससे ? संसारसे, प्रथासे, मैं गुलाम निकला। हैं ! मेरे सब आदर्श कहाँ गये ? भगवान बुद्ध, मार्टिन ल्यूथर—यह सब स्वप्न है। मेरा साहस पहले ही आघातसे चूर विचूर्ण हो गया। हाँ ! मैं जेल जानेके लिए गया, किन्तु कितना डर लग रहा था ? मैं कितना निर्बल हूँ। कहाँ जरासे डाँट-डपटसे भयभीत हो जाने वाले हिरण समान मैं और कहाँ साहससे आगे कदम बढ़ाने वाले हँसते हुए शूली पर चढ़ने वाले वीर नर ?

"मैं किस लिए लड़ा ? मणिके लिए या अपनी भावनाके लिए ? संसारके अत्याचारने मुझे कुचल डाला। ऐसे कितने हिन्दू रौंदे गये होंगे ? सभी प्रथारूढ़ि—प्राचीन रीत रिवाज—की गुलामी पर भाषण करते हैं, कोई बचा भी है ? मैंने सोचा था कि मैं बच जाऊँगा। मेरेमें बहादुरी है किन्तु कब तक—जब तक कि प्रचण्ड शेषनागने निगल जानेके लिए फुत्कार नहीं मारा तभी

तक। क्या सबको मेरे ही समान अनुभव हुआ होगा ? कितने लोग मेरे समान रोते होंगे ? अब क्या ? पढ़ाई, चारित्र्य, आदर्शों पर पानी फिर गया—अब 'मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति'। गुलाम और ढोर इन दोनोंमें कौन अच्छा है ?

"मैं गुलाम हूँ, सभी मेरी तरह हैं। स्वयं गुलाम होते हुए दूसरोंको भी गुलाम बनानेका धन्धा ले रखा है। भारत कारागृह है ? मनुका लिखा हुआ आदेश पालन करनेकी आज्ञा ही नहीं है ? जन्मसे लेकर मृत्यु-पर्यन्त रूढ़ि द्वारा दिखाये हुए मार्ग का ही अवलम्बन किया जाय ? प्रभु ! प्रभु ! कैसी यह दुनिया है ! ये मनुष्य हैं ! इनकी अपेक्षा मर जाना कहीं अच्छा है।

"पर मरनेका साहस ! हाँ, वह भी नहीं है। दुःख सहनकर भी जीनेकी लालसा है। चाहे जिस बहानेसे जीना ही हमारा जीवन-मंत्र है। इस समय मैं भी उन्हींकी मण्डलीमें मिल गया हूँ। दूसरेका क्या दोष ? पिता आयेंगे, मुझपर अपना प्रभुत्व जमायेंगे, चाहे जैसी लड़कीसे मेरा विवाह होगा, लड़के-बाले होंगे, पचीस रुपये मासिकसे अवतार पूरा हो जायगा—समाप्ति! सब आशोका अन्त रोना !

"किसका दोष कहा जाय ? अपना या भाग्यका ? हाँ, यह हाथका सहारा ठीक है। हाथ द्वारा किये गये अपराधसे यदि हृदय भग्न हो तो भाग्यका सहारा लीजिये। हमने मूर्ति बनाने का कारखाना खोला है, साँचेमें यदि ठीक ठीक न ढले तो वह कुचल डाली जाय। ठीक ! किन्तु कुचले जानेका भी साहस तो मुझमें नहीं है। मैं स्वार्थी हूँ, मुझे अपना जीवन प्यारा है। हाँ! मैं नराधम हूँ, गुलाम होनेके लिए तैयार हूँ। अब मेरे लिए क्या ? जैसे सारी दुनिया भार वहन करती है वैसे ही मैं भी करूँगा।

"शाबाश मुचकुन्द ! तेरी भी आज यह दशा हुई। जहाँ इतने थे उनमें एक संख्याकी वृद्धि और सही। अब जीवनमें क्या रह गया ?"

मुचकुन्द कुछ इसी प्रकार विचार करता रहा। विचार और थकावटके झोंकेमें रात बीत गई। मुँह अँधियारे ही पाण्डु पंड्या आ धमके।

दुःखमें, निराशामें बैठे हुए पुत्रको देखकर जरा विजयके स्वरमें पंड्याजी पूछने लगे—क्यों वत्स ! क्यों ? मिजाज कैसा है ?

निःस्तेज आँखोंसे मुचकुन्दने सिर उठाकर देखा लेकिन उससे कुछ उत्तर देते नहीं बन पड़ा।

"क्यों अब समझमें आ गया ? देख, यदि अभी कुछ और मस्तिष्कमें कूड़ा भरा हो तो निकाल डाल। बता ! अब क्या करना है ?"

"क्या" मुचकुन्दने दाँत पीसते हुए उत्तर दिया "अब मुझे करना क्या है ? आपने मेरा जीवन नष्ट कर दिया—अब मुझे कुछ नहीं करना है।"

"इससे काम नहीं चलेगा, चल तैयार हो। आठ बजे गाड़ी जाती है।"

"कहाँ ?"

"अपने गाँव ! जात भरके लोगोंसे चलकर कहो कि वे अपने मुँहमें कारिख पोत लें। पाण्डु पंड्याको बरगलाने आये थे।"

"मैं गाँव नहीं चलूँगा, मुझे कृपाकर यहीं पड़ा रहने दीजिये।

"यहीं पड़ा रहने दूँ, क्या मेरी नाक कटाना है ?" आँखें निकालकर पाण्डु पंड्याने कहा। "पीछे जो चाहे करना, अभी चल।"

मुचकुन्द में अब सामना करने का साहस भी नहीं रह गया था। वह अपने पिता की ओर एक टक देखता रहा।

"मैं चलकर क्या करूँगा? मुझे दुःख में यहीं पड़ा रहने दीजिये। आप बुद्धिमान हैं और मैं पागल हूँ पर किसलिए जले को और जलाते हैं?"

"धुत्तेरे जले हुए की! तू तो अब बहुत बोलना सीख गया है? चल उठ, यह तेरी टें टें नहीं चलेगी।"

"लीजिये!" एक दम खड़ा होकर मुचकुन्द बोल उठा। "जो कहिये करने के लिए तैयार हूँ।"

"हाँ! अब समझा" शांति से वृद्ध ने कहा "चल, अपनी आवश्यक वस्तुएँ बाँध ले। गाड़ी का समय हो चला।"

चुपचाप मुचकुन्द उठ खड़ा हुआ।

१४

जाति की पंचायत

तीसरे दिन रात के ग्यारह बजे के लगभग कष्ट-नष्टेश्वर महादेव के मन्दिर के चौतरे पर तीन आदमी बैठे हुए गप मार रहे थे, एक व्यक्ति रास्ते पर खड़ा था। महादेवजी के मन्दिर में नन्दी के बगल में दीपक टिमटिमा रहे थे। थोड़ी थोड़ी देर पर धोती और चौड़ी पगड़ी पहने हुए एवं कंधे पर दुपट्टा-डाले हुए पाणु पंड्या के जाति के लोग मंदिर में झाँक कर पूछ जाते थे कि पंचायत प्रारम्भ हो गई है या नहीं। किसी को जल्दी हो

था समय का मूल्य हो, यह नहीं मालूम पड़ रहा था। सभी रात के राजा मालूम पड़ रहे थे।।

थोड़ी देर बाद तीन व्यक्ति आये और भीतर चले गये। सर्वप्रथम सबने महादेवजीका दर्शन किया, पार्वतीको चिढ़ानेके लिए बम-बम किया, देवको जगानेके लिए घंटा बजाया, नन्दीको प्रसन्न करनेके लिए उसका पुच्छ स्पर्श किया और तब दीपकके आस-पासमें बैठकर मंत्रणा होने लगी।

"क्योंजी! चौधरी कहाँ है? उनका समय अभी नहीं हुआ क्या?"

"होगा...होगा नाथू शास्त्री!" दूसरी मण्डली वालोंने कहा— "आप क्यों इतने अधीर हो रहे हैं? उस बनमानुसको देखा क्या?"

"कौन?" नाथू शास्त्रीने पूछा।

"अरे वही पाणुं पंड्याका पुत्र! बड़ा बनमानुस मालूम पड़े इसलिए आज उसने अँगरखा पहन रखा था और उसके घमंडका क्या पूछना! उसका तो पैर ही जमीन पर नहीं पड़ रहा था। मैंने नमस्कार किया तो केवल सिर हिला दिया।"

"धनशंकर! तू तो ऐसा ही रह गया।" तीसरा बीचमें बोल उठा "दूसरों के अवगुण ही देखने की तेरी आदत सी पड़ गई है? तू भला क्या जाने? उसने तो गत वर्ष मुझे पुरुष-सूक्तका अर्थ समझाया था।"

"शांतं पापम्" नाथू शास्त्रीने अपना अभिप्राय दर्शाया। "वेदका अर्थ! यह सम्भव ही कैसे हो सकता है? और यदि हो भी तो क्या हमसे हो सकता है? रौरव-नरकके अधिकारी हो जायँगे। भवानी काका!"

"बस बस रहने दे अब! यवन इसका अर्थ करें तो कुछ

नहीं और हम करें तो बड़ा भारी अपराध हो गया !" भवानी काकाने कहा।

"इसी तरह तो सब सत्यानाश हो गया न। और अब इस रामशंकरके लड़केकी शुद्धि करनी है ? कैसी अधमता ! अब तो आर्यसमाजमें सबको मिल जाना चाहिये, ताकि ब्राह्मण बने हुए भंगियोंके साथ बैठकर भोजन करनेका सौभाग्य तो प्राप्त हो।"

"भंगियोंको ब्राह्मण कौन कहता है ?" चिल्लाकर प्रश्न करता हुआ गौरीशंकर गोटली आया। इनका परिचय पाठकोंको मिल चुका है फिर भी इतना तो कहना ही पड़ेगा कि यदि पहलेसे कोई उन्हें पहचानता न होता तो ऐसा भास होता मानों पास ही के मन्दिरमेंसे काले पत्थरके गणपति अपना सूँड़ दूर रखकर पिता—शिवका दर्शन करनेके लिए आये हों। सभी लोग इन्हें लड़कपनसे जानते थे जिससे यह मानप्रद भ्रम उत्पन्न नहीं होने पाया। इनकी आवाज भी तेज और गम्भीर थी, जिससे इनकी साधारण बात भी दो फर्लांग तक तो लोग आसानीसे सुन ही सकते थे। गाँवके बहरे एक ही बारमें इनकी बात सुन लिया करते थे जिससे जातके सम्मेलनमें वह अगवानीके लिए बड़े उपयुक्त थे।

"अरे यह तो नाथू शास्त्री हैं" भवानी काकाने कहा—"ये रामूके लड़केको पवित्र करना नहीं चाहते।"

"क्यों शास्त्रीजी ! आपको भी उन पाणु पंड्याने भरमा दिया है क्या ?"

"पाणु पंड्या में खुँटाई क्या है" शास्त्रीने पूछा।

"खराई, खुटाई तो आज ही मालूम हो जायगी ! किन्तु अभी तक कोई आया क्यों नहीं ? आधी रात तो होने आयी।

पंचायतकी यही तो सबसे बुरी बात है कि कोई समय पर आता ही नहीं।"

"लो, यह पुराणी बाबा आ गए।" इतनेमें मुचकुन्दके ससुर लकड़ी टेकते हुए वहाँ आ पहुँचे।

"क्यों पुराणी बाबा ?"

"क्यों भाई, क्या है ?"

"आज आप पाणु' पंड्याके साथ अटं पटं में थे क्या ?" गोटलीने आँख निकालकर पुराणी बाबाको आड़े हाथ लेनेके लिए कहा।

"अटं पटं क्या और बात कैसी ? मुझे कुछ खबर नहीं है।"

"पुराणी बाबा ! इस साठ वर्षकी उम्रमें झूठ क्यों बोल रहे हैं ? आप भी तो थे।"

"बिलकुल झूठा—लो यह रामशंकर आ गये। क्यों आपका लड़का कहाँ है ? पुराणी महाराजने प्रश्न किया।

"उसका तो माथा दुःख रहा है। भाई ! आज क्या करना चाहते हो ? मुझ गरीब ब्राह्मणको क्यों सताते हो ? मैं तो जातकी गाय हूँ। जो कहो करनेके लिए तैयार हूँ। पड़िया-पड़वा लड़ें और कचूमर निकले पेड़का।" गरीब बनकर रामशंकरने अपनी प्रार्थना सबके आगे रखी।

"पर आज चौधरी को क्या हुआ है ?" भवानी काकाने धीरेसे पूछा।

"अरे कैसा चौधरी और कैसी बात ?" गोटली ने मानभंग होनेसे मिजाज बदलते हुए पूछा।

"भाई अब तू भी चौधरी, किन्तु जो है उसे नहीं कैसे कहा जाय ?"

इतनेमें पाँच-सात व्यक्ति और उनके पीछे पीछे पाँच-सात छोटे छोटे बालक भी आ गये। इनमेंसे एक लड़केके सीटी बजाने पर एक नवागन्तुकने उसका कान गरम कर दिया, जिससे वह रोने लगा।

"क्योंरे चिलबिल्ला !" कान गरम करने वालेने चिल्लाकर कहा "यह क्या नाटकशाला है ? आजकलके लड़कोंसे तोबा।"

"अरे परभू काका ! जरा तलवार बाँधों तलवार।" नाथू शास्त्रीने कहा।

"क्यों, इसमें तुम्हारा क्या गया ?"

"लो, भाइयों अब क्या देर है ?" गौरीशंकर गोटलीने कहा—"इस प्रकार कब तक तपस्या करना है। सभी लोग तो अभी ही मुँह बाने लगेंगे। जो कुछ करना हो करो।"

"पर पाणु पंड्या कहाँ हैं ?" परभू काकाने पूछा।

"उन्हें अक्षत देने कौन जाय ? शुरू करो उनके बगैर" कहकर गोटली पंचायतका काम प्रारम्भ करनेकी नीयतसे बैठ गया।

"भाई जो भी हो पहले उन्हें बुलाओ।" पुराणीने अनुरोध किया।"

"हाँ भाई ! उन्हें बुलानेके लिए किसीको भेजो।" भवानी काकाने हामी भरी।

"तब सबलोग बिना काम धन्धाके हाथ पर हाथ रखकर बैठे रहें ?"

"भाई ! यह तो जैसा होता आया है वैसे ही होगा।" एकने कहा "उठो, नाथू शास्त्री ! तुम पाणु पंड्याके यहाँ जाकर उनसे पधारनेके लिए कहो। सबलोग आ गये हैं। उन्हींकी केवल देर है।"

नाथू शास्त्री भी पंड्याजीसे सहमत थे इससे तुरत उठकर

बुलाने चले गये और तब तक सबलोग हाथ पर हाथ रखे हुए दीपककी ओर दृष्टि रखकर, चुपचाप बैठकर विग्रहके लिए सामग्री संचय करते हों ऐसा मालूम पड़ा। इन्हें बैठा हुआ देखकर कुछ देर पर कोई न कोई आता ही जाता था।

इतनेमें एक भू-देव लड़खड़ाते हुए भीतर आये। उनके नेत्रमें सोमरसकी मस्ती स्पष्ट दिखाई पड़ रही थी। उनका पैर ताण्डव-नृत्य करता हुआ अस्थिर पड़ रहा था। उन्हें देखकर सबलोग एक दूसरेका मुँह ताकने लगे।

"क्यों रविशंकर ?"

"हाँडी गई टूट" सोमपानके असरसे रविशंकरके मनमें स्फुरित मन्त्रका उच्चारण हुआ। "हाँ हाँ" उन्होंने एक तान छोड़ा "ह...अ....तुम सबलोग क्या कर रहे हो ? 'हाँडी गई फूट'। आज रामूके लड़केका क्या है ?"

"क्यों महाराज ! जीभ बहुत चल रही है क्या ?" गोटली ने पूछा।

"हाँडी गई फूट" शान्तिसे रविशंकरने मन्त्र कहा। इतनेमें बाहर आने वाले लोगोंकी आवाज सुनाई दी और पाणु' पंड्या, मुचकुन्द के साथ दूसरे दस-एक भूदेव पधारे।

'पधारिये' 'आइये' 'बैठिये' 'विराजिये' आदि शब्द सुनाई दिये। सबलोग शान्ति पूर्वक बैठ गये। पाणु' पंड्या अध्यक्षके स्थान पर बिना कहे जाकर बैठ गये और सेनापतिके समान अपनी सेना पर तीक्ष्ण दृष्टि डालकर बोले—कोई बाकी तो नहीं रह गया ?

"नहीं पंड्याजी ! सब लोग आ गये हैं" भवानी काकाने जवाब दिया।

पाणु' पंड्याने सभा पर एक नजर फेरी। दीपकके आस-

पासमें लगभग पचास मनुष्य और तीस-चालीस लड़के बैठे हुए थे। थोड़ी थोड़ी देरमें लड़कोंमें कुछ बातचीत और हँसी होती हुई सुनाई दे जाती थी किन्तु पाणु पंड्याकी दृष्टि पड़ते ही तूफानी छावनीमें शान्ति विराजने लगती।

"रह—ग—ग—या एक जान" रविशंकरने आधा गाया और आधा बिना गाये जैसे वाक्यका उच्चारण किया।

'कौन ?" पंड्याजीने रविशंकरका डौल देखकर जरा सख्ती से पूछा।

"हाँड़ी गई फूट" जवाब दिया। सभी सदस्य जरा हँस पड़े; पीछेसे लड़कोंने खिलखिलाकर हँसते हुए ताली पीट दी।

"क्यों रे छोकड़ों ! पंचायतके भीतर ऐसी असभ्यता ! मर्यादा बिलकुल नष्ट हो गई क्या ?"

"अब हमें विचार प्रारम्भ करना चाहिये" गोटलीने कहा।

"हाँ महाराजों !" रामशंकरने हाथ जोड़कर कहा—"मुझ पर दया कर मेरे पुत्रका कोई रास्ता निकाल दीजिये।"

"लड़का कहाँ है ? गंगाशंकर कहाँ है ?" ऐसा दो-चारने एक साथ प्रश्न किया। रामशंकरका चेहरा उतर गया और चारो ओर देखकर बोला—"महाराज ! वह तो बीमार है।"

"आज सबेरे तो शाक-भाजी लेने गया था न ?" पंड्याजीने पूछा—"उसकी अनुपस्थितिमें क्या हो सकता है ?"

"किन्तु न्याय करना है या उसे दिखाना है ? वह विदेश हो आया है और वहाँसे लौट आकर विधिपूर्वक, शास्त्र-विदित प्रायश्चित भी उसने कर लिया है"! सब एक साथ बोल रहे थे उनमें गोटलीकी आवाज सुनाई दी "अब क्या बाधा है ? जातिमें खुले आम लोग जो चाहें करें—खायें पीएँ—राँड़ रखे उसका कुछ

नहीं और यह गरीब बिचारा विद्याभ्यासके लिए विदेश गया तो उस पर यह अत्याचार ?"

"हाँड़ी गई फूट !" धीरेसे रविशंकरने पूर्ति की।"

"किसका न्याय नहीं होता है ? विदेशगमनका प्रायश्चित ही नहीं है'' नाथू शास्त्री बोले, किन्तु सब लोग एक साथ बोल रहे थे, जिससे कौन क्या कह रहा है यह सुनाई नहीं देता था।

"तब सबका न्याय होना चाहिये" पीछेसे एक व्यक्तिने कहा

"किसका न्याय कराना है ?" प्रचण्ड सिंह-गर्जन करते हुए पाणुं पंडया बोले, दूसरे लोग चुप हो गये "कोईका नाम न निशान व्यर्थका आक्षेप किया जाता है। नाम दो, साक्षी लाओ, 'अभी सबका न्याय किया जाता है। गंगा आया नहीं है इससे उसका क्या न्याय किया जाय ? यहाँ अब इस प्रकार बैठनेका प्रयोजन ही क्या है ? बेकार रतजगा कराते हो ? जब तक अपराधी उपस्थित नहीं होता तब तक कुछ नहीं हो सकता। बोलो श्री हर-हर महादेव।" कहकर पाणु पंडया एकदम उठकर खड़े हो गये। आधे लोग हर-हर चिल्लाने लगे, कितने ही कहने लगे— 'बैठिये-बैठिये' और कितने ही ताली पीटने लगे। रविशंकरने जोरसे चिल्लाकर कहा "हाँड़ी गई फूट" गोटलीने चिल्लाकर कहा—"इसका नाम पंचायत है ! अपने नीचे पानी मरा कि सब उठकर खड़े हो गये। मुचकुन्द पंडयाने मुसलमानिन रखा है, उसका न्याय क्यों नहीं करते ! पहले यह पीछे गंगा। बैठिये, बैठ जाइये।"

"हाँ, मुचकुन्द पंडयाका विचार करो।"

सभी उठकर चिल्लाने लगे, कोई किसीका सुनता न था। पीछे खड़े हुए लोग धक्का-मुक्की करने लगे इतनेमें दो चार लड़कों ने पीछेसे ढकेला, उनका धक्का आगे तक पहुँचा। निश्चिन्त खड़े

नाथ् शास्त्री धक्काकी शरण ग्रहण कर क्रोधसे लाल पीले होते हुए गणपति स्वरूप गोटली पर टूट पड़े, शास्त्रीजीकी पगड़ी जमीन पर आ पड़ी, गोटलीने क्रोधसे एक मुक्का जमा दिया, शास्त्री वाग्दान करने लगे।

"मुचकुन्द पंडयाकी बात, एक मुसलमानिन और उसके साथ दो लड़के भी हैं" कोई पीछेसे बोला।

इधर शास्त्रीने गोटलीके परदादीका स्मरण कराया, गोटलीने शास्त्रीके बापकी युवावस्थाके कार्यकलापका वर्णन किया। "मार डालूँगा, खून बहा दूँगा, जीव ले लूँगा" की आवाजें आने लगीं। पाणु पंडया खड़े खड़े तमाशा देख रहे थे। दो-चार व्यक्ति शास्त्री और गोटलीको छुड़ाने गये। न जाने किसने एक लकड़ी जमा दी और उधर किसीने दीपकको भी बुझा दिया। मन्दिरमें अन्धकार हो गया, सब एक दूसरे पर टूट पड़े, सभी जो कोई हाथमें आया उसे टीपने लगे। कुछ समय तक यही हो-हल्ला चलता रहा। पश्चात् लोग छटने लगे और कुछ देर पश्चात् मन्दिरमें शान्ति होने लगी।

थाड़ी देर बाद नन्दीके पाससे आवाज आई—'हाँड़ी गई फूट।'

रविशंकर उठे, उन्हें लगा कि तूफान अभी चल रहा है उसे बढ़ाऊँ। मन्दिरमें पड़ा हुआ ढोल उठाकर तुमुल युद्धमें नाद बढ़ानेका उन्हें शौक चर्राया। लड़खड़ाते हुए जाकर ढोलके पास बैठ गये। ढोल पुराना और फटा हुआ था, उस पर उन्होंने हाथ मारा लेकिन कोई आवाज नहीं हुई। रविशंकरने अधिक जोरसे पीटा, अन्दरसे आवाज आई "अरे बापरे!"

"कौन साला है?" रविशंकरने पूछा।

"यह तो मैं हूँ!"

"मैं कौन ? काल भैरव ?"

"नहीं, मैं हूँ गौरीशंकर" कष्टसे लड़खड़ाती हुई आवाज आई

"कौन गोटली ? यहाँ कहाँ से ?"

"क्या करूँ ! दूसरा कोई रास्ता नहीं सूझा तो ढोल फाड़कर अन्दर घुस गया। भाई मुझे अपना हाथ दो ! मेरा हाड़ चूर चूर हो रहा था उसे तुमने और भी पूरा कर दिया।"

"मुझे क्या पता कि तू ढोलमें घुसकर बैठा है ! ले हाथ, चल निकल। हाँड़ी गई फूट।"

"भाई मेरी भी हाँड़ी फूट गई" गोटलीने कहा।

———

१५

पार्वती बाई

मुचकुन्दके वियोगका दुःख भुलाकर चन्दूलालको दूर रखने की युक्ति मणि सोचने लगी। पहले जो व्यक्ति उसे मिले थे वे सभी लज्जा वाले, मध्यवित्त एवं गाँवके मर्यादाशील वातावरणमें पले हुए थे। चन्दूलाल सेठमें इतनेमेंसे एक भी दुर्गुण न थे जिससे वह मणिको सबसे अधिक भयङ्कर मालूम पड़ा।

बहुत सोच विचारके बाद एक रास्ता उसने खोज निकाला। दूसरे दिन सबेरे अपने आप ही वह सेठके यहाँ गई और उसकी पत्नीसे मिली। सेठानीका नाम पार्वती बाई था। वह अपनी बहनका समाचार जाननेके लिए अत्यन्त आतुर हो रही थी। मणिने उसे महायोगी महाराजकी सब बातें बताई, मणिकर्णिका

का दिया हुआ हार दिखाया और उसकी जिज्ञासा पूरी की। पहले तो सेठसे सब कुछ कहकर कुछ करनेका विचार सेठानीके मनमें उत्पन्न हुआ, पर कुटुम्बकी मर्यादा पर न आ बने, मणिकी ही कुछ भूल हो अथवा महायोगी मणिकर्णिकाको हटा दे, इस प्रकारके संशय मनमें उत्पन्न हो जानेसे उसने बात जहाँकी तहाँ रहने दी और थोड़ा पूछताछ करनेके पश्चात् जो कुछ करना हो, उसे करनेका उसने निर्णय किया।

पर मणिका काम हो गया। सेठानी उससे प्रसन्न थी। सेठानीजी पुराने विचारकी, भली, चिड़चिड़े स्वभावकी, मन्दिरकी दृढ़ भक्त और भोग-विलासकी परम शत्रु थीं। मणिने उसे अपना भूतकालिक जीवन न बताकर उसे सुधारनेका प्रयत्न किया। धार्मिकताका ढोंगकर उसके जीवनमें कुछ रस पैदा करनेके लिए वह परिश्रम करने लगी।

चन्दूलाल सेठ चकित हो गया, घबड़ा गया जब उसने देखा कि मणि पाठशालाका समय छोड़कर बराबर वहीं रहती थी। उसकी स्त्रीके साथ प्रीति जोड़ रही थी, उसके साथ बातचीत करनेमें जरा भी हिचकती न थी—फिर भी एकान्तमें मिलनेका अवसर तक न देती थी। सेठसे की हुई शर्तोंके अनुसार वह कार्य करती थी किन्तु जो कुछ सेठने विचार रखा था वह होने नहीं देती थी।

धीरे धीरे सेठानीकी चाल-ढाल भी बदलने लगी। मणिका प्रभाव उसपर पड़ने लगा जिससे उसका स्वभाव बदल गया, उसके रहन-सहनमें कुछ अन्तर होने लगा, पहले वह बराबर मूक रहती थी। अब कुछ हँसने लगी, दिन भर नौकरोंको कोसती रहती थी उसके बदलेमें अब कुछ वार्त्तालाप करने लगी, ठाकुरजी के मन्दिरमें जानेके बदले अब बहुत समय भुलेश्वरके कपड़ा

वालोंकी दूकानों पर बिताने लगी। ज्यों ज्यों उसके स्वभावका चिड़चिड़ापन कम होता गया त्यों त्यों उसका शरीर भी सुधरने लगा और वह अपने भाञ्जे नटवरको प्यार करने लगी।

चन्दूलालने इस ओर कुछ भी ध्यान नहीं दिया, वह तो मणिके नाम झीखा करता था, और उससे मिलनेके लिए छट-पटाया करता था।

१६

विवाह

मुचकुन्दका आवेश जाता रहा। उसके मनमें प्रलयकाल सा भाव आ गया था। वह किसी बातमें कुछ दखल नहीं देता था और जो कुछ उसका पिता कहता था उसे चुपचाप करता जाता था, उसके चेहरे पर ग्लानि सदैव छाई रहती थी।

पाणु पंड्या भी मौका पा तरह तरहसे उसे सताने लगे। हजामको हुक्म देकर उसका सिर घुटवाकर बड़ी सी चुटिया रखवा दिया, बहुत दिनसे छोड़ी हुई संध्या प्रारम्भ करनेके लिये कहा, उसके अस्वीकार करने पर अपने पास ही पीढ़ा और आसन बिछवाकर जबरदस्ती उससे सन्ध्या करवाना प्रारम्भ किया। इस प्रकार अनेक अत्याचारोंसे पीड़ित होकर वह और भी क्षुब्ध हो उठा। जीवनमें उसे कोई आकर्षण नहीं रह गया था। जिस आत्मबलका अभिमान वह कर रहा था वह अब उसमें रह नहीं गया, जिस व्यक्ति-स्वातन्त्र्यका वह पोषक था

वह नष्ट हो चुका था, जो मणि उसकी समझके अनुसार जीवन में रसदात्री थी, वह स्वयं चली गई थी। अब उसके लिए कुछ रह नहीं गया था। निराधार सदैव भाग्यके अधीन हो जाते हैं, कायरका भी वही अन्तिम विश्राम स्थान है, मुचकुन्द निराधार और कायर दोनों हो गया।

पाणु पंड्याने भी समयसे लाभ उठाया और बड़े ही धूम-धड़क्कासे विवाहका आयोजन करने लगे। मुचकुन्दसे पूछनेकी उन्हें कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं हुई।

मुचकुन्दको यह सब स्वप्नवत् मालूम पड़ने लगा। ढोल और रणसिंघा बजे, मुहूर्त्त देखा गया, स्त्रियाँ सबेरे-शाम गीत गाने लगीं, मुचकुन्दको हर्दी चढ़ी, जामा पहनकर हाथमें नारियल लिए हुए उसे घोड़े पर चढ़ाया गया विवाह मण्डपमें जहाँ लोगोंकी भीड़ लगी हुई थी, वहाँ वह बैठाया गया, मंत्रोच्चारके साथ विवाह-कार्य प्रारम्भ हुआ, किसीका हाथ उसे पकड़ाया गया। सबने कहा—"मुचकुन्दका विवाह हो गया—यह स्वप्न-परम्परा मानों किसी दूसरेका अनुभव हो इस प्रकार वह देखता रहा। अंग्रेजी लेखक और सुधारकों द्वारा प्रथाके विरुद्ध दिये गये भाषण उसे स्मरण आये जिससे पीढ़ा परसे विवाहके पश्चात् उठते समय वह बोल उठा—"तुम सब बकते जाओ, मैं तो जैसा अपना जीवन व्यतीत करता रहा हूँ, वैसा ही आगे भी करूँगा अन्तमें भले ही देश डूब जाय—वह हँसा—कठोर कटाक्षमय हास्य उसके मुँह पर छा गया।

"मैं कह रहा था न ?" पाणु पंड्याने वह हास्य पुराणी बाबाको दिखाते हुए कहा—"आपके घरकी कन्या लेते हुए किसे नहीं रुचेगा ? पहले तो ऐसा हुआ ही करता है, अब देखना।"

पुराणी बाबाने सन्तोष और अभिमानसे पहले जामाताकी

और पश्चात् पंड्याजीकी ओर देखकर कहा—"भाई! मोरके अंडेसे कहीं तीतर भी निकल सकता है?"

१७

चन्दूलाल सेठकी अधीरता

"देखो मणि! अब तुम मुझे तरसाओ मत" सेठानीजी मन्दिर चली गई थीं और भूलसे मणि घर पर रह गई थी जिससे अवसर हाथ लग जाने पर चन्दूलालने कहा।

"मैंने क्या सताया?" नटवरका हाथ पकड़ते हुए मणिने आकर पूछा।

"अपनी प्रतिज्ञाका पालन तू नहीं कर रही है, मैं तेरा खेल समझ गया हूँ।"

"क्या?"

"तू मुझे इसी प्रकार उड़ाना चाहती है। तू तो सेठानीकी बड़ी बहन हो गई है; क्यों?" सेठने कहा।

"अभी तक आपने मुझे जीता नहीं है, जीत लेने पर आइयेगा।"

"तू तो कभी भी स्वीकार नहीं करेगी?"

"जिसका अर्थ आप हार गये, आपकी अपेक्षा तो मुचकुन्द भाई ही अच्छे थे" मणि हँसी किन्तु उसकी हँसीसे विकलताका आभास मिल रहा था "वह बिचारा तो जेल तक जानेके लिए तैयार था।"

"और अब उसका विवाह हो गया है। अभी भी वह तुम्हें बहुत याद आता है क्या?"

"क्यों न याद आवे? मेरे लिए तो वह सहोदर भ्रातासे भी बढ़कर प्रिय था।"

चन्दूलाल सेठ जवाब देने जारहा था कि सहसा चौंककर दरवाजेकी ओर देखता रह गया। मणि भी घूमकर देखने लगी। दरवाजे पर मुचकुन्द प्रेत जैसा खड़ा था। सेठ और मणि दोनों उसे देखकर घबड़ा गये। मुचकुन्दका शरीर एक महीनेमें ही निस्तेज और बलहीन हो गया था। वह शरीरका ढाँचा मात्र रह गया था, आँखें कोटरमें धँस गई थीं, चेहरा पीला पड़ गया था। उसको सफेद आँखोंने एक तेजोमय दृष्टि मणि पर डाली।

मणि उस दृष्टिका अर्थ समझ गई—उसके हृदयमें आघात लगा। उसका गला रुँधता-सा मालूम पड़ने लगा। वह नटवरको लेकर भीतर चली गई।

मणिको देखकर मुचकुन्दने समझा कि वह सेठके यहाँ रहती है। वह निराशाके सागरमें थका हुआ तैरनेवाला, तैरना छोड़कर इस दुःखके प्रबल तरंगके सामने अपना सिर नवाकर नीचे समुद्र के तलमें बैठ गया।

सेठने स्वस्थचित्त होकर पूछा—कौन मुचकुन्द! कब आये?"

"अभी साहब!" खिन्न आवाजमें मुचकुन्दने कहा।

"कैसे हो? विवाह आनन्द पूर्वक समाप्त हो गया न?"

"बिलकुल" जरा कठोरतासे हँसकर मुचकुन्दने कहा।

"ठीक है, भोजन हुआ? ऑफिस आओगे न?"

"जी हाँ" कहकर मुचकुन्द सलाम कर वहाँसे बिदा हुआ।

तीसरे पहर चार बजे सेठ वापस आये। उन्हें रंगूनके एक

अढ़तियाने तार देकर तुरत बुलाया था। उनका वहाँ जाना इतना आवश्यक था कि बिना गये काम ही न बनता। सेठ अपने साथ मुचकुन्दको भी ले जा रहे थे।

मणि और सेठ एक दूसरेसे दूर गये। मुचकुन्दको भी बम्बईसे दूर जानेका अवसर मिला जिससे दोनोंको मुँह माँगी मुराद मिली। सेठ बिचारेको भी मणिको छोड़कर जाना पड़ा जिसका उसे अत्यधिक दुःख हुआ किन्तु करे क्या? कोई वश न था।

तृतीय खण्ड

१

मणिकी यात्रा

सेठ चन्दूलालके जानेके पश्चात् मणिने छुट्टीके लिए आवेदन पत्र दिया। अब उसे इतनी आय हो जाती थी कि वह अपना जीवन स्वतन्त्रता पूर्वक निश्चिन्ततासे व्यतीत कर सके। उसे ऐसा मालूम होने लगा कि जिस दुर्भाग्यके कारण वह अब तक इतना दुःख झेल रही थी उसका अन्त सन्निकट है, जिससे उसका चित्त सुरेखाके लिए दिनों दिन अधिकाधिक उद्विग्न रहने लगा। उसके अलावा पार्वती भी महायोगी महाराजके यहाँ जानेके लिए प्रति दिन तकाजा किया करती थी।

किन्तु मणि एकाएक बम्बई न छोड़ सकी। दस वर्षके वैवाहिक जीवनके पश्चात् सन्तान-हीन, शुष्क-हृदय हो जाने वाली पार्वतीके जीवन-विकासमें वह रस लेने लगी थी। उसके सूर्य-किरण रूपी प्रभावसे सेठानीका स्वभाव खिलकर उसमेंसे अद्भुत सुवास निकलने लगी। इससे मणि उसके मनको विकसित करनेमें अधिक समर्थ हो सकी, मनके साथ ही साथ वाह्य रूपमें भी परिवर्तन हुआ।

मणिने एक युक्ति सोच रखी थी, उसीको कार्य रूपमें परिणत करनेके लिए सेठानीको कुछ पढ़ना-लिखना भी सिखाया।

दो ही मासमें पार्वतीमें ऐसा परिवर्त्तन हो गया कि उसे कोई पहचान भी नहीं सकता कि यह वही पार्वती है।

दो महीने बाद सेठका तार आया कि वे वापस आ रहे हैं। मणिने यह समाचार सुनते ही अपने जानेका निश्चय कर लिया। ज्यों ज्यों सेठानीका मन सांसारिक विषयोंकी ओर आकृष्ट होने लगा त्यों त्यों अपने पतिका पत्नीव्रतके विरुद्ध आचरण उसे सालने लगा। पति-सुख प्राप्त करनेकी आकांक्षा भी क्रमशः उसके हृदयमें बढ़ती गयी। इससे मणि जैसी स्वरूपवती बुद्धि-शाली स्त्रीका वहाँ न रहना ही उसे अधिक रुचा।

बम्बईसे रवाना होने पर मणि अत्यधिक प्रसन्न थी। उसकी पुत्रीकी सुन्दर आकृति आँखोंके सामने नाचने लगी जिससे वह अनजानमें हँसने लगी। उसके हृदयमें—कष्ट सहते-सहते कठोर हृदयमें भी—रस झरने लगा। कठोरसे कठोर पर्वतमें से भी जल की चौड़ी धारा निकलती है। मणिकी स्नेहोर्मियोंने उसकी आँखें आर्द्र कर दीं। इसके पूर्व जब वह मीठाकुआँ गई थी वह प्रसंग याद आया, अपना गत दुःखका समय आया, दुःख, कष्ट संतापसे भटकते हुए जो जो अनुभव उसे प्राप्त हुए थे वे सब स्मरण आने लगे, वह आँसू रोक नहीं सकी। गाड़ीके बाहर सिर निकालकर उसने आँसू बहने दिया। इसी प्रकार अपने पूर्व जीवन पर आँसू बहाते हुए वह स्टेशन आ पहुँची जहाँ जोरा भगतसे उसकी पहले पहल भेंट हुई थी। स्टेशन पर उतरी और मीठाकुआँ गई। उसका हृदय कुछ तो आशासे और कुछ भयसे धड़क रहा था। सुरेखा कैसी होगी? क्या वह सुखी होगी? उसका रूप कैसा होगा? उसे कुछ कष्ट तो न हुआ होगा? शिवा पटेलकी बहूने उसे दुःख तो न दिया होगा?

वह मीठाकुआँ पहुँची पर वहाँकी निराशाने साथ न छोड़ा।

शिवा पटेलने कहा कि मोघाराम बम्बईका नाम लेकर लड़कीको कई महीने हुए उससे ले गया। मणिका हृदय दुःखसे पहले ही दग्ध था, उसका वह घाव ताजा हो गया। शिवा पटेलने उसे कुछ दिन ठहरनेकी बहुत विनती की किन्तु वह उसी दिन संध्या समय जिस शहरमें उसे अनेकों प्रकारके नये नये अनुभव प्राप्त हुए थे वहाँ गई। वहाँ दूसरा प्रश्न उसके सामने आया, किसके यहाँ जाय? मोघारामसे कैसे भेंट हो?

आखिर साहस कर वह मारुतिके यहाँ गई। मारुति पहले ही जैसा हँसमुख था। उसने मणिको बड़े ही आदर पूर्वक बैठाया, उसकी स्त्रीने उसका खुले हृदयसे स्वागत किया। किन्तु मोघारामका इतिहास सुनकर उसका हृदय हाथसे जाता रहा। केवल मारुतिने सन्तोषप्रद एक बात कही कि हाईकोर्टमें छोटी अदालतके निर्णयके विरुद्ध अपील की गई है जिससे मोघारामके छूट जानेकी बहुत कुछ आशा है। मारुतिने इसके साथ ही यह भी कहा कि एक अच्छा बैरिस्टर करनेके लिए रुपयेकी जरूरत होनेसे मोघारामका घर बेचनेकी योजना चल रही है।

मारुतिने इसके पश्चात् मोघाराम पर मुकद्दमा चलनेका कारण भी बताया। मणिको उस भलेमानसकी निर्दोष और दुःखी स्थिति पर दया आई। एक समय वह भी निराश्रय थी; आज उसीके कारण बिचारा मोघाराम आधारहीन हो रहा था।

अपनी पुत्रीका पता पूछनेके लिए मोघारामसे जेलमें मिलना जरूरी था, इस विचारको भी त्याग कर मुकद्दमेकी पैरवीके लिए मणि वहाँ रुक गई। एक गरीब बिचारेकी एकमात्र झोपड़ी बिक जाय यह बात वह सहन न कर सकी। मणिको चन्दूलाल सेठका स्मरण आया जो पाँच सौ रुपये मासिककी सिगार फूँक डालते हैं। किन्तु उनसे कैसे माँगे? मणिको मणिकर्णिकाका

दिया हुआ हार याद आ गया, उसे उसने मारुतिको दिया।

मारुतिका बहुत आग्रह देखकर वह उसके यहाँ कुछ दिन रही, दूसरे परिचित लोगोंके सम्बन्धमें भी उसने पूछताछ की।

डाक्टर धनेशचन्द्र वहाँ असफल ही रहे जिससे उन्होंने दक्षिण अफ्रिकामें मिलनेवाली एक नौकरी स्वीकार कर अपनी मातृभूमिको प्रणाम किया।

रावसाहब गम्भीरलाल रावबहादुरका खिताब पाकर विशेष परिश्रम कर बम्बईके सेक्रेटेरियटमें पहुँच गये थे। महायोगी महाराज आखिर एक गाँवसे ऊबकर परदेशमें अधिक भोले, अधिक श्रद्धालु, और अधिक धनी लोगोंकी खोजमें वहाँसे निकल पड़े थे।

मणि चारो तरफसे निराश होकर जैसी आई थी वैसी ही खाली हाथ बम्बई वापस आ गई।

२

सेठ चन्दूलालका नवीन शोध

सेठ चन्दूलाल रंगूनसे लौटकर बोरी बन्दर पर उतरे। उनके साथ एक मित्र भी थे, मुचकुन्द भी उनके साथ लौट आया था। उन्हें कचहरी कुछ विशेष कार्यसे जाना था जिससे उन्होंने मुचकुन्दसे कहा—मुचकुन्द! मिस्टर चौधरीको घर ले जाओ मैं जरा कचहरी और आफिस होकर आता हूँ। अपने तारका जवाब न आनेसे चिन्ता हो रही है।

"बहुत अच्छा।"

मि० चौधरीको बिदाकर सेठ पहले आफिस गये। बम्बईमें पैर रखते ही सेठको मणिका आकर्षण सताने लगा। यात्रामें भी उसकी स्मृतिने साथ नहीं छोड़ा था। इस समय तो उसे देखनेके लिए वह छटपटा उठा। वश चलता तो वे सीधे घर जाते किन्तु काम कुछ आवश्यक आ पड़ा था जिससे लाचार हो गये। सेठके हृदयमें पार्वतीके लिए कुछ विचार आये ही नहीं। उनके लिए घर एक ऐसा जंजाल था जिससे जान छुड़ाना कठिन था, गृहिणी, माँ-बाप द्वारा गलेमें डाली हुई तौक थी। पार्वती जब आई उस समय सेठ बाहर घूमनेके शौकीन हो चुके थे। सेठानीने भी वही मार्ग ग्रहण किया किन्तु वह अच्छे चाल-चलनकी थी जिससे मन्दिरकी धूल छानने लगी। ऐसे शुष्क संसारसे उसका मन ज्यों ज्यों खिचता गया त्यों त्यों वह सेठके मनसे भी गिरती गई और वह उनके लिए भार स्वरूप हो गई। धीरे धीरे सेठने उसे बिलकुल भुला ही दिया।

जो वस्तु नहीं मिलती, उसके पानेके लिए मोह अधिक बढ़ता है। जैसे जैसे मणि सेठको दूर रखती थी वैसे ही वैसे वह उसके पीछे पागल हो रहे थे।

कार्यालय और कचहरीका काम समाप्त कर नियमानुसार जितनी तेज मोटर चलाई जा सकती थी उतनी तेजीसे चलाकर चन्दूलाल घर पहुँचे। उन्हें विश्वास था कि मणि दरवाजे पर खड़ी मिलेगी। कल्पनाशक्ति द्वारा उसके पहरावा आदिका स्वप्न भी वह देख चुका था। मोटरसे उतर कर सेठ ऊपर अपने घरमें गये वहाँ मणि नहीं मिली। अपनी बैठकमें गये। वहाँ भी मणिको न पा वे कुछ निराश हुए साथ ही अपनी लज्जालु, गँवार स्त्रीको अपने मित्र मि० चौधरीके साथ बात करते हुए

देखकर उन्हें विस्मय भी हुआ। कितने ही वर्षोंसे पार्वतीने इस बैठकमें पैर रखना ही छोड़ दिया था, चन्दूलाल क्या करते हैं, किससे मिलते हैं, इसकी भी वह परवाह नहीं करती थी। सेठजी के आश्चर्यका ठिकाना न रहा जब उसने देखा कि उसकी स्त्री पुराने पहरावेके बदलेमें नये जमानेका कपड़ा पहने हुए थी और उसके चेहरे पर भी लाली आ गयी थी।

सेठजीके आने पर सेठानी उठकर जाने लगीं। "बैठो न" सभ्यताके ख्यालसे सेठने कहा।

"मैं भोजनका प्रबन्ध कराऊँ" कहकर सेठानी चली गई। आश्चर्यके जरा कम होने पर उसका चेहरा शर्मसे ढक गया। मि० चौधरीने पार्वतीके साथ बातचीत कर उसके सम्बन्धमें क्या धारणाकी होगी? यह मूर्ख मन्दिर जाने वाली, चिड़चिड़े मिजाज वाली स्त्रीकी गँवारी बातचीतसे वे अपने मनमें क्या सोच रहे होंगे। वह बहुत ही लज्जित हुए और चौधरीको यहाँ भेजने पर पछताने लगे। भला अब मि० चौधरीकी दृष्टिमें उनकी क्या इज्जत रह गई होगी? शरमाते शरमाते सेठजीने मि० चौधरीकी ओर देखा।

"मि० चन्दूलाल! मुझे खबर नहीं थी कि आपकी पत्नी इतनी चतुर हैं?"

सेठ चौधरीका मुँह ताकने लगे। उन्हें ऐसा मालूम हुआ मानों बंगाली उनकी हँसी उड़ा रहा है, किन्तु चौधरीके मुँह पर इस प्रकारका कोई भी चिन्ह नहीं था।

"क्यों?"

"हिन्दी-प्रचार सम्बन्धी उनका विचार सुनने लायक है।"

"चौधरी होशमें बातें कर रहा है या प्रलाप, यह सेठ समझ नहीं सके। पार्वती और हिन्दीका प्रचार! या तो मि० चौधरी

पागल हो गये हैं या उसकी पत्नी ही कोई दूसरी आ गई है। उन्हें और मि० चौधरीको क्या खबर कि मुचकुन्दके छोटे कमरेमें बिखरे हुए ज्ञान और देशभक्तिके कुछ फूलोंको मणिने बीन लिया था और उनमेंसे कुछ पार्वतीको भी दिया था। थोड़े ही समयमें ग्रामोफोनकी तरह सुनी हुई बातें दोहराना पार्वतीको आ गया था।

चन्दूलालने अधिक कुछ पूछनेका साहस नहीं किया, मित्रका यदि उनके पत्नीके सम्बन्धमें ऐसी धारणा हो तो वैसा ही बना रहने देना उन्होंने उचित समझा।

भोजनके समय वह दोनोंको अपने सामने बैठाकर भोजन कराने लगी यह देखकर सेठ और भी अधिक चकित हुए। मि० चौधरी स्त्री-सन्मानके अधिक पक्षपाती थे; जिससे वे सेठकी अपेक्षा सेठानीसे ही अधिक बातें करते थे, सेठानी उनकी बातोंका उत्तर देतीं, जरा हँसती और सेठको भी अपनी बातोंकी पूर्ति करनेके लिए बाध्य करती थीं। चौधरी सन्मानके साथ बातें करते थे। सेठमें तो बोलनेकी समझ ही बाकी नहीं रह गई थी जिससे मणि की तलवारके समान चलनेवाली जीभकी छाप पड़ी रहनेसे पार्वती बड़ी ही सरलतापूर्वक बातें कर रही थी। सेठको अचम्भा हुआ। इस मूर्ख स्त्रीकी होशियारी पर मणिके प्रभावकी छाप थी, उसकी बोली बातचीतके ढंग और शब्दोंका आभास मालूम पड़ रहा था। इस स्त्रीमें होने वाले परिवर्त्तन और उसमें परिवर्त्तनकी करनेवाली—इन दोनोंके विचारमें सेठको कुछ सूझ नहीं पड़ा। भोजनोपरान्त चौधरीको थकावट मालूम हो रही थी जिससे वे तो सोने चले गये। सेठको पार्वतीकी सोहबत खटकने लगी। वह बैठकमें जो बैठी सो उठनेका नाम ही नहीं ले रही थी। पहलेके समान वह अपने कमरेमें क्यों नहीं जा रही है?

सेठने रवाना होते ही एक तार अपनी प्रेमिकाके पास भी भेज दिया था जिससे उसके यहाँ जानेके लिए वह कपड़ा पहरने लगे।

"अब जाओ, जाकर सो जाओ !" सेठने कहा।

सेठानीने उनकी ओर देखा, उसकी आँखोंमें आज भिन्न ही प्रकारका भाव था। बिजलीके चकाचौंध करने वाले प्रकाशमें सेठानीका तेज-पूर्ण मुख पहली ही बार आज चन्दूलालको आकर्षक प्रतीत हुआ सेठने पतलून पहना, कुछ देर तक पार्वती देखती रही, फिर शरमाकर केवल इतना ही बोल सकी "आप ."।

सेठकी भृकुटी चढ़ गई। यह बला यदि लगी तो कैसे जीवन बीतेगा ? सेठने कोई जवाब नहीं दिया। उन्होंने कोट पहना, मनमें बाहर जाने पर जरा क्षोभ हुआ किन्तु यहाँ बैठे हुए ही क्या करें ? पार्वतीका आचार व्यवहार बदल गया तो क्या अपना नियम छोड़ दें। खूँटी परसे अपना हैट उठा लिया।

"मैं बाहर जा रहा हूँ" ओंठ दबाकर दृढ़तासे सेठने कहा।

सेठानी कुछ कहने जा ही रही थीं, उसके काँपते हुए ओठों पर कुछ शब्द आ भी गये पर वह कुछ बोल न सकी।

सेठ हाथमें हैट लेकर घुमाने लगे। उनका मन हिचकिचा रहा था। पार्वतीने शर्म और निराशाके बीच हिलोलें लेते हुए पूछा—कब तक आइयेगा ?

"कुछ ठीक नहीं" कहते हुए सेठजी बाहर निकल गये।

पार्वतीका हृदय बैठ गया, एक आँसू टपक कर उसकी छाती पर गिर पड़ा।

जीवनमें पहली बार रात्रिमें घर छोड़ते समय चन्दूलाल सेठके मनमें पश्चात्ताप हुआ, पहली ही बार रातमें घर छोड़ना उन्हें अखरने लगा। पहले हमेशा जब कभी थकावट अथवा बीमारीके कारण घर पर रहना पड़ जाता था तब पिंजड़ेमें बन्द

जंगली तोतेकी तरह वे असन्तोषसे छटपटाया करते थे आज ऐसा मालूम होने लगा कि मानों उस जंगली तोतेको पिंजड़ेमें रहनेकी आदत सी पड़ गई है।

कार चौपाटी परसे ले चलनेकी आज्ञा दी। उन्हें ऐसा लगा कि खुली हवा सेवन किए बिना काँदावाड़ी जाना असम्भव सा है। जीवनमें पहली बार खुली हवा और नीति दोनों एक मालूम होने लगे।

वहाँसे वे काँदावाड़ी गये वहाँ पर भाड़े वाली सुन्दरी उनकी बाट जोहती बैठी होगी? यदि बाट जोहती बैठी न हो तो? पार्वती बाट देखती होगी? इतने वर्ष नहीं, आज ही क्यों उसे क्षोभ हुआ? क्या मेरी अनुपस्थितिमें किरायेकी सुन्दरियाँ दुःखी होती होंगीं? मैं न आता तो क्या काँदावाड़ी वाली उसके लिए इतनी उत्सुक होती जैसे पार्वती?

तुरत उसका ध्यान आज पार्वतीमें हुए नवीन परिवर्त्तनकी ओर गया। वह इतनी चतुर आज ही हुई या पहलेसे थी? यह ज्ञान उसमें कहाँसे आया? क्या मणिने दिया? मणिका स्मरण आते ही सेठका विचार दूसरी ओर दौड़ने लगा। वह उस पर विजय प्राप्त नहीं कर सके।

आज यदि मणिको मालूम हो जाय कि मैं अपनी पत्नीको छोड़कर काँदावाड़ीमें भटक रहा हूँ तो क्या कभी उस पर विजय प्राप्त हो सकेगी? मनुष्यका स्वभाव विचित्र है। वह भूल गया कि मणि दर दर मारी मारी फिरनेवाली विधवा है, उसे सन्तुष्ट कर अपनी बनानेके लिए वह छटपटा रहा था, वही मणि आज उसके मनमें अकल्प्य सत्ताधारी देवी बन गई। वह क्या कहेगी? क्या सोचेगी? श्रद्धा, प्रेम, भक्ति लोहाको भी कंचनसा दिखाता है, बनाता है। पत्थरको प्रतापी देवाधिदेवकी महत्ता अर्पण करता

है। पत्थर और लोहमें इससे अन्तर नहीं पड़ता बल्कि उसे देव और कंचन माननेवाला स्वयं महत्ता प्राप्त करता है। दर दर भटकनेवाली मणिको आदर्शरूप मानकर हृदयकी श्रद्धाञ्जलि अर्पण करनेसे, देवी रूपमें आराधना करनेसे मणिमें कोई अन्तर नहीं हुआ बल्कि सेठ स्वयं सात्विक, शुद्ध बन गया।

उनकी मोटर काँदावाड़ीमें खड़ी रही, ऊपरसे आनेवाली तबलाकी टंकार कानमें पड़ी; एक मीठी तान सुनाई दी। वह काँप उठा। मणि क्या कहेगी? पार्वती घर पर बैठी हुई क्या सोचती होगी?

उन्हें याद आया कि आते समय पार्वतीकी आँखमेंसे एक अश्रुविन्दु गिरता हुआ दिखाई दिया था। वह विन्दु दृष्टिके सामने आ गया जिससे उसके हृदयमें आघात लगा। सेठका गला बैठ गया, काँदावाड़ी उनका गला घोंटने लगी।

"पेस्तन!" शोफरको पुकारा।

"जी सरकार!"

"मोटर घर ले चलो!" सेठने रुँधे हुए गलेसे कहा।

सेठका यह आदेश सुनकर ड्राइवर पेस्तनको आज बड़ा आश्चर्य हुआ, अपनी श्रवण शक्ति पर उसे संशय हुआ। क्या कहा सरकारने? वह पूछ ही बैठा—

"घर ले चलो" सेठने क्रोधसे कहा।

पेस्तन मोटर कार घरकी ओर ले चला। मोटरके खड़ी होने पर सेठजी विचारसे जागे किन्तु उतरनेका साहस नहीं हुआ। पार्वती क्या करेगी? घर कैसा लगेगा? मोटरसे उतरने की इच्छा ही नहीं हो रही थी, उसे वापस ले चलनेका मन होने लगा।

इतनेमें ऊपरसे पार्वतीकी आवाज सुनाई दी।

"पेस्तन ! क्या सेठजी नहीं आये ?"

अब बाहर निकलनेके सिवा सेठके लिए छुटकारा नहीं था। मोटरसे उतरकर घरमें जायँ या नहीं, इसका वह विचार करने लगे और बिना किसी निर्णय पर पहुँचे ऊपर चढ़ने लगे। पार्वती ने दरवाजा खोला।

"क्यों, तुम अब तक जाग रही हो ?"

"आपकी बाट जोह रही थी।" सेठानीने उत्तर दिया।

हैट खूँटी पर टाँगकर बिना कुछ कहे आरामकुर्सी पर सेठ लेट गये। उन्हें नहीं सूझा कि क्या कहें। घड़ीमें टनटन कर बारह बजा।

"हे भगवान !" सेठजी बोले "आज मुझे हो क्या गया है?"

"क्या हुआ है ?" कहकर धैर्यकी मूर्त्तिके समान सामने खड़ी सेठानीने पास आकर पूछा।

"तेरा सिर। आज मैं बदल गया हूँ या तू ?"

पार्वतीने साहसपूर्वक कुछ कहना चाहा किन्तु लज्जाने मुँह बन्द कर दिया। आखिर काँपती हुई आवाजसे वह बोली—हम दोनों।

सेठ उसे तरेरकर देखने लगे। काँदावाड़ीकी सुन्दरीका स्मरण कर वहाँ अपने न जाने पर विचार करने लगे।

"चलिये उठिये, कपड़ा उतारिये। रात अधिक हो गई है।"

"तुमको यह सब सिखाया किसने ?" बिछे हुए जालको तोड़ना चाहता हो इस प्रकार सेठने पूछा।

"आपने।"

"झूठी बात है, उस अभिमानिनीने" कहकर सेठजी उठे और पार्वतीके पीछे पीछे भीतर चले गये।

३

ग्रेज्युएटका वैवाहिक जीवन

मुचकुन्द इस समय अपने छोटे कमरेमें बैठा हुआ गहरे विचारमें मग्न था। उसके कपाल पर चिन्तासे सिकुड़न पड़ गई थी। वह निराशासे सामने पड़ा हुआ पत्र ठीक उसी प्रकार देख रहा था जिस प्रकार एक निराधार माता दीनता-पूर्वक अपने बालक पर पड़ने वाले क्रूर घातक नरपिशाचकी तलवारको देखती है। उसके भावनामय जीवन पर यह पत्र एक नया ही असर डाल रहा था। उसे रोकनेकी उसमें शक्ति या साहस न था।

पत्र पाणु पंड्याका था, उसके प्रत्येक अक्षरको कालके समान मुचकुन्द देख रहा था।

"चिरंजीव बेटा मुचकुन्द लि ....से प्राणशंकर पंड्या का आशीर्वाद बंचना। आगे यहाँ सब कुशल मंगल है, आशा है तुम भी कुशलपूर्वक होगे। आगे समाचार यह है कि तुम रंगूनसे अब लौट आये होगे और सेठ वगैरह सब लोग आनन्द से होंगे। बेटा! तुम्हें मालूम होगा कि बहू अब बड़ी हो गई है और उसके माँ-बाप बिदा करा ले जानेके लिए बराबर कह रहे हैं; लेकिन तुम्हें तो यहाँ आनेकी फुरसत ही नहीं मिलती। इसलिए बम्बई पहुँचते ही लिखना ताकि मैं उसे लेकर बम्बई पहुँचा जाऊँ। इति"

मात्र पिताके आधीन होकर मुचकुन्दने विवाह किया था।

इस अधीनताका भविष्यमें क्या परिणाम होगा इस पर उसने कभी विचार नहीं किया था। पर अब वह घबड़ा उठा। उसे बार-बार यही विचार आरहे थे किन्तु वह उन्हें दूर करता जाता था।

"बहू ? जिस व्यक्तिको उसका पिता इस नामसे सम्बोधित करता था उसे उसने केवल एक बार देखा था। शादीके समयका तामजाममें सिकुड़कर बैठा हुआ वह ढाँचा सजीव होकर आज उसके सामने आकर खड़ा हो जायगा—वह अपने अज्ञात व्यक्तित्व को विकसित कर जीवनकी सहचरी बनेगी—उस तेरह वर्षकी, अदृष्ट गँवार छोकड़ीके साथ बोलना पड़ेगा, बैठना पड़ेगा, इसका उसने कभी ख्याल भी नहीं किया था। इस विचार मात्रसे मुचकुन्दके रोंगटे खड़े हो गये।

उसे स्त्री कैसी मिलेगी, इस पर उसने कभी विचार भी नहीं किया था। अंग्रेजी लेखकों द्वारा कल्पित सृष्टिकी नायिकाएँ उसके मनमें घर किए हुए थीं। अपनी स्त्रीका आदर्श उन्हीं पर उसने बना रखा था, एवं उसके रूपका आदर्श ग्रीक शिल्पकारोंकी अद्भुत मूर्त्तियों पर था। आज तक एक ही स्त्रीसे उसका संसर्ग हुआ था, वह मणि थी जो स्वरूपवती, चतुर तथा वाक्पटु थी। यह 'बहू' भी क्या वैसी ही होगी ? यह प्रश्न उसे अत्यन्त गहन प्रतीत हुआ।

उसके अन्तःकरणमें मणिने स्थान कर लिया था, उसके जाते ही उसके जीवनमें निराशा आ गई थी। उसके बदलेमें यह अनजान रास्तेकी चलनेवाली जैसी छोकड़ीसे क्या मुझे सम्बन्ध स्थापित करना होगा ? प्रेम और सह-जीवनके विचारोंका यह परिणाम ! यह संसार ! मुचकुन्द काँप उठा। यह संयोग किसने कराया ? माँ दलाल, बाप दलाल, और यह परिणाम। इसीका नाम क्या विवाह है ? पुराना दबा हुआ जोश मुचकुन्दमें पुनः

जोर मारने लगा। पर दूसरे ही क्षण वह निराश हो गया और आत्मघात करने तककी बात सोचने लगा।

मुचकुन्दके हृदयमें एक दूसरा विचार भी उठ रहा था। यह बालिका कैसी होगी? उसके विचार कैसे होंगे? उसकी आशाएँ क्या क्या होंगी? क्या वह पतिव्रता होगी? उसे छोड़ना, दुःख देना उसकी आशाएँ भंग करना—यह क्या मुझे एक सुशिक्षित व्यक्तिको शोभा देगा? उसने सोचा कि आने वाली स्त्रीको सुख न देना धर्म विरुद्ध होगा। मैंने अपना कर्त्तव्य पालन नहीं किया है। किन्तु भविष्यमें भी न कर एक निर्दोष बालिकाके गर्दन पर क्या छूरी चलाऊँ? इसी प्रकारका विचार करते हुए आधी रात बीत गई। आखिर थककर, पराजित हो वह सो गया और बाकी बची हुई रात स्वप्नमें ही बिता दी।

मुचकुन्द चाहे जो विचार करता हो किन्तु पाणुं पंड्या तो यही सोचमें थे कि कब उसका पुत्र बम्बईसे गाँव आयेगा। मुचकुन्दके कलकत्तेसे लिखे हुए पत्रसे उसने अन्दाजा लगाया कि आज मुचकुन्द बम्बई पहुँच गया होगा।

पाणुं पंड्यामें एक महान् सेनाधिपतिको सुशोभित करने वाली तीव्र तेजीसे विचार करनेकी शक्ति थी। मुचकुन्द मूर्ख है वह आने वाला नहीं है। दिन दिन उसकी बहू बड़ी होती जायगी, मुचकुन्दके सम्बन्धमें लोगोंमें कुछ न कुछ गोलमाल चलता ही रहता है। इससे यदि मुचकुन्द आनेमें विलम्ब करे तो पुनः अपनी इज्जत पर पानी फिर जानेकी अत्यधिक सम्भावना है। यह सब आगा पीछा सोचकर बहूको लेकर बम्बई जानेका उसने निश्चय कर दूसरे ही दिन रेलगाड़ी पर सवार हो गया।

मुचकुन्द दो दिनोंमें भी किसी स्पष्ट निर्णय पर न पहुँच

सका। तीसरे दिन प्रातःकाल बिछौने पर पड़ा हुआ वह अनेक भयङ्कर स्वप्नोंका अनुभव कर ही रहा था कि इतनेमें किसीने जोरसे दरवाजा खटखटाया, आँख मींचते हुए उसने दरवाजा खोला। सामने अपने पिताको खड़ा देखा। साथमें एक नाटी मोटी सी बालिका थी जो घूँघट काढ़े हुए थी। मुचकुन्द काँप उठा। पहले तो उसे स्वप्न सा मालूम हुआ जिससे उसने अपनी आँखें मलकर पुनः ध्यानसे देखा तब उसे विश्वास हो गया कि यह सपना नहीं बल्कि ध्रुव-सत्य है। उसका हृदय जो पहलेसे ही बैठा जा रहा था और भी बैठ गया।

पाण्डु पंडयाने घरका प्रबन्ध अपने हाथमें लिया। बहूको यहाँ पहुँचाकर वह चन्दूलाल सेठके यहाँ पहुँचे और सपत्नीक मुचकुन्दको भोजनके लिए न्योता दिलवा दिया। मुचकुन्द बिलकुल हतज्ञान था, केवल उसका हृदय मात्र धड़क रहा था। उसके मस्तिष्कमें दो प्रतिकूल विचारोंने भयङ्कर संग्राम मचा रखा था। एक ओर तो स्त्रीके प्रति उसकी घृणा और दूसरी ओर उसकी कर्त्तव्यपरायणता जोर मार रही थी।

रातमें मुचकुन्द ऑफिससे थकामाँदा आया। उसे ऐसा लग रहा था कि उसके जीवन नाटक का आज नवीन अंक प्रारम्भ होने वाला है। पहले जैसा साहस अब उसमें नहीं रहा, मणिके जानेके पश्चात् वह निराश हो गया था। फिर भी जिस प्रकार भी हो सके यह नया अंक आज प्रारम्भ न होने देनेका मार्ग वह ढूँढ़ने लगा।

सब ओर दृष्टि दौड़ाई आखिर केवल एक ही मार्ग दिखाई दिया—घर का। वह घर गया। पाणुं पंडया भोजन करके रात में घर जाने वाले थे। सेठानी सन्ध्या समय मुचकुन्दकी बहूको घर पहुँचा गई थीं।

मुचकुन्द घर आने पर घबड़ाया। अपरिचित मनुष्य आज उसके घरमें था। असमंजसमें ऊपर चढ़कर उसने दरवाजा खटखटाया। उसकी बहूने दरवाजा खोला और भयसे रसोईं घरमें भाग गई। निर्दोष स्त्रीके हृदय पर किसी तरहकी भी चोट न करनेका मुचकुन्दने निश्चय कर लिया था, इसी निश्चयके साथ यह भी विचार आया था कि वह बिचारी किस उत्साहसे, किस उत्सुकतासे बैठी हुई मेरी बाट जोह रही होगी। यह विचार उसका बिलकुल भ्रममूलक प्रमाणित हुआ। कपड़ा उतारते हुए मुचकुन्दने एक गहरी साँस ली। उसे कुछ सूझ नहीं पड़ रहा था। वह पुस्तक लेकर बैठ गया। पुस्तक इसी प्रसंग पर जहरीले नागके समान चुभने वाली थी—वह थी जान स्टुअर्ट मिलकी—स्त्रियोंकी अधीनता।"

कुछ समय तक मुचकुन्द पढ़ता रहा, फिर सिर ऊपर उठाकर उसने देखा। दरवाजेमें उसकी बहू खड़ी थी। समय हो गया था किन्तु यह कहनेके लिए उसका मुँह नहीं खुल रहा था।

"भोजनका क्या समय हो गया है ?" मुचकुन्दने पूछा।

कुछ 'हाँ' जैसा उत्तर आया। वह उठा और गूँगेके समान एक शब्द उच्चारण किए बिना भोजन करके वह उठ गया। सामने वह बालिका घूँघट काढ़े बैठी हुई परसती गई। मुचकुन्द में बुलानेका साहस नहीं था। भोजन आधा कच्चा, आधा पक्का और बेस्वाद था।

मुचकुन्द उठा और अपने भाग्यको कोसने लगा, इसीका नाम कर्त्तव्यपरायणता है! उसने क्रोधसे अपना ओंठ काट लिया, इस प्रकार कैसे चलेगा ? 'कर्त्तव्यपरायणता' शब्दको अनेक बार बढ़ा बढ़ाकर कहने लगा।

पुनः एक उपन्यास लेकर लैम्पके पास बैठ गया और उसे

पढ़कर अपना क्षोभ कम करनेका प्रयत्न करने लगा। क्षोभमें भी विचित्र प्रकारसे उसका हृदय खिन्न होता हुआ मालूम पड़ा, कर्त्तव्यपरायणताका मनमें से विस्मरण होता हुआ सा लगा। पुस्तक पढ़ते हुए लेखककी समर्थ लेखनीके प्राबल्यमें वह बह चला, पन्नाके बाद पन्ना उलटने लगा। उसका मन सच्चे संसार को भूलकर कल्पना शक्तिके रमणीय प्रदेशमें पहुँच गया, भारतको छोड़कर वह विलायतमें जा पहुँचा। उपन्यास लेखक द्वारा चित्रित अद्भुत युवतियाँ उसके मनमें रमण करने लगीं, इङ्गलैण्डका स्वतन्त्र, साहसी युवक स्वयं वह हो ऐसा भ्रम उसे होने लगा। भ्रमणके संसारमें वह चक्कर लगाने लगा।

पुराने लम्पकी बत्ती एकदम तेज हो गई और चिमनी तड़से बोली। उसके टूटनेके शब्दके साथ मुचकुन्दका ध्यान कल्पना संसारसे हटकर वास्तविक संसारमें आ गया। उसने बत्ती धीमी की—और पुस्तक पुनः उठाने गया—कि एक काली, मोटी, कुछ नाटी बालिकाको सामने खड़ी देखकर पहले तो एकदम मुचकुन्द चौंक उठा। जिस संसारमें वह पहले विचरण कर रहा था वह सच्चा था—या जो उसके सामने खड़ा था वह ?

उसका चित्त व्याकुल हो उठा, उसकी भ्रमणा दूर हो गई। यह संसार ही सच्चा है ! उसके गलेमें साँस आकर रुक गई। बालिका हँस रही थी—हँसी दबा रही थी, उसकी छोटी छोटी आँखें चमक रही थीं। मुचकुन्दको दुःख हुआ, आँखें चढ़ गईं। आँखें बन्दकर वह कर्त्तव्यपरायणताको स्मरण करने लगा।

"बैठ जाओ !" मुचकुन्द बड़े परिश्रमसे बोला। वह बालिका बैठ गई। बैठनेमें कोई लावण्य नहीं था। मुचकुन्दको मणि याद आई जिसका उसने कुछ ही महीने पूर्व इसी घरमें स्वागत किया था, उसके स्थान पर यह ! "तुम्हारा नाम तो काशी है न ?"

थोड़ी देरमें मुचकुन्दने पूछा। बालिकाकी हँसी रुकी नहीं। मुचकुन्दको अपना नाम लेकर सम्बोधन करते हुए देखकर उसे बड़ा अचम्भा हुआ। मुँह पर हाथ रखकर हँसीको रोक रखने मात्रकी भी शिक्षा उसे नहीं मिली थी। मुचकुन्द जरा गम्भीर हुआ। काशीने सिर हिलाकर प्रश्नका उत्तर दिया।

मुचकुन्दने सोचा कि शायद मेरे प्रश्न करनेकी रीत उसे कुछ विचित्र लगी हो। रोनेकी इच्छा हो रही थी फिर भी हँसकर उसने पूछा—बम्बई शहर अच्छा न लगता होगा क्यों ?

"आग लगे इस शहरमें ! मैं तो थक गई।"

"क्यों, इतनेमें ही ?"

"ऊँह, मुआ इतना कितना ?"

मुचकुन्दको इस बोलनेके ढंगसे कँपकँपी छूट गई। उसकी आँखें डबडबा आईं। यही उसकी धर्मपत्नी है !

"तुम्हें पढ़ना लिखना कुछ आता है ?"

"ऊहुँ" काशीने सिर हिलाया।

"किसीने पढ़ाया नहीं ?" मुचकुन्दको लगा कि उसके हृदयकी धड़कन बन्द हो जायगी क्या ?

"मेरी माँ कहती थी ....." आगे वह न बढ़ सकी।

"क्या ?"

"कि पढ़े तो भी बारह मन लकड़ी चाहिये और न पढ़े तो भी।"

मुचकुन्दकी तो बोलनेकी शक्ति बिलकुल ही जाती रही।

"अब तुम्हें पढ़ना चाहिए।"

काशीने सिर हिलाया।

"क्यों ?"

"पढ़ी लिखी स्त्रियाँ जल्दी राँड़ हो जाती हैं।"

मुचकुन्द अपने मनमें बड़बड़ाया—"यदि मैं कल मरता होऊँ तो आज ही मर जाऊँ तो अच्छा।" उसने अपना सिर पीट लिया। उसके कपाल पर पसीना चुहचुहा आया, हृदय मणिको स्मरण कर रहा था। उसके चले जानेसे ही यह परिणाम हुआ, इसे वह मनही मन बड़बड़ा रहा था।

क्या पूछा जाय और क्या उत्तर दिया जाय, यह मुचकुन्दकी समझमें नहीं आया। वह व्यग्र हो उठा। यह घर, यह स्त्री, यह संसार सब छोड़कर भाग जानेकी इच्छा हुई। इस कमरेकी हवा विषैली मालूम होने लगी। इस बालिकाका संसर्ग मृत्यु-तुल्य लगा। मुचकुन्दके मनकी स्थिति ठीक वैसी ही हो रही थी जैसी कि प्लेग वाले घरमेंसे भागने वाले मूषककी होती है। बहुत देर तक वह ऊपर देखता रहा। इसके साथ क्या बातचीत की जाय और इसके साथ क्या संसार, क्या सहजीवन और क्या सहधर्माचरण हो सकता है! मुचकुन्दमें साहस बहुत कम हो गया था और अब तो जो कुछ था वह भी जाता रहा।

उसकी दृष्टि काशीकी ओर गई। जहाँ वह बैठी थी उसीके पास एक पेटी रखी हुई थी। जिस पर सिर रखकर वह ऊँघ रही थी। मुचकुन्द यह देख नहीं सका, वह पुनः सिर पीटने लगा।

मुचकुन्द भीतर ही भीतर मनमें आक्रन्द करने लगा। जिस माँ-बापने यह तौक गलेमें पहना दी थी उसे शाप देने लगा, अपने भाग्यको दोष देने लगा।

भयङ्कर प्रसंगोंके आ जाने पर उनका सामना करनेके लिए मुचकुन्दमें चारित्र्यबल कितना था, कैसा था, इसका चित्रण ऊपर आ चुका है।

इस समय उसपर पूर्णरूपसे प्रकाश पड़ा। न तो उससे भागा गया न सिर उठाकर सामने देखा गया और न बुद्धिमत्तासे

काशीको सुधारनेका प्रयास करनेका निश्चय कर सका बल्कि वह रोने लगा।

सामने पिता द्वारा निकाले हुए नक्षत्रोंके शुभ मुहूर्त्तमें परिणीता धर्मपत्नी जमीन पर खुर्राटे ले रही थी।

४

पुनः बम्बईमें

मणि बम्बई वापस लौट आई, उसका आना पार्वतीको अधिक अच्छा नहीं लगा। स्वाभाविक ईर्षावश मणिको वह दूर रखना चाहती थी। उस बिचारीको बहुत वर्षोंके बाद पति-सुख प्राप्त हुआ था, इससे निर्धन यदि अपने साधारण धनकी चिन्ता करे तो इसमें नवीनता ही क्या है? किन्तु चन्दूलाल सेठ उसे भूल जाने वाले व्यक्ति नहीं थे जिससे वाध्य होकर सेठानीको उसका आदर सत्कार करना पड़ा।

मणि ताड़ गई, वह स्वयं भी रहना नहीं चाहती थी किन्तु महायोगी महाराजके पञ्जेसे मणिकर्णिकाको छुड़ानेके लिए उसका रहना अनिवार्य था। पार्वती भी यह जानती थी इसीसे पहले जैसे ही भावसे उसे रखने लगी।

मणिने आकर मारुति द्वारा बैरिस्टरके पास रुपया भिजवा दिया क्योंकि मोघारामकी अपीलकी सुनवाईका समय नजदीक आता जा रहा था। मणि ऐसा कर स्वार्थ और परमार्थ दोनों

साधनेका प्रयत्न कर रही थी। जब तक वह भटकती फिरती थी, जब तक प्रतिक्षण अपने विरुद्ध खड़े होने वाले नवीन शत्रुका उसे पता न था तब तक तो कोई बात न थी, किन्तु सुखमय जीवनके प्रारम्भ होनेके साथ ही साथ पुत्री वियोगका दुःख उसे कष्टप्रद प्रतीत होने लगा। मुचकुन्दके साथ रहते समय अकेलेपनकी वेदना कम होने लग गई थी, किन्तु अब पुनः अकेली पड़ जानेपर उस वेदनाने उग्र रूप धारण कर लिया था।

मणिके आने पर सेठ चन्दूलाल जरा क्रोधसे मुँह फुलाकर उससे बर्त्ताव करने लगे। उसका तिरस्कार कर मणिने कैसा हीरा हाथसे खो दिया, इसीको वे मणिको जताना चाहते थे। किन्तु मणि पर इस हथकण्डेका कोई असर होते न देख वे कुछ दबे।

इस समय पहला प्रश्न मणिके सामने महायोगी महाराजसे भेंट करनेका था। मणिको पता लगा था कि वह महात्मा बालकेश्वरमें एक धनाढ्य शिष्यके बँगलेको पावन कर रहे हैं। श्रद्धालु भक्तने पूरा बँगला उन्हें सौंप दिया था जिससे मणिकर्णिकाके वहीं होनेकी पूर्ण सम्भावना थी।

मणिकर्णिका-सम्बन्धी मीटिंगमें मणि भी सम्मिलित हुई। महायोगी महाराज किस बँगलेमें उतरे हुए हैं यह खोज निकालनेका भार उसने अपने ऊपर लिया।

इसके पश्चात् सेठ, पार्वती और मणि विचार करने लगे कि किस युक्तिसे महायोगीके पञ्जेसे मणिकर्णिकाका उद्धार किया जाय। अन्तमें यह निश्चय हुआ कि तीनों व्यक्ति महाराजके प्रवचनमें जायँ और मणि घूँघट काढ़कर बैठे ताकि महात्मा उसे पहचान न सके। सेठने महायोगीसे भेंटकर बातचीत करना स्वीकार किया।

यह मसलहत चल ही रही थी कि मुचकुन्द सेठके पास

किसी कामसे आया। मुचकुन्द जानता था कि मणि सेठके यहाँ बराबर जाती है। इसीसे वह सेठके यहाँ बहुत कम आता था पर मणिको भुलानेमें वह समर्थ नहीं हा सका, वह रातो-दिन स्मरण आया करती थी। उसे छोड़कर वह चली गई जिससे मुचकुन्दके मनमें उसके प्रति क्रोध भी आता था। कोई मार्ग अपना क्रोध प्रदर्शन करनेका उसे दिखाई नहीं दे रहा था जिससे वह मन ही मन जला करता था।

मुचकुन्द सीधे सेठके पास गया और जो कुछ पूछना था वह पूछकर चला गया। उसने मणिकी ओर आँख उठाकर भी नहीं देखा किन्तु मणिने उसे देखा। मुचकुन्दका सूखकर काँटाके समान शरीर, उसकी निस्तेज आँखें और पुट्ठे निकली हुई पीठ देखकर उसका कलेजा मुँहको आने लगा। काशीका आना उसे मालूम नहीं था, इससे उसे ऐसा मालूम हुआ मानों उसके ही लिए मुचकुन्द ऐसा घुल घुलकर सूखा जा रहा है। यह विचार आते ही उसके हृदयमें पीड़ा होने लगी, उसे मुचकुन्दकी भलमनसाहत और बुद्धिमत्ता याद आई। क्यों उसने उसे छोड़ दिया ?

"क्यों मणि, क्या विचार कर रही हो? कोई नया मार्ग सूझा क्या?" सेठने आकर पूछा।

"जी नहीं, मैं तो इस पर विचार ही नहीं कर रही थी। मैं तो आपके कर्मचारीको देख रही थी।"

"अभी तक तुम उसे भुला नहीं सकी?"

कुछ वस्तुएँ ऐसी होती हैं जो हृदय पर नक्स हो जाती हैं उनका केवल स्मरण मात्र नहीं रहता कि उन्हें भुला दिया जाय। मालूम होता है आप उचित वेतन नहीं देते। यदि इनकी तबीयत अच्छी न हो तो बाहर घूम आने दीजिये।" मणिने कहा।

"तो मैं क्या करूँ ? कीर्तन ?" सेठने पूछा।

"यह तो इसके बापने इस बिचारेको दुःखी किया है। न मालूम कैसी भूत जैसी पत्नी लाकर उसके गलेमें मढ़ दिया है। मैं समझती हूँ इसीसे वह दुःखी है।" सेठानीने सफाई दी।

मणि सेठानीका मुँह देखने लगी। उसने पूछा—क्या इनकी पत्नी आ गई है ?

"हाँ, देखने लायक है।" सेठने कहा।

इसके पश्चात् बहुत देर तक मणिकर्णिकाके सम्बन्धमें बातें होती रहीं किन्तु मणिका चित्त तो मुचकुन्दके पीछे दौड़ रहा था।

मणि आत्म-निन्दा करने लगी। मैं ही मुचकुन्दके दुःखका कारण हूँ, उसके व्याधिकी जड़ हूँ, मैंने ही उनके सरल विद्यार्थी-जीवनमें विघ्न डालकर यह स्थिति पैदा की है, उन्हें पिताके क्रोधका पात्र बनाकर उनकी आशाएँ नष्ट कीं और स्वयं उन्हें दुःखी कर अब निश्चिन्त सुखमय जीवन व्यतीत कर रही हूँ। पुनः अपना मुख शीशेमें देखकर कहने लगी— स्वयं सुन्दर और तेजस्वी हूँ। पर मेरे ही कारण मुचकुन्द अधमुआ हो रहा है। जिस प्रकार पहले अपने भाग्यको वह कोसा करती था वैसे ही फिर कोसने लगी।

मणि घर गई किन्तु चैन नहीं पड़ा। पहलेकी जलन ताजी हो गई, पहलेकी सदैव रहने वाली भयङ्कर अकेलेपनकी वेदना उसे पुनः सताने लगी। उसका हृदय मुचकुन्दके पीछे दौड़ने लगा इस संसारमें वही केवल उसका निःस्वार्थी मित्र था। उसने मुचकुन्दके जीवनमें कभी भी कष्ट न पहुँचानेका वचन दिया था। अब मुचकुन्दने बापकी आज्ञा मानकर विवाह कर लिया है। अब उनसे मिलनेमें क्या दोष है ? उनकी पत्नी कैसी है, उसे देखकर अपनी उत्कण्ठा दूर करनेमें क्या पाप है ? ज्यों-

ज्यों इस प्रकार वह अधिकाधिक विचार करती गई त्यों-त्यों मुचकुन्दके प्रति आकर्षण बढ़ता गया और उससे भेंट करनेमें उसे कोई दोष भी दिखाई न पड़ा।

५

कर्णिकाकी खोज

मणि महायोगी महाराजके बँगले पर सेठ चन्दूलाल और पार्वतीके साथ गई। गाड़ीसे उतरते समय मणिने घूँघट काढ़ लिया था ताकि वह पहचानी न जा सके।

यहाँ भी स्त्री-पुरुष ठसाठस भरे हुए थे। महाराजका प्रभाव बम्बईमें भी ज्योंका त्यों बना हुआ था। मणि क्षणभरके लिए अपने होशहवासमें नहीं रही। अनेक मास पूर्व जिस लालसासे, जिस लगनसे वह महाराजके मन्दिरमें बैठती थी वही लगन उसे आज पुनः हो आई। बीचमें हुए अनुभव स्वप्नवत् मालूम पड़ने लगे। महाराजकी बाट जोहते समय जैसे उसका हृदय धड़का करता था वैसे ही आज भी धड़कने लगा।

थोड़ी देरमें वहाँ बैठे हुए भक्तजन शान्त हो गये और पहले के समान ही स्वस्थ, शान्त, तेजस्वी महात्मा वही खड़ाऊँ पहने हुए आये और पहले ही की तरह उन्होंने हास्यसे भक्तोंका नमस्कार स्वीकार किया। मणि घूँघटके भीतरसे इस दुराचारी व्यक्तिको देख रही थी।

महाराज बैठे, उन्हें अर्घ्यदान दिया गया, हार पहनाया गया—स्थल भिन्न, समय भिन्न, भक्त भिन्न—किन्तु महाराज वही के वही थे। प्रवचन प्रारम्भ हुआ—वही उच्च विचार और वही मनुष्य-हृदय पर प्रभुता थी! मणि निराश हुई। महात्मा को परास्त नहीं किया जा सकता। महात्माकी आँखें मानों मणि को ही देख रही थीं, उनकी आवाज मानो उसीको सम्बोधन कर रही थी! क्या सभी श्रोताजनको ऐसा ही लगता होगा? प्रवचन पूरा हुआ, आरती हुई, महाराज अपने निजी कमरेमें गये। मणिने ध्यान-पूर्वक वहाँ बैठी हुई स्त्रियोंको देखा किन्तु उनमेंसे कोई भी मणिकर्णिका जैसी नहीं मालूम हुई। सेठ चन्दूलाल महाराजसे मिलनेके लिए निजी कमरेमें गये। मणि निराश होने लगी।

बड़े कमरेमें अब दो-चार पुरुष और तीन स्त्रियाँ रह गई थीं। उनकी ओर उसने दृष्टि डाली। एक परिचित पुरुषको मणि ने देखा— यही महाराजका नमकहलाल नौकर रघुनाथ था। मणि उसके पास गई।

"क्यों रघुनाथ! अच्छी तरह तो हो न?"

रघुनाथने लापरवाहीसे ऊपर देखकर उत्तर दिया—हाँ।

महाराजकी नौकरी कर वह सत्ताधारी बन गया था।

"क्यों मुझे तुमने पहचाना नहीं? मैं मणि हूँ—महाराजके यहाँ थी, भूल गये क्या?"

"बहन! यहाँ इतने भक्त आते हैं कि याद नहीं रहता।"

मणिने देखा कि यह सफेद झूठ बोल रहा है क्योंकि उसे देखकर वह चौंक पड़ा था।

"क्यों? मैं तो वहाँ सात आठ महीना रही।"

"मुझे याद नहीं है, मैं कुछ वृद्ध और भुलक्कड़ हो गया हूँ।"

इतनेमें सेठ चन्दूलाल बाहर आ गये और भक्तजनोंको भीतर प्रवेश करनेके लिए रघुनाथ चला गया।

"सेठजी! इस मनुष्य द्वारा कुछ काम बन सकता है।" धीरेसे मणिने कहा।

"यह कौन है?"

"यह महाराजका खास आदमी है किन्तु यह मेरे हाथ नहीं आ रहा है।"

"अच्छी बात है, सेठानीको लेकर तुम चलो—मैं इसे हिला-डुलाकर देखता हूँ।" मणि वहाँसे चली गई।

× × × ×

दो तीन घंटे बाद चन्दूलाल वापस आये। पार्वती और मणि उनका आसरा देखते हुए बैठे थे। सेठका चेहरा उतरा हुआ था।

"क्यों क्या कर आये?" पार्वतीने पूछा।

"कुछ नहीं, पहले तो रघुनाथ बड़ी उड़ञ्झाई बतियाने लगा, आखिर तीन सौ रुपये पर पानी फेरने पर वह हाथमें आया। तुम्हारा महात्मा पक्का धूर्त्त है।"

"क्यों, क्या हुआ?" मणिने पूछा।

"बम्बई जैसे स्थानमें भला वह कर्णिकाको ला सकता है? इसने तो उसे यहाँ आनेके पूर्व ही यात्रा करनेके लिए भेज दिया, उसके साथ दो तीन और भक्त स्त्रियाँ हैं, यही उसने बताया।"

"कहाँ यात्रा पर गई हैं, यह कुछ पता लगा।"

"कहा कि अभी तो काशी गई हैं, पीछे महाराज जहाँ कहेंगे वहाँ जायगीं। महाराज बड़ा ही जबरदस्त आदमी है।"

"मैं पहले ही कह रही थी। उसे परास्त करना सरल काम नहीं है।"

तीनों असफलता पर एक दूसरेका मुँह देखने लगे।

६

मुचकुन्दके घर पर

मणि सेठजीके घरसे वापस आनेके लिए उठी। उस समय पिछली रात्रिमें उत्पन्न विचार पुनः ताजे हो गये। मुचकुन्द बिचारा किस स्थिति में होगा? वह अपने घर पहुँची किन्तु उसे वही विचार सताने लगे। एक बार मुचकुन्दके घर जाना उसे अत्यावश्यक प्रतीत हुआ। उस दिन उसका चेहरा कैसा पीला, रक्तहीन और उदास था।

विचार कार्यमें परिणत हुआ। वह मुचकुन्दके घर की ओर चली। रास्तेमें पीछे लौट चलने को इच्छा होते हुए भी दृढ़ता रख कर वह गई। ऊपर चढ़कर दरवाजा खटखटाया। अपनी स्थिति का स्मरण आया, यदि सभी बातें यथावत् चलती गई होतीं तो मैं इस समय इस घर की मालकिन होती और मुचकुन्द मेरा होता किन्तु उन्हें पतित-दुःखी होनेसे बचानेके लिए मैं स्वयं छोड़कर चली गई, पर मुचकुन्द तो दुःखी ही बना रहा। विधि की विडम्बना कैसी विचित्र है!

काशीने दरवाजा खोला और सामने एक सुन्दर स्त्री को

खड़ी देखकर मुँह बिचका दिया।

"मुचकुन्द भाई घरमें हैं" मणिने पूछा। काशीका रूप और रंग देखकर उसकी खिन्नता और भी बढ़ गई।

"नहीं, नहीं हैं" कहकर दरवाजा बन्द करनेका काशीने प्रयत्न किया!

"मैं उनसे मिलने आई हूँ" कहकर मणि आगे बढ़ी और दरवाजेमें खड़ी हो गई "मैं मुचकुन्द की मित्र होती हूँ।"

काशी तो दङ्ग होकर देखती रह गई।

श्वसुरालय आनेके समय पीहरवालोंने उसे सब तरहसे तैयार कर दिया था। उसका पति लम्पट और व्यभिचारी है, पारसिन अथवा मुसलमानिनके सम्बन्धसे उसे दो लड़के हुए हैं जिन पर वह अपनी सब कमाई उड़ा देता है। इसी प्रकार की गाँवमें उड़ने वाली अनेकों किंवदन्तियाँ उसके छोटेसे मस्तिष्कमें भर दी गई थीं। इसी ज्ञान-भण्डारके परिणाम-स्वरूप पति को किस प्रकार वशमें करना चाहिये उसकी अनेक मात्राएँ उसके पास थीं। उन्हीं मात्राओंका उपयोग मुचकुन्द पर वह करना चाहती थी! आज रोग स्पष्ट दिखाई दिया। यह सुन्दर स्त्री मुचकुन्द की मित्र बनकर आई है। काशी कुँवरके छोटे मस्तिष्कमें अभिमानका पवन बहने लगा, स्वयं गृहिणी है फिर यह आने वाली कौन? उसने अपना तीर छोड़ते हुए कहा—क्या काम है?

मणिने अन्दर आकर चारो तरफ एक नजर डाल कर गहरी साँस ली। जिस कमरे को वह आरसीके समान स्वच्छ रखती थी उसकी यह दशा?

"काम क्या है? केवल मिलना चाहती थी। तुम्हारा नाम क्या है?

"काशी। तुम्हारा?" जरा तीखेपन से पूछा।

"मणि। अब मुचकुन्द भाई मालूम होता है बहुत देर करके आते हैं।"

काशी को क्रोध आ गया। मणि की चमकीली सुन्दर आँखों को फोड़ डालने की उसकी इच्छा हुई। 'मुचकुन्द भाई' देरसे आवें या जल्दी—इसमें इसके बापका क्या जाता है?

पतिने जिस पारसिन या मुसलमानिनको रख छोड़ा है, उसके मिल जाने पर किस प्रकार उसे दबाऊँगी इसका विचार काशीने कुछ दिन पहलेसे ही कर रखा था। इन विचारोंमें से एक को अमलमें लाते हुए उसने कहा—तुम्हारा पति क्या करता है?

मणि चौंक कर उसकी ओर देखने लगी। काशी झगड़ा करना चाहती है। उसे हँसी आई। इस मूर्खा को क्या पता कि यदि वह मुचकुन्द को छोड़ कर न गई होती तो वह मुचकुन्दके साथ विवाह कर भाग्यशालिनी नहीं बन सकती थी।

"बहन! मेरा पति गुजर गया है" यथासाध्य नम्रतासे मणिने कहा "तुम कब आई?"

"बहुत दिन हुआ। तुम क्या अपने पीहर रहती हो?"

"मेरे ससुराल या पीहर में कोई नहीं है, मैं अकेली ही रहती हूँ, और पाठशाला में पढ़ाती हूँ।" दृढ़तासे मणिने कहा। उसका मिजाज जरा चढ़ गया। केवल मुचकुन्दसे मिलनेके लिए वह समय काटना चाहती थी। "अच्छा, किन्तु मुचकुन्द भाई की तबीयत इस समय ठीक नहीं दिखाई देती, कुछ बीमारी है क्या?"

"कुछ तो नहीं हुआ है, बड़े जमके समान तो हैं।"

काशी की गँवारपन और अधमता देखकर मणि की खिन्नता और भी बढ़ गई। बिचारे मुचकुन्द की सुशिक्षित आत्मा यह किस प्रकार सहन करती होगी? मणि इस प्रश्न का भी उत्तर

देने में निष्फल रही, इससे काशी को किस प्रकार प्रसन्न किया जाय, इसका विचार करने लगी।

"तुम बाहर निकलती हो ?"

"सच पूछो तो यहाँ मुझे किसीका मुँह ही नहीं अच्छा लगता।"

मणिका मुँह बन्द हो गया। इसका भला वह क्या उत्तर दे ? इतनेमें किसीके पैरकी आवाज सुनाई दी। "लो, मुचकुन्द भाई आ गये।" मणिने कहा।

"तुमने कैसे जान लिया ?"

उत्तरमें मणिने केवल हँस भर दिया। उसके हँसनेसे काशी आपेसे बाहर हो गई। इतनेमें मुचकुन्द ऊपर आ गया और मणि उठकर उसकी ओर देखने लगी।

"क्यों मुचकुन्द भाई ! कैसे हो ?"

"कौन मणि...बहन !" मुचकुन्दने घबड़ाकर उत्तर दिया।

"जी हाँ ! मनमें आया कि बहुत दिनसे मिली नहीं हूँ चलकर जरा मिल आऊँ।"

मुचकुन्द मणि पर क्रुद्ध हुआ था किन्तु इस समय उसे देखकर उसे ऐसी सान्त्वना मिली कि वह अपना सब क्रोध भूल गया। फिर भी उसकी आवाजमें कुछ रुखाई आ गई—"अहोभाग्य।"

"इसमें अहोभाग्य किस बातका ? मेरा जी तो कभीसे आनेका कर रहा था। मुझे काशी भाभीको देखना जो था।"

दरवाजेमें खड़ी खड़ी काशी बड़बड़ाई "मरी तेरी भाभी और मरी तू।"

मुचकुन्द नीचे देखने लगा। मणिने फिर पूछा—आपकी तबीयत कुछ ठीक नहीं लगती ?

"अब तो किसी प्रकारकी तबीयत ही नहीं रही।" मुचकुन्दने खिन्नतासे कहा।

मणि क्या जवाब दे, इसका विचार कर रही थी कि काशी बोल उठी—चलो, अब खाने उठोगे कि योंही बैठे गप्प छाँटते रहोगे।

मुचकुन्दका मिजाज गरम हो गया। क्रोधसे होंठ काँपने लगे। वह कुछ कहने जा ही रहा था किन्तु रुक गया।

"अब मैं चलती हूँ, आपको देर हो रही है।"

"तुमने क्या भोजन किया ?"

"नहीं, अब जाकर करूँगी।"

"तब यहीं क्यों नहीं भोजन कर लेती ?" मुचकुन्दकी आवाजमें ऐसी दीनता थी कि मणिको नहीं सूझा कि क्या जवाब दे। "आज कोई तुम्हारी राह तो देखता न होगा ?"

"मेरी राह देखने वाला कौन बैठा है ?" जरा हँसकर मणिने कहा।"

"ठहरो तब मैं कह आऊँ" कहकर मुचकुन्द बगलकी छोटी कोठरीमें गया।

मणि खड़ी रही। बगलकी कोठरी कोई अलग कमरा नहीं था; बल्कि बीचमें काठका टट्टर खड़ाकर एक कमरा दो भागोंमें विभक्त कर दिया गया था। वहाँ जो कुछ बातचीत होती, वह बाहर बिलकुल साफ साफ सुनाई देती थी।

मुचकुन्द भीतर गया। काशी भँवें चढ़ाकर बैठी हुई थी। उसके अपरिपक्व मस्तिष्कमें एक निश्चय स्पष्ट और निश्चल था कि कोई दूसरी स्त्री घरमें आये तो उसके सामने नमना नहीं। मुचकुन्दकी रीत-भाँत अथवा सुशिक्षाका उसे ज्ञान नहीं था, जिससे हर प्रकारसे यथाशक्ति तिरस्कार दिखानेका प्रयत्न करती

रहती थी। उसमें एक प्रकारकी दृढ़ता थी, आगे चलकर घर-वाली बननेके उसमें अनेक गुण थे उन गुणोंको वह दिखाना चाहती थी। मुचकुन्द कुछ कहे इसके पूर्व ही वह जोरसे बोल उठी।

"इस चुड़ैलके लिए मेरे घरमें जगह नहीं है।" काशीने अपनी छोटी आँखोंसे कटाक्ष करते हुए कहा। गरीब विचारा मुचकुन्द मूढ़सा खड़ा रहा। बाहर मणि खड़ी ये शब्द सुनकर अपना होंठ चबाने लगी।

"जरा धीरे बोल।" मुचकुन्दके धीमे स्वरमें दीनता थी।

"किसलिए? मैं क्या इसकी दबैल बसी हूँ? मेरे घरमें यह सब टंटा नहीं चलेगा।"

"अरे यह तू कह क्या रही है?" क्रोधसे दाँत पीसता हुआ किन्तु धीरेसे मुचकुन्द बोला।

"नहीं, यह नहीं हो सकता, भले ही मुझे मार डालो।" कहकर काशी खड़ी हो गई हो ऐसा मणिको लगा।

"हूँ?"

मुचकुन्द काशीके पास जाता हुआ सुनाई दिया, काशी मानो पीड़ासे "अररर" करती हुई सुनाई दी। मणिकी बाहर खड़े खड़े साँप छछुन्दर जैसी दशा थी। उसे कोई रास्ता नहीं सूझ पड़ा। जिस घरमें आदर न हो वहाँ ठहरना उसे अच्छा नहीं लगा और बिना कहे हुए जाना भी उसे सभ्यताके विरुद्ध मालूम पड़ा।

थोड़ी देरमें मुचकुन्द बाहर आया। उसका चेहरा अपमान और क्रोधसे तमतमा रहा था। मणि तुरत बोल उठी—मुचकुन्द भाई! आज मुझे जाने दो।

मणिने उपरोक्त बात इस प्रकार अनजान बनकर कहा मानो

उसने कुछ सुना ही नहीं "मेरे यहाँ एक सज्जन आने वाले हैं, ठहरनेसे देर हो जायगी।"

मुचकुन्द आग्रह करने जा ही रहा था कि काशी रीसकर एक कोनेमें बैठी थी इसका ख्यालकर उसने मणिसे अधिक आग्रह न करना ही उचित समझा, इससे कमसे कम अपनी कुछ तो इज्जत बची रह जायगी। वह खिसियाकर हँसते हुए बोला— सचमुच ?

"हाँ, फिर किसी दिन आऊँगी। चलती हूँ बहुत देर हो गई।

मणिकी आँखें भर आईं। मुचकुन्दकी इस दीन स्थिति पर दया आरही थी। उसकी सच्ची दशाका ज्ञान मणिको हो गया है जिससे वह ऐसी दया दिखा रही है, यह देखकर मुचकुन्दके मनमें उसके प्रति जो प्रेम था वह और भी दृढ़तर हो गया। उसे पहुँचानेके लिए वह बाहर तक आया।

"मणि बहन! फुरसत मिलने पर फिर अवश्य आना।"

"आप ही किसी समय मेरे यहाँ आ जाँय तो कैसा? इस समय निकलना मेरे लिए जरा कठिन हो रहा है।"

"अच्छा, ऐसा ही सही।"

मणिके जानेके पश्चात् बहुत देर तक वह उसे देखता रहा। कैसी स्त्री खोकर कैसी मिली? इतने दिन बाद मणिके प्रति उसके मनमें जो रोष था वह अदृष्ट हो गया, तरंगे अधिक सबल हो गईं और अपने जीवन पर असन्तोष बढ़ा। कैसी उसकी स्थिति है—कैसी अधमता—कैसा पत्नीका सुख है! आज उसके वैवाहिक जीवनका दुःख हजारगुना होकर उसके हृदयको छेदने लगा। खड़ा खड़ा थक जाने पर ऊपर जानेका उसने विचार किया। ऊपर किसके लिए—किसके घर—कौनसे सुखके लिए? जीवन किसके लिए? वह बड़बड़ाया "मणि! मणि! यदि तूने

मेरा कहना मान लिया होता !" एक गहरी साँस लेकर, ऊपर जानेका विचार उसने त्याग दिया और घूमनेके लिए वह निकल पड़ा ताकि थक जाने पर रातमें कमसे कम नींद तो आवे।

दो तीन घंटे घूमनेके पश्चात् वह घर आया। काशी दरवाजा बन्द करके सो गई थी। जिसका संस्कार तुच्छ होता है उसका जीवन सरल और सुखी होता है। निर्जीव वस्तुएँ इधर उधर पहाड़के समान पड़ी रहती हैं और उनमें कुछ भी विचार उत्पन्न नहीं होता; किन्तु जीव वालीमें कीड़े पड़ जाते हैं।

७

बातचीत

मुचकुन्दको घर नरकके समान लगने लगा। पत्नीको देख-कर उसे कँपकँपी आ जाती थी। उसके साथ अब एक दिन, एक रात, एक क्षण भी काटना कठिन हो गया, अब तक जैसे तैसे वह निर्वाह करता चला जा रहा था किन्तु अब उसके धैर्यने भी जवाब दे दिया। ऐसी स्त्रीके साथ उठना-बैठना, खाना-पीना आदि करनेकी अपेक्षा मर जाना उसे हजार गुना अच्छा लगा। ऐसे विचारोंमें तल्लीन वह लेट गया, किन्तु नींद उसे जरा भी नहीं आई।

सबेरे उठते ही वे ही विचार पुनः उठने लगे। मणिका निमन्त्रण याद आया। उसका मन मणिको देखनेके लिए, उसके साथ बातचीत करनेके लिए लालायित हो उठा। ज्यों ज्यों काशीको देखकर उसके प्रति उसकी घृणा बढ़ती गई त्यों त्यों यह इच्छा

भी प्रबल होती गई। उसे छोड़कर मणिके पास जानेकी उत्कण्ठा हुई किन्तु सविताका वरेण्य मार्ग बुद्धिदाता है। उसकी तेज किरणोंमें रात्रिके अन्धकारमें खड़े किए हुए मनोराज्यको भेदने की अद्भुत शक्ति है; मुचकुन्दको कर्त्तव्यपरायणता दृष्टिगत हुई। मणिके पास जाकर अपनी स्त्रीका फरियाद करनेका नाम ही क्या पौरुष है? दाँत पर दाँत बैठाकर उसने अपनी इच्छाको दबानेका प्रयत्न किया और अपना नित्य-कर्म प्रारम्भ किया। पर काशीको घरमें इधरसे उधर फिरती हुई देखकर, उसका बातचीत करनेका ढंग, उसकी रहन-सहन, उसका पराक्रम आदि स्मरण आते ही उसके हृदयमें लपटें उठने लगीं।

जिस मनुष्य का मुँह अच्छा न लगे, जिसकी बोली विष-तुल्य लगे, जिसके साथ रहने से अंग अंग काँप उठे उसके साथ रहना नरक के समान है। मुचकुन्द इस समय नरक में पड़ा था। कर्त्तव्यपरायणता की दृष्टि से, अपने मनमें उस नरक को स्वर्ग बनानेका प्रयत्न कर रहा था। किन्तु नरक तो आखिर नरक ही। जनक विदेह जैसे नरपुंगव तो इसे देखकर व्याकुल हो ही उठे; यह बिचारा तो एक सीधा-सादा ग्रेजुएट था!

मुचकुन्द की उलझन का पार नहीं था। वह इस नरक से भागना चाहता था, मणिका सुखमय संग करना चाहता था। वह सब होते हुए भी कर्त्तव्यपरायणता की रक्षा करनी थी, जिसके साथ नरकमें रहता था। जीवन विचित्र है, इच्छाएँ उससे भी अधिक विचित्र होती हैं।

सन्ध्या समय उसका पैर मणिके घरकी ओर ही जाने लगा, बड़े परिश्रम से वह उसे घसीटकर उस ओरसे वापस ले आया। उसने पुन: मणि से न मिलने का निश्चय किया और उसी निश्चय के अनुसार वह घर चला आया।

घर पर काशीको देखकर उसके हृदयकी ज्वाला भभक उठी। इस स्त्रीके साथ जीवन कैसे बीतेगा ? उसने विचार किया कि थोड़े दिनके लिए इसे यदि नैहर पहुँचा दूँ तो हृदयकी जलन शान्त हो जायगी, किन्तु यह हो कैसे ? वह निराश होकर बैठ गया।

"वह तुम्हारी ....कुब्जा फिर मिली थी क्या ?" घरमें पैर रखते ही काशीने प्रश्न किया।

यह सुनकर मुचकुन्द चौंक उठा। उसकी आँखें क्रोध से लाल हो गईं। टेबुल पर लकड़ीका कागज दबानेका पेपरवेट रखा हुआ था उसे उठाकर उसने मारा। काशी जरा हट गई जिससे वह दीवाल में जाकर टकराया। दूसरे ही क्षण मुचकुन्द को होश आया—उसने स्त्रीको मारा। उसका संस्कार, उसकी शिक्षा, स्त्रियोंके प्रति उसकी श्रद्धा—यह सब कहाँ गयी ? अधमके साथ वह भी अधम हो गया।

वह उठा और कपड़ा पहनकर बाहर घूमने निकल गया। भूख लगने पर कुछ उसने खाया और अधिक रात तक क्षुब्ध आत्माको शान्त करने के लिए समुद्रतट पर बैठा रहा। कुछ शान्ति मिलने पर घर आया।

दूसरे दिन शरीर कुछ भारी मालूम हुआ। उसका शरीर दिनोंदिन सूखा तो जा ही रहा था उसमें यह एक व्याधि और भी आ गई। काशीको उसकी कुछ भी परवाह न थी। वह निश्चिन्तता पूर्वक भोजन-शयन करती और पतिका दुःख देखकर उसकी विजय हुई है ऐसा समझकर प्रसन्न होती थी। उस दिन भी मणिकी ओर मुचकुन्दका भयङ्कर आकर्षण हुआ किन्तु उस पर विजय प्राप्त कर वह घर आया। आज बाहर जानेकी शक्ति बिलकुल नहीं रह गई थी, उसका अंग अंग टूट रहा था। न तो

काशीने कुछ पूछा और न उसने कुछ कहा। मुचकुन्दने कह दिया कि आज मैं भोजन नहीं करूँगा; अतः काशीने जाकर प्रसन्नता-पूर्वक भोजन कर लिया।

तीसरे दिन बिछौने परसे उठनेमें उसे कठिनता मालूम पड़ी फिर भी अपने जीवन के प्रति घृणा हो जानेसे वह कठिनता व कष्टको तुच्छ समझकर उठा। उसने समझा कि भगवान जमराज उस पर कृपाकर उसे लेने के लिए आ रहे हैं। इसी समय उसे मणिका पत्र मिला।

प्रिय भाई मुचकुन्द,

दो दिनोंसे आपकी प्रतीक्षा कर रही हूँ किन्तु आप आये नहीं। आज अवश्य पधारनेकी कृपा करें।

आपकी—

मणि

पत्र छोटा होने पर भी मुचकुन्द को गम्भीर अर्थ-युक्त लगा। उसकी रग-रग में रक्त अधिक प्रबलता से बहने लगा। वह अधिक समय तक दृढ़ता नहीं रख सका। निर्बलता के सामने उसकी दृढ़ता पिघल जाने की तैयारी में थी, इस पत्र ने उसमें अग्नि का काम किया। वह उठ कर मणि के घर चला।

मुचकुन्द के लिए इतना चलना कठिन हो गया और मणि के मकान की सीढ़ी चढ़ने से तो उसका होश हवास ही जाता रहा, उसकी सांस फूलने लगी जिससे वह वहीं बैठ गया। थोड़ी देर में दम लेकर वह उठा और मणि की कोठरी खोजते हुए उसके सामने जाकर खड़ा हो गया।

उसने दरवाजा खोला और मानों स्वर्ग का द्वार खुला हो इस प्रकार कमरे की स्वच्छता और सादापन देखकर उसे शांति मिली। मणि बैठी एक लड़की को पढ़ा रही थी।

"ओ हो हो! मुचकुन्द भाई!" कह कर मणि खड़ी हो गई। उसके चेहरे पर लाली दौड़ गई; उसके होंठ स्वागत के अक्षरों का उच्चारण करते हुए एक दूसरे से दूर ही रुके रह गये। उसकी आँखें—उसकी भयङ्कर तेजस्वी आँखें—हँस उठीं। मुचकुन्द के हृदय पर अमृत की वर्षा हुई। वह थक कर चूर हो गया था जिससे कुछ कहे बिना तकियाके सहारे जाकर बैठ गया। 'विमला' मणिने अपने पास बैठी हुई बालिकासे कहा—जा, आज छुट्टी है, अब कल आना।"

बालिका उठी और कहीं गुरुजी अपने विचार पुनः न बदल दें इस डरसे तुरत वहाँसे भागी।

"मुझे स्वप्नमें भी ख्याल नहीं था कि आप अभी आ जायँगे। क्या मेरा पत्र मिला?" मणिने पूछा।

जवाबमें मुचकुन्दने सिर हिला दिया।

"परसोंकी अपेक्षा आपकी तबीयत आज अधिक खराब मालूम पड़ती है। क्या डाक्टरको दिखाया था?" जरा चिन्तासे मणिने पूछा।

"डाक्टर-फाक्टर किसीके पास मुझे जाना नहीं है। मैं जीवनसे तंग आ गया हूँ, मुझे तो अब मरना है? अब जीवन धारण करूँ तो किसके लिए?"

"ठहरिये, जवाब देती हूँ, जरा चा तैयार कर लाऊँ" कहकर मणि उठ गई।

मुचकुन्दने मणिको बिजलीके समान चपलतासे जाते हुए देखा। बहुत दिनों बाद आज उसने उसके काम करनेके मोहक ढंगको देखा था। चा मुचकुन्द के पास रख मणि उसके सामने आकर बैठ गई।

"बोलिए, अब क्या कहते हैं? दूसरी बातें पीछे होंगी,

पहले आप डाक्टरके पास जाकर दिखा आइये।"

"नहीं।"

"क्यों ?"

मणि बहन ! मणि बहन !! जीनेकी अपेक्षा मृत्यु मुझे हजार गुना सरस मालूम पड़ रहो है। तुम तो चली गईं, तुमने समझा इससे मेरा उद्धार हो जायगा। देखा ! अपने निर्णयका क्या फल हुआ ?" कटुतासे मुचकुन्दने कहा।

"हाँ, भाई ! सच है, मैंने भी इस परिणामकी कल्पना नहीं की थी।"

"परिणाम ! तुम्हारे जाते ही मेरा सब कुछ चला गया। मुझे जीवन विषमय हो गया, मैं भावना-भ्रष्ट हो गया। इसके पश्चात् मेरे पिताने मुझपर जो जो अत्याचार किये, सबको मैंने सहिष्णुतापूर्वक सहन किया। मेरी सभी कल्पनाएँ नष्ट हो गईं—तुम चली गईं। फिर क्यों मैं किसीका सामना करूँ ? किसके लिए करूँ ?"

मुचकुन्द जरा दम लेने लगा। मणिकी आँखें केवल आश्वासन दे रही थीं। गहरी साँस लेकर मुचकुन्द आप-बीती स्वयं ही सुनाने लगा :—

"पीछे मेरा विवाह हुआ, यह भूत मेरे पीछे लगा, तुमने देखा—कैसा ब्रह्म राक्षस है ? मणि बहन ! मृत्यु अच्छी है, रोम रोममें कीड़ा पड़ जाय वह अच्छा है किन्तु ऐसी स्त्री मिलना अच्छा नहीं। मेरी संस्कृति, मेरी इच्छाएँ, मेरी आशाएँ—सभी इस धर्मपत्नीके साथ नष्ट हो गईं। इसकी अपेक्षा मर जाना अच्छा है।" काँपते हुए मुचकुन्दने पुनः दुहराया।

"भाई ! इतना क्यों व्याकुल हो रहे हो ? तबीयत और भी

खराब हो जायगी। यह क्या अब बदल सकनेकी बात है? अब तो किसी प्रकार निर्वाह करनेसे ही काम चलेगा।"

"किसका निर्वाह करूँ? यह तो जहरीली नागिन है, क्षण प्रतिक्षण मेरा लोहू चूसती जाती है। देखती नहीं हो कि दिनों-दिन मैं मृत्युके नजदीक पहुँचता जा रहा हूँ।"

मणिकी आँखें डबडबा आईं। वह इस आक्रन्दको न सुन सकी। "मुचकुन्द भाई! क्यों इतना विलख रहे हो? यह रोग क्या छूटने वाला है?"

"मरूँगा तब तो छूट जायगा न? तुम्हें क्या खबर कि यह दुःख कितना दुःसह है।"

"मुझे खबर नहीं है? अपने विवाहसे मैंने इतना मजा लूटा है कि सब कुछ समझ सकती हूँ।" मणिने स्नेहसे कहा "एक प्रकारसे या दूसरे प्रकारसे समाजने हम दोनोंको असह्य पीड़ा पहुँचाई है। पर किया क्या जाय?"

"क्या करूँ? मैं कहाँ जाऊँ—किससे कहूँ? तुमसे इतना भी कह सकता हूँ, पर कोई रास्ता सुझाई नहीं दे रहा है।"

"दूसरा रास्ता ही क्या है?" मणिने कहा "जैसे भी हो निभाना तो पड़ेगा ही, इसके सिवा दूसरा कोई चारा नहीं है।"

"निभाना! किसलिए? क्या इसके बापका कर्जदार हूँ? आदर्श, सुख, मेरा जीवन सब कुछ नष्ट हो जाय फिर भी मुझे निभाना पड़ेगा? मेरा वश चले तो सब बन्धनोंको तोड़कर फेंक दूँ।"

"भाई!" मणिने सान्त्वना देते हुए कहा "मेरे भी ऐसे ही विचार थे, मैं भी ऐसा ही करनेके लिए छटपटा रही थी। मैं इन सब का अनुभव कर चुकी हूँ। आखिर में देखा कि सबका अन्त दुःख ही है।

"तब जीनेसे लाभ ? मृत्युका क्यों न आलिंगन किया जाय ? इन दुःखोंको क्यों सहता जाऊँ ?" काशीके साथ जीवन-यापन ? हे भगवन् !" इन शब्दोंके साथ पुनः मुचकुन्दका आपाद-मस्तक काँप उठा।

"दूसरा मार्ग ही क्या है ? भाई ! मैं तो सब कुछ देख चुकी हूँ। पुरुष या स्त्री—जो भी जरा सुशिक्षित हुए कि उन्हें भोग लगा। लम्पट हुए बिना छुटकारा नहीं है। दो प्रकारका जीवन अंगीकार करो—काशीके साथ काशी जैसे हो जाओ। तभी कुछ शान्ति मिलेगी।

"जीवन-निर्वाह करनेका मैं बहुत प्रयत्न करता हूँ, किन्तु काशीके साथ रहना तो असम्भव सा है ?" कहकर मुचकुन्द अति नैराश्यसे नीचे देखने लगा।

"भाई ! ज्यों ज्यों इस प्रकर विचार करोगे त्यों त्यों दुःख अधिक बढ़ता जायगा।"

"भाग्य !"

"किन्तु ऐसा करनेसे लाभ क्या है ? इसकी अपेक्षा यह कहीं अच्छा है कि साहसकर अपनी भावनाओंको प्रभावशाली बनाओ। घरकी बात बिलकुल भुला दो। अपने जीवनको एक महान् भावनासे पूर्ण कर दो। ईश्वरने क्या जीवन इसी प्रकार रोने कलपनेके लिए दिया है ?"

मुचकुन्दने फीकी, निरस हँसीके साथ कहा—अब मेरी भावना ही कहाँ रही ? तुम्हारे साथ वह भी प्रयाण कर गई।

"मैं कहाँ गई हूँ ? मैं तुम्हारी बहन हूँ और सदैव वही बनी रहूँगी।"

मुचकुन्दका हाथ अनजानमें मणिकी ओर बढ़ा किन्तु उसने

तुरत उसे पीछे हटा लिया। मुचकुन्दने गहरी साँस ली, अपना हाथ दूसरेको देनेका अब उसे अधिकार ही क्या?

"बहन! अब आज्ञा दो; बहुत देर हुई।"

"हाँ हाँ, पर डाक्टरके यहाँसे होकर।"

"देखा जायगा।"

"नहीं, देखा नहीं जायगा, मेरी सौगन्ध।" मणिकी आँखें स्नेहार्द्र थीं। मुचकुन्द उस आर्द्रताको देखकर काँपता हुआ सा मालूम पड़ा। वह मणिकी आँखसे आँख मिलानेमें असमर्थ था। नीचा सिर किए हुए आज्ञा लेकर वहाँसे धीरे धीरे चला।

मणि उसीके विचारमें तल्लीन रही।

८

काशीका रोष

काशी अन्य सभी बातोंमें चतुर थी। उसने मुचकुन्दको पत्र पढ़ते हुए देखा था, जल्दी जल्दी बाहर जाते हुए और वापस आने पर उसे कुछ कम दुःखी देखा। उसके वहमी स्वभावमें मणिका ध्यान आया। दो और दो चार करते उसे देर न लगी। इस परिवर्त्तनका कारण मणिही है उसने इसे तुरत ही समझ लिया।

मुचकुन्द अस्वस्थ दिखाई देता था, इसकी उसे चिन्ता नहीं थी, वह आज कुछ कम पीड़ित दिखाई दिया इससे वह क्रुद्ध हो उठी। वह सबेरे आया हुआ पत्र खोजने लगी। मुचकुन्द भूलसे

उसे टेबुलकी दराजमें छोड़ गया था जिससे वह काशीके हाथ लग गया। उसके लिए 'काला अक्षर भैंस बराबर' था। पड़ोसके एक लड़केको ऊपर बुलाकर उसने वह पत्र पढ़वाया। पत्रका आशय सुनकर वह आपेसे बाहर हो गई। वह दुष्टा मेरे पतिके साथ पत्र-व्यवहार करे। उसका इतना साहस!

तुरत कपड़ा बदलकर वह बाहर निकली और चन्दूलाल सेठके यहाँ पहुँची। वहाँ पार्वतीसे मणिका मकान दिखला देनेके लिए कहा। बातको सच्ची बनानेके लिए यह भी कहा कि मुचकुन्द ही ने उसे वहाँ जानेके लिए कहा है और उसकी पूर्तिमें पत्र पर दिया हुआ मणिका पता भी बता दिया। पार्वतीको कुछ आश्चर्य तो हुआ फिर भी उसने एक नौकर उसके साथ कर दिया। उसे यह भी पता चला कि मणि प्रायः साढ़े तीन बजे घर पर पाठशालासे आया करती है। काशी उसी समय मणिके घर गई।

मणिके मनकी स्थिति विचित्र थी। मुचकुन्द आया तो उसका हृदय पूर्ववत् ही स्नेहपूर्ण था, यह देखकर वह प्रफुल्लित थी। उसकी अवस्थासे खिन्न थी। काशीके कारण उसे दुःखी देखकर दयार्द्र बन गई थी और इन सब मानसिक स्थितियों पर स्वच्छ मीठे प्रेमका आवरण चढ़ा हुआ था।

मणि काशीको देखकर चौंक उठी, इस प्रकारके मिलनेकी उसे स्वप्नमें भी आशा न थी। मणिने उसका सादर स्वागत किया, उसके आदरको दुत्कारकर काशी अपना क्रोध प्रकट करने लगी। काशी पूर्ण गँवार थी, साथ ही उसे सुशिक्षा भी नहीं दी गई थी जिससे शब्दकोश परिमित और गन्दा था, उसका क्रोध निर्लज्ज और भयङ्कर था। इन सबका प्रयोग कर उसने मणिको परास्त कर दिया। बिचारी मणिके कानोंमें कीड़े बुदबुदाने लगे, उसकी आँखें क्रोध और अपमानसे अश्रुपूर्ण हो गईं, उसके

हृदयको इस स्त्रीकी अधमताने दो टूक कर दिया। यदि दूसरे किसीने इसका आधा भी कहा होता तो उसका वह मुँहतोड़ जवाब दे सकती थी, घरसे निकाल बाहर कर सकती थी किन्तु यह तो मुचकुन्दकी पत्नी थी। वह कुछ भी नहीं बोली, सब कुछ चुपचाप सुनती रही और काशीके जाने बाद सौ सौ आँसू रोई।

काशीको शान्ति मिली। उसने अपनी विजय-पताका फहरा दी थी, उसके मनमें मुचकुन्दके प्रति एक प्रकारका तिरस्कार आ गया था जिससे उसे मुचकुन्दका तनिक भी भय नहीं था। उसकी भलमनसाहत मूर्खतापूर्ण है इसका उसे पूर्ण विश्वास हो गया था। रात्रिके समय मुचकुन्दके घर पर आने पर काशीने अपने दिग्विजयका इतिहास आदिसे अन्त तक कह सुनाया।

मुचकुन्द दिन भरकी थकावट, निर्बलता और निराशासे बिलकुल ही मृतप्राय हो रहा था, उस पर यह सुनकर उसके क्रोधका पारावार नहीं रहा। उसकी सफेद आँखें भयजनक मालूम होने लगीं। उसकी श्वाँस जोर जोरसे फूलने लगी। पहले तो वह बिना कुछ बोले हुए दाँत पीसता रहा। फिर खड़ा हो गया, उसका हाथ काँप रहा था। टेबुल पर एक रूल पड़ा हुआ था। उसे उसने देखा—उठाया और काशी पर जोरसे फेंक कर मारा। इस क्रोधके आविर्भावसे उसकी जीभ खुल गई—बद-जात! क्या मेरा जी लेनेके लिए पैदा हुई है?

दूसरे ही क्षण वह वहाँसे भागा। उसका शिर घूम रहा था। मणिके लिए कहे गये अपमानके शब्द मानो उसे ही कहे गये हों ऐसा उसे प्रतीत हुआ; और काशीका मुँह अब न देखनेका उसने दृढ़ निश्चय किया। इसके उपरान्त मणिके मनमें कैसे कैसे विचार आते होंगे, इसका ख्यालकर उससे क्षमायाचना करनेका संकल्पकर वह मणिके घरकी तरफ चल पड़ा।

९

हृदय निर्दोष है या दूषित ?

मणि दिनके दुःखद अनुभवसे उदास हो गई थी। मुचकुन्द से मिलकर, उसके गृहजीवनमें हस्तक्षेप कर उसने उसे दुःखी किया, काशीको क्रुद्ध किया एवं मुचकुन्दके सांसारिक सुखको सत्यानाश कर डाला था। जिस प्रकार वह पहले स्वयं अपनेको दोष दिया करती थी वैसे ही दोषी समझ हृदय भर जानेसे बैठकर आँसू बहाने लगी।

इतनेमें किसीने जोरसे दरवाजा खटखटाया। उसे आश्चर्य हुआ। इस समय अब फिर कौन? मणिका निडर हृदय भी भयाकुल हो गया। उसने धीरेसे दरवाजा खोला। थका, हाँफता हुआ, श्मशानसे लौटे हुए प्रेतके समान मुचकुन्द भीतर आकर लड़खड़ाकर जमीन पर बैठ गया। मणिका हृदय उसकी यह दशा देखकर दहल उठा।

"भाई! भाई! यह क्या?" उसने अपनी मर्यादा भूलकर मुचकुन्दका हाथ पकड़कर उसे बैठाया। मुचकुन्द जोर जोरसे हाँफता हुआ बैठा रहा। मणिने पानी लाकर दिया जिसे उसने पीया। कुछ स्वस्थ होने पर उसने कहा—मणि बहन! यह कुब्जा तुमसे क्या कह गई?"

"अररर! केवल इसके लिए आपने इतना कष्ट किया? मुझे तो उसके कथनसे कुछ भी कष्ट नहीं हुआ, आप व्यर्थ क्यों अपना चित्त दुःखी कर रहे हैं।"

"मणि बहन! यह—"

"यह बात ही जाने दो।" मणिने जरा हँसते हुए कहा। मणिकी हास्य-किरणोंसे मुचकुन्दका क्रोध शान्त हुआ।

"जाने कैसे दूँ ? यह तो मेरी जान लेने पर तुली हुई है—जहाँ जाती है वहीं विष बो आती है। ओह ! तुम्हें क्या क्या कह गई होगी।"

"उसने तो कुछ भी नहीं कहा।"

"कुछ नहीं कैसे ? तुम इसलिए हँसती हो कि मैं दुःखी होऊँगा, किन्तु मुझे सब कुछ पता है।"

"क्या पता है ? व्यर्थके बकवादसे लाभ ?"

"व्यर्थ ? मुझे पता है कि तुम्हारे हृदयको चोट लगी होगी-तुम मेरी कालिका-माताके क्रोधसे अवश्य दुःखी होगी—उसके शब्द विष-तुल्य रहे होंगे।"

"भाई ! ये विचार अपने मनसे दूर कर दो। मुझे अपने जीवनमें अनेकों प्रकारके अनुभव हुए हैं उनमें एक और सही। आपहीने न एक दिन एक कहावत कह सुनाई थी—जिसका आशय था कि मकड़ीके थूकते रहने पर भी जुगनूँ प्रकाश करता ही रहता है।

"मणि बहन ! मुझे लज्जित न करो, तुम्हारा हृदय बहुत विशाल है, तुम्हें सब कुछ शोभा देता है।"

"नहीं, यह बात नहीं है। अन्तर केवल इतना ही है कि अधिक दुःख सहते सहते मैं उसकी अभ्यस्त हो गई हूँ और आपका दुःख अभी नया है।

"नहीं, देखो मनमें कुछ बुरा मत मानना। काशी मेरी पत्नी नहीं है बल्कि मेरे पूर्वजन्मकी शत्रु है। मैंने तो समझा था कि मुझसे नाराज हो जाओगी और फिर मुझसे भाषण भी नहीं करोगी।"

"पागल हो गये हैं क्या ? जो कुछ काशीने कहा, सब मैंने सुना—मात्र इसलिए कि वह आपकी पत्नी है नहीं तो क्या आप

मुझे पहचानते नहीं ? झोंटा पकड़कर बाहर निकाल देती।"

"मणि बहन! मैं झूठ नहीं कह रहा हूँ—तुम्हारे मिल जानेसे हृदयको जरा शान्ति मिली नहीं तो मैं दुःखी और निराधार हो रहा हूँ।"

"किसलिए ?"

"बहन! इस प्रेतके साथ दिन काटना ही बड़ा भयानक प्रतीत हो रहा है।" कहकर मुचकुन्द काँप उठा। कठिन पीड़ा से उसकी आँखोंमें आँसू भर आये "बहन! लड़कपनमें मैंने बहुतसे स्वप्न देखे होंगे किन्तु उनमें ऐसा स्वप्न तो कभी भी नहीं देखा था।"

"यह बकझक क्या कर रहे हो ?" मुचकुन्दका ख्याल उधर से हटानेके लिए मणि जरा हँसी। फिर क्रोधयुक्त स्वरमें बोली—"कह रही हूँ कि ये सब बातें जाने दीजिये लेकिन आप सुनते नहीं! इतना पढ़ने लिखने पर भी जरा-सा साहस नहीं है, थोड़ा धैर्य भी नहीं।"

पर इन शब्दों का असर दूसरा ही हुआ। मणि का तेजस्वी हँसता हुआ चेहरा और उसकी तेजपूर्ण आँखें देखकर मुचकुन्द को अपना दुःख सौ गुना अधिक मालूम पड़ने लगा। वह बोला—पढ़ा-लिखा ? हाँ! यदि मैं मूर्ख होता, गाँव में पुरोहिताई कर पेट पालन करता होता तब मुझे शायद इतना कष्ट सहन करना न पड़ता और न मुँह से एक शब्द ही निकलता, अपनी काशी बाई को बगल में बैठा कर यह भवसागर तर जाता एवं मतिमंद सन्तान पैदाकर घर भर देता पर मैं भी पढ़ा लिखा मूर्ख हूँ और मेरा बाप भी मूर्ख है जिसने मुझे पढ़ाया, मेरे स्वप्न में नवीनतम सुन्दरियों की सृजना की। इसके पश्चात् तुमसे भेंट हुई। मैं पढ़ा-लिखा हूँ इसीसे मुझमें साहस नहीं है,

मैं सुशिक्षित हूँ इसीसे यह दुःख सहन नहीं हो रहा है।" बोलते-बोलते मुचकुन्द के मुँह से फेन बहने लगा।

ये शब्द सुनकर मणि को विस्मय हुआ। जो विचार उसके मनमें उत्पन्न होते थे, जिस प्रकार स्वयं वह 'पुरुषत्व' के पीछे पागल बनी अपने लिए कोई योग्य पति ढूँढ़ती फिरा करती थी, उसी प्रकार आज मुचकुन्द 'स्त्रीत्व' की खोज में पागल हो गया था। दोनों के भाव एक दूसरे से मिल रहे थे।

मणि की दृष्टि अभी अभ्यास से इतनी सूक्ष्म नहीं बनी थी; फिर भी जो ज्ञान उसे प्राप्त हुआ वह एक महान विश्व-नियम का था। प्रत्येक सुशिक्षित उच्च-संस्कार पुरुष अथवा स्त्री-हृदय समान जोड़ी के लिए लालायित रहता है। समाज इस लालसा को नियंत्रित करने का प्रयत्न करता है, नीति नियमित करने का प्रयत्न करती है पर प्रायः सभी प्रयास निष्फल होते हैं और जब कभी ये सफल भी होते हैं तब सामान्य स्थूल हृदयों को सुख प्राप्त होता है। पर उच्च संस्कृत हृदयों का अथवा समाज के समृद्धि रूप सुसस्कृत हृदयों को ?

ये दोनों समाज के समृद्धि रूप थे, दोनों एक दूसरे को पाने के लिए तड़फड़ा रहे थे; नीति, मानमर्यादा उनके मिलाप में बाधक थे, तब फिर रास्ता क्या था ? बहुत सी भूलभुलैया में से निकलने का रास्ता ही नहीं होता; इस समय ये दोनों भी ऐसी ही एक भूलभुलैया में फँसे हुए थे।

मणि ने हृदय का क्षोभ दबाते हुए कहा—भाई ! आप काशी को कुछ दिन के लिए मायके भेज दें। इसके अलावा आपके हृदय को शांति मिलने का दूसरा मार्ग नहीं दिखाई देता, यदि आप ऐसा न करेंगे तो अवश्य बीमार पड़ जायँगे।

"मुझे अब घर जाना ही नहीं है। कल सबेरे बंबई छोड़

कर अन्यत्र चले जाने का मैंने निश्चय कर लिया है। मेरे जाने के पश्चात् जिसे जो करना होगा करेगा।"

"पर जाओगी कहाँ? ऐसी दशा में आपसे क्या कुछ होना संभव है? इसकी अपेक्षा तो जो मैंने उपाय बताया है वह अच्छा है।"

"नहीं–नहीं, अब मैं उस घर में पैर भी नहीं रखूँगा। यह मैं दृढ़ निश्चय कर चुका हूँ, अब मुझे किसी की परवाह नहीं है" मुचकुन्द की आवाज में बैचैनी थी।

"किसी की परवाह नहीं है?" मणि के मुँह से अचानक ही निकल पड़ा।

मुचकुन्द ने मणि की ओर देखा; उसके सफेद चेहरे पर थोड़ी लाली दौड़ गई।

"मैं तो तुम्हें इस संसार का जीव समझता ही नहीं, तुम तो मेरे लिये कल्पना-प्रदेश की देवी हो।"

"पर कल्पना-प्रदेश के निवासियों को ऊँघ भी आती है। बहुत देर हो गई, न हो तो आप यहीं सो रहें। मैं आपको कल नहीं जाने दूँगी, एक दिन आप और विचार करें" मणिने जरा हँसते हुए कहा।

अपने घर में पर-पुरुष को रखने से दूसरे लोगों की धारणा क्या होगी इस डर से उसने अभी तक यह नहीं कहा था; किन्तु मुचकुन्द को ऐसी नाजुक स्थिति में जाने देना उसने उचित नहीं समझा, इसके लिए चाहे उसे कितना ही निन्दा-वाद क्यों न सुनना पड़े।

"तुम मुझसे ऐसी बातें न कहो, मैं निर्बल हूँ। मेरे में निश्चयात्मक बुद्धि की कमी है। बहुत विचार करने के पश्चात् मैं इस निर्णय पर पहुँचा हूँ। इस भयङ्कर स्थिति में से छुटकारा

पाने का दूसरा कोई रास्ता है ही नहीं। तुम भी एक बार घर छोड़कर भाग चुकी हो।"

"मैं एक निराधार अबला थी, आप सशक्त पुरुष हैं। मेरे और आप में जमीन आसमान का अंतर है। ये सब बातें जाने दीजिये, इनका सारांश यह है कि आप शान्तिपूर्वक विश्राम करें। मुझे आपकी बात अथवा निश्चय कुछ भी सुनना नहीं है। आप यहाँ सोवें और मैं रसोई घर में। जिस प्रकार हम पहले रहते थे वैसे ही आज भी रहेंगे।

"उन दिनों की बात ही जाने दो" एक ठंढी सांस लेते हुए मुचकुन्द ने कहा "यदि तुमने मेरा कहा मान लिया होता, और हम दोनों एक साथ रहते होते तो शायद आज के पीड़ा की सृष्टि ही न हुई होती। अभी-अभी-" क्षुब्ध मुचकुन्द ने डरते-डरते जरा आशा से सामने देखते हुए कहा "भी कहो तो हम दोनों एक साथ रहें और जहाँ से भूल की है वहीं से फिर सुधार लें।"

"यह असम्भव है" अवर्णननीय खेदसे सिर हिलाते हुए मणिने कहा "भाई! यह नहीं हो सकता। मुझे अपने कल्पना-प्रदेश की वासी ही रहने दीजिये। जब तक मैं ऐसी हूँ तभी तक सोने की लगती हूँ। स्त्रियाँ जब तक शुद्ध रहती हैं तभी तक तो स्वर्ण की हैं, पतित होने पर पत्थर के समान हो जाती हैं। मैं पत्थर थी क्या मुझे फिर वैसी ही बनाना है?"

"नहीं...नहीं...नहीं" मुचकुन्द बोल उठा "मेरे कहनेका यह तात्पर्य कभी भी नहीं है। तुम जैसी हो, वैसी ही बनी रहो— मेरे विचारसे तुम सदैव स्वर्ण-प्रतिमा हो; पर अपनी जातिमें क्या दो विवाह करनेकी प्रथा नहीं है?"

मणिने सिर हिलाकर कहा—मेरे साथ विवाह करनेके पश्चात् जात-पाँत कैसी? और यह हो ही कैसे सकता है? पुरुष

को जैसे पतिव्रत अच्छा लगता है वैसे ही हम स्त्रियोंको भी पत्नी-व्रतकी भूख होती है। अभी तो इसका ज्ञान सम्भव नहीं है पर युवावस्थाके बीत जाने और अधेड़ वयके आने पर समझ पड़ेगा। मैं तो अनुभव से चतुर हो गई हूँ। नहीं तो क्या मुझे अच्छा नहीं लगता? आपके साथ रहना तो मुझे मुक्तिसे भी अधिक अच्छा लगता है। नहीं–नहीं। समाजके नियम तोड़े जा सकते हैं—किन्तु भला हृदयके नियम कैसे तोड़े जा सकते हैं?" मुच-कुन्द उसकी ओर दीनतासे देख रहा था। मणिने उसके पैर पर हाथ रखकर आश्वासन देते हुए बोली—मुचकुन्द भाई! खिन्न क्यों होते हो? अपने संसारकी असारताके हमलोग शिकार हो चुके हैं पर हम एक दूसरेके हैं इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।" मुचकुन्दने अपने पैर पर पड़ा हुआ मणिका हाथ अपने दोनों हाथोंमें ले लिया—पर वह क्या करे, उसे कुछ सूझ नहीं रहा था। उसने तुरत उसे छोड़ दिया।

"अरे!" एकदम मणि बोल उठी "आपको ज्वर है। आपका हाथ तो धधकते हुए अँगारेके समान हो रहा है।"

"मुझे खबर है बहन! मुझे खबर है। मेरे माथेमें ऐसा मालूम हो रहा है जैसे कोई हथौड़ा मार रहा है, देखो" कहकर मुचकुन्दने मणिका हाथ पकड़कर अपने कपाल पर रखा। सच-मुच वह टपटप टपक रहा था।

"और ऐसी स्थितिमें आप बम्बई छोड़ना चाहते हैं? वाह जी वाह! चलिए, बिछौना बिछा देती हूँ; इस समय सोइये।"

"नहीं...पीछे लोग—"

झख मारते हैं। जो मैं आपसे कहती हूँ वह करिये—चलिये कोट उतारिये।" मणिका जो अधिकार पहले मुचकुन्द पर था वह दृढ़तर हो गया। उसकी आज्ञाके वशीभूत होकर उसने कोट उतार दिया।

———

१०

बीमारी

सो जानेके थोड़ी ही देर बाद मुचकुन्द बड़बड़ाने लगा, बड़बड़ाहट बढ़ी। मणि ने उठकर बुलाया किन्तु जवाब देनेकी चेतनाशक्ति मुचकुन्दमें नहीं थी। साहस बटोरकर मणि उसके पास आई। मुचकुन्दका ज्वर तेज था जिससे वह बकझक कर रहा था।

मणिको ठेस सी लगी, वह तत्परतासे मुचकुन्दकी सेवा-शुश्रूषा करने लगी और उसके जरासा शान्त हो जाने पर पास ही में रहनेवाले एक डाक्टरको बुला लाई। पहले उसे कुछ हिचकिचाहट हुई कि मेरी इज्जत पर पानी फिर जायगा किन्तु अपने इस विचार पर उसे हँसी छूटी। कैसी मेरी इज्जत? मुचकुन्द—अखिल ब्रह्माण्डमें उसकी ओर आर्द्रताकी दृष्टिसे देखनेवाला एक मात्र व्यक्ति आधारहीन इस समय मेरे घर पर पड़ा हुआ है; जब मैं भटकती फिर रही थी, बिना घरद्वारके, एक टुकड़ा रोटीके लिए छप्पर पर कूदी थी, उस समय उसने मुझे आदर सहित दुनियाँके क्रोधकी परवाह न कर अपने घरमें रखा था। इस समस्त पृथ्वीमें उच्चतम निर्मल भावनासे प्रेरित होकर निःस्वार्थ प्रेमसे मेरे हृदयको परिवर्तित करनेवाला व्यक्ति एक मात्र वही था। वही इस समय मेरे घर पर अनाथ पड़ा हुआ है। उसके लिए क्या इतना भी नहीं कर सकती। इसी प्रकारकी अनेक विचार तरंगें उसके हृदयको उद्वेलित करने लगीं।

सबेरे तक मणि इसी प्रकार बैठी हुई मुचकुन्दकी परिचर्या

करती रही, तद्पश्चात् एक पड़ोसीको दिखाकर वह सेठ चन्दूलालके मकान पर गई।

अपनी स्त्री द्वारा समाधान किए जाने पर सेठ चन्दूलालका आत्मसन्तोष अब बढ़ गया था। उसने यह भी अनुभव किया कि अपना मतलब साधने के पश्चात् झाँसा-पट्टी देकर मणि वहाँ से खिसक गई इससे वह मणि पर भीतर ही भीतर क्रोध से जला करता था। उस पर अब उसका पहले के समान अनुराग भी नहीं रह गया था। इन्हीं कारणों से जब मणि उसके पास मुचकुन्द की अस्वस्थता का समाचार लेकर पहुँची तब वह उस पर अनेकों प्रकारका दोषारोपण करने लगे। मणिने शांतिपूर्वक उसकी फटकार सुनने के पश्चात् बहुत अनुनय विनय कर सेठजी को काशी और पाण्ड्‌ पंड्या को मुचकुन्द की अस्वस्थता की सूचना देने का उत्तरदायित्व अपने सिर पर लेनेके लिए विवश किया।

यह काम समाप्त कर मणि शीघ्रातिशीघ्र वापस आई। इस बीच में मुचकुन्द पुनः अज्ञान होकर बड़बड़ाने लग गया था। मणि को देखकर वह कुछ शांत हुआ।

घण्टे भर में काशी आ पहुँची और क्रोध से चेहरा बनाए हुए, मणि की ओर तिरस्कार से देख कर मुचकुन्द के बिछौने पर पैताने जाकर बैठ गई। उसकी परवाह किए बिना मणि पूर्ववत् अपना उपचार करती रही। सन्ध्या समय भोजन बनाकर मणिने स्वयं भोजन कर लिया किन्तु काशी से जीमने के लिए नहीं कहा। सत्याग्रही काशी ने भूखी रहकर अपना स्वत्व प्रमाणित करनेका निश्चय कर लिया था।

दूसरे दिन पाण्ड्‌ पंड्या घबड़ाये हुए, व्याकुल, गाली देते हुए आये। वह कुछ अस्वस्थ दिखाई दे रहे थे। इस वर्ष उनकी आम-

इनी कम हो गई थी जिससे धनाभाव की निर्बलता उनके हृदय को कष्ट पहुँचा रही थी। ऐसी स्थिति में मुचकुन्द को बीमार पड़ने का अधिकार ही क्या था? और यदि बीमार ही पड़ा तो उन्हें खबर देकर बम्बई बुलवाने का ही उसे क्या अधिकार था! ऐसे विचारों में तल्लीन वह आकर मुचकुन्द के घर पहुँचा। वहाँ ताला बन्द देखकर वह और भी उलझन में पड़ा; झुंझलाता हुआ वह सेठ चन्दूलाल के मकान गया। मणि का नाम सुनते ही आग-बबूला हो उठा और तुरत निर्णय कर लिया कि बस वही चाण्डालिन इन सब उपद्रवों की जड़ है।

सेठ चन्दूलाल का आदमी और मोटर लेकर तुरत मणि के घर पहुँचा, वहाँ न तो किसी से बोला न चाला; पुत्र की तबीयत कैसी है यह भी पूछने की आवश्यकता उसने नहीं समझी। क्रोध से भभकता हुआ वह मुचकुन्द के पास पहुँच और सेठ चन्दूलाल के नौकर की सहायता से उसे उठाकर घसीटते हुए ले जाकर मोटर में डाल दिया एवं काशी को लेकर मुचकुन्द के घर पर आया। मणि इस अत्याचार से किंकर्तव्यविमूढ़ होकर चित्रलिखी सी खड़ी देखती रह गई और अपनी असमर्थता पर आँसू बहाने लगी।

सन्ध्या समय तक अपने मन को वह किसी प्रकार ढाढ़स दिए रही इसके पश्चात् उसका धैर्य जाता रहा। वह उठकर मुचकुन्द के घर पहुँची। पाण्ड्या का उसे बहुत ज्यादा डर लग रहा था कि कहीं वह मेरा अपमान कर घर से बाहर न निकाल दे। पर उसका हृदय मुचकुन्द के पास था जिससे वह रुक नहीं सकी।

उसे देखकर पंड्याजी और काशी दोनों लाल लाल आँखें निकालकर घुड़कने लगे। इसकी परवाह न कर मुचकुन्द के पास

जाकर उससे जी का हाल पूछने लगी। उसकी आवाज सुनकर सन्निपात में बड़बड़ाता हुआ मुचकुन्द जरा शांत हुआ।

"मणि बहन !" वह जरा शांत स्वर में बोला "कौन ? तुम ! बहन ! अब नहीं सहा जाता। तुम सुन नहीं रही हो, यह कुब्जा मेरा जीवन लेने पर तुली बैठी है। बहन ! यह बात झूठी है। संसार-सुधारकगण मूर्ख हैं। हम—" इसके बाद मुचकुन्द की आवाज ऐसी आवेशपूर्ण हो गई मानो वह भाषण दे रहा है "हम जिसे प्यार करें उसके साथ लोग विवाह नहीं करेंगे लेकिन जिसके साथ जबरदस्ती विवाह कर दें उसे अपना प्रेम समर्पण करना ही पड़ेगा····· यह हमारा कर्तव्य है ! मूर्ख ! नरक के पक्षपाती···कीड़े·· प्रेम ! आज प्रेम—बहन—बहन ! मणि की ओर बड़ी बड़ी आँखें निकालकर देखते हुए मुचकुन्द ने कहा "अब सहन नहीं होता। प्रेम दिया किसे जाय ? मुझे किसी के साथ प्रेम करने का अधिकार ही क्या है ? मैं तो दास हूँ प्रथाका—अपने बापका—अपनी पत्नीका, मुझे प्रेम करने का भला क्या अधिकार है ? जिस ऐरे-गैरेके साथ विवाह कर दिया जाय उसे क्या अपना सर्वस्व प्रेम अर्पण कर देना आवश्यक है ? हा—हा—हा—" मुचकुन्द हँसने लगा।

मणिकी आँखोंमें से धड़धड़ आँसू गिरने लगे। मुचकुन्दका हाथ अपने हाथोंमें लेकर वह बोली—भाई ! जो कुछ आपकी समझमें आवे करियेगा। इस समय इतना आप क्यों बोल रहे हैं ?

"बोल रहे हैं ! मैं बोलूँगा, छटपटा छटपटा कर मैं क्यों मरूँ ? बहन ! तड़पते तड़पते मेरी यह दशा हो गई। मूर्ख—मूर्ख बहन ! तू कहाँ गई थी ?" जरा होश आने पर मुचकुन्द ने पूछा।

"कहीं तो नहीं।"

"कहीं नहीं कैसे ? अभी अभी मैं उस भयानक राक्षसीका स्वप्न देख रहा था।" कहकर पुनः मुचकुन्दने बड़बड़ाना प्रारम्भ कर दिया।

"अगर आप ऐसा करेंगे तो मैं चली जाऊँगी।"

"तब करूँ क्या ?"

"चुपचाप सो रहिये।"

"निद्रा नहीं आती बहन ! तुम चली तो नहीं जाओगी। मुझे डर लग रहा है। बहन ! ओ बहन ! तुम चली मत जाना" कहकर मुचकुन्द रोने लगा।

मणिको कुछ सूझता नहीं था कि वह क्या करे, उसने पीछे देखा तो पाणु पंड्या बड़ी बड़ी आँखें निकालकर उसे तरेर रहे थे और भीतर खड़ी किवाड़ोंकी दराजमें से काशी घूर रही थी। वह निराश होकर मुचकुन्दकी ओर घूमी।

"भाई मैं नहीं जाऊँगी, अब हुआ, लो मैं बैठ जाती हूँ।" कहकर वह मुचकुन्दके पास बैठकर उसके सिर पर आइस बैग रखने लगी। मणिके हाथके स्पर्शने अमृत सदृश असर किया। धीरे धीरे मुचकुन्दका बड़बड़ाना कम हुआ, आँखें बन्द हो गई और थोड़ी ही देरमें वह सो गया हो ऐसा मालूम होने लगा।

पीछेसे पाणु पंड्याने मणिको उठकर बाहर आनेका संकेत किया। धीरेसे मुचकुन्दका अपनी गोदमें पड़ा हुआ हाथ उठाकर नीचे रखकर मणि उठकर बाहर आई। क्रोधसे पाणु पंड्याकी आँखें भयङ्कर दीख रही थीं। उसने कहा—तूने क्या मेरे घरको नेस्तनाबूद करने पर कमर कस लिया है ?

"पंड्याजी ! यह समय क्या वादाविवादका है ?" मणिने पूछा।

"यह सब किया किसने ? तुझे एक बार तो निकाल बाहर किया; पर तू तो मेरे पुत्रका पिण्ड छोड़ती ही नहीं !"

"पंड्याजी ! पंड्याजी ! यह क्या कह रहे हैं ? क्या आप देख नहीं रहे थे। क्या मैं इनका पिण्ड पकड़े हुए हूँ। एक बार आपने दोष लगाकर मुझे निकाल बाहर किया, परिणाम स्वरूप आपके बेटेकी यह दशा हो गई कि वह तड़प रहा है. फिर यदि निकालियेगा तो उन्हें अत्यधिक दुःख होगा।

"तब तेरा क्या जायगा ?"

"मेरा तो जो कुछ जाना होगा जायगा लेकिन आपका तो पुत्र चला जायगा।"

"इससे तुझे मतलब ? खबरदार ! जो तूने मेरे घरमें अब पैर रखा तो।"

मणि हठी थी, उसने दृढ़तासे पंड्याजीकी ओर देखा, उसके मुँह पर अधिक आवेश दिखाई दे रहा था।

'क्या करियेगा ? उसने शान्तिसे पूछा।

"यह तो तुम देख लेना।"

"ऐसा ? मैं मुचकुन्द भाईको इस प्रकार घुलघुलकर मरने नहीं दे सकती। समझे ? मैं तो यहीं रहूँगी। जो कुछ आपसे हो सके कर लीजियेगा।"

———

११

बिचारे पंडयाजी

पाणु पंडया जरा चमके। उसने मणिकी दृढ़ आवाजमें, उसके आँखकी चमकमें प्रभुत्व देखा। बालसिंहको पकड़नेके

लिए आनेवालेको जिस प्रकार सिंहनी देखती है वैसे ही वह पाणु पंड्याको देख रही थी। दो-चार पल तक दोनों एक दूसरेकी ओर इसी प्रकार देखते रहे।

"समझे !" थोड़ी देर बाद मणिने धीरेसे कहा।

"आखिर इस हठका कारण क्या है?" नम्र पड़ते हुए पंड्याजीने मणिसे पूछा। मणि भी उनकी उलझन समझ गई।

"पंड्याजी! आप मुझपर व्यर्थ क्रुद्ध हो रहे हैं। आप समझ रहे हैं कि आपके पुत्रको खराब करनेका मैंने बीड़ा उठा लिया है लेकिन क्या मुचकुन्द भाईके पास पैसा है? क्या उनके पास सम्पति है? नहीं। तब क्यों मैं उनके पीछे लगी हुई हूँ? क्या मुझमें रूप, सौन्दर्य या चातुर्यकी कमी है कि बम्बई जैसे शहरमें बड़े बड़े लहरी लक्षाधिपतियोंमें से किसी एकको अपने वशमें नहीं कर सकती? जब मैंने समझा कि मेरे रहनेसे उनकी इज्जत पर आ बनेगी तब क्या मैं जानेके लिए तैयार नहीं हो गई? उनकी मान-मर्यादा बचानेके लिए उस समय मैं चली नहीं गई? लेकिन इस समय उनके जीवनका प्रश्न है और मैं नहीं जा सकती। उस समय इनका कहना मैंने नहीं माना और इस समय आपका नहीं मानूँगी। मुचकुन्द भाई जितना आपके प्रिय हैं उतने ही मेरे भी हैं।"

मणिकी विनती पाषाण हृदयको भी डिगा देने वाली थी। पाणु पंड्याको उसका कथन कुछ सार्थक दिखाई दिया। साथ ही स्वयं अपना भी स्वार्थ देख रहा था क्योंकि मणिको निकाल देने से मुचकुन्दके मन पर उसका असर बुरा पड़नेकी आशंका थी।

"यदि मैं ऐसा न करूँ तो तुम क्या करोगी?" पाणु पंड्या बिलकुल ही नम जाना अच्छा न समझ बोले।

"क्या करूँगी? आप मुझे पहचानते नहीं। मैं मुचकुन्द

भाईके पास बैठी रहूँगी। फिर देखती हूँ कौन मुझे हटाता है? और यदि अत्याचार कर मुझे बाहर निकालोगे तो दरवाजे पर धरना देकर भूखी-प्यासी पड़ी रहूँगी।

"तू आदमी है या—?"

"आप जो भी समझें, देखिये मुचकुन्द भाई उठ गये।" कहकर वृद्धको जरा नरम पड़ते हुए देखकर तुरत मणि वहाँसे जाकर बिछौने पर बैठ गई।

पंड्याजी आगे कुछ नहीं बोले। वह चुपचाप देखते रहे, एक ही दिन में कमरेमें, मुचकुन्दमें और उसकी परिचर्यामें इतना अन्तर हो गया कि मणिको निकाल बाहर करनेकी बात ही वे भूल गये। काशी तो भीतर ही भीतर कुढ़ कुढ़कर मरी जा रही थी पर श्वसुरकी उपस्थितिसे कुछ बोल नहीं सकी।

इसी प्रकार दो-चार दिन निकल गये किन्तु मुचकुन्दमें कोई परिवर्त्तन दिखाई नहीं दिया। घबड़ाकर मणिने दूसरे डाक्टरको दिखानेके लिए अपना निश्चय प्रकट किया।

"यह होगा कैसा? मेरे पास क्या पैसा गड़ा रखा है?"

"पैसा तो जहाँसे भी हो आयेगा, आज मैं एक डाक्टर बुला लाती हूँ।" मणिने कहा।

वृद्धने कुछ उत्तर नहीं दिया। मणिने साहसवश उपरोक्त उत्तर दे दिया था पर अपने मनमें विचार करने लगी कि रुपये का प्रबन्ध कहाँसे और किस प्रकार किया जाय। मुचकुन्दकी पास-बुक देखनेसे मालूम हुआ कि रंगूनसे लौटने पर तीन सौ रुपया उसने बैंकसे निकाल लिया था और अब केवल नाम मात्र बैंकमें रह गया था। चन्दूलालके यहाँ रुपयेके लिए जाना आत्माभिमानी मणिको नहीं रुचा और पंड्याजी केवल दस रुपये लेकर घरसे चले थे· जिससे उनके पास कुछ था ही नहीं। इस

दशामें घरका खर्च चलानेके लिए अपना वेतनका रुपया लिए बिना छुटकारा नहीं दिखाई देता था। तब फीसके लिए रुपया कहाँसे आये ?

एक मित्रसे कुछ रुपये उधार लेकर मणिने डाक्टरकी फीस देनेका प्रबन्ध किया। डाक्टर आया और मुचकुन्दको अच्छी तरह देखभाल कर उसने सिर हिलाया और उपचारोंका एक नोट बनाकर दे दिया। डाक्टरने जाते समय पंड्याजी और मणिको अपने पास बुलाया।

"आप बीमारके पिता हैं ?"

"जी हाँ।"

"और यह उसकी—"

"मैं उनकी बहन होती हूँ" मणिने कहा।

"मुझे मालूम पड़ता है कि यह साधारण ज्वर नहीं है। इनके कानके पीछे कुछ शोथ सा मालूम होता है, कुछ कहा नहीं जा सकता, अभी समय है अगर कुछ और बढ़ा तो आपरेशन करना पड़ेगा।"

मणिको ऐसा मालूम पड़ने लगा कि हृदयकी धड़कन बन्द हो जायगी, बड़े परिश्रमसे साहस बटोरकर उसने पूछा—डाक्टर साहब, कुछ जान पर तो जोखिम नहीं है ?

"अभी यह कैसे कहा जा सकता है ? यह शोथ अच्छी तरह मालूम होने लगे तब कुछ बताया जा सकता है, अभी घबड़ानेका कोई कारण नहीं है।" कहकर डाक्टर चला गया।

"मणि !" पाणु·पंड्या सहसा मणिकी ओर घूमकर बोले। मणि चुपचाप उनकी ओर देखती रही "मैं तो मुचकुन्दको कल गाँव ले जाऊँगा।"

"क्यों ?"

"यह व्यय उठाना मेरी शक्तिके बाहर है ? आज ही तुमने डाक्टरको दस रुपया दिया, रोज रोज यह खर्च कौन करेगा ? इससे तो मेरा गाँवका वैद्य ही लाख गुना अच्छा है।"

"पर पंड्याजी ! मुचकुन्द भाई यात्रा कैसे कर सकेंगे ?"

"यह तो व्यर्थकी बात है। मैं तो गरीब आदमी हूँ और घरसे बुलाहट भी आई है—मेरा छोटा लड़का अलग बीमार पड़ा है। मैं करूँ क्या ? कहाँ कहाँ देखूँ ? भाग्यमें जो लिखा है वह क्या किसीके टाले टल सकता है ?"

"पंड्याजी ! मैं आपकी अड़चनें समझती हूँ किन्तु आप ऐसा क्यों कर रहे हैं ? बम्बई जैसे सुदक्ष डाक्टर और कहाँ मिल सकेंगे ? आप घबड़ा क्यों रहे हैं ? आप बेहिचक घर जायँ तब तक मैं यहाँ हूँ। आप किसी बातकी चिन्ता न करें।"

वृद्ध देखता रह गया। यह स्त्री जिसे वह दुत्कारकर एक बार निकाल भी चुके थे वह उनके पुत्रके लिये जो अनुपम प्रेम दर्शा रही थी उसे देखकर उसकी आँखें डबडबा आईं। चार दिनके अनुभवसे वृद्धका सम्पूर्ण रोष मणि परसे जाता रहा। मणिके आने के पश्चात् घरमें एक नवीन सृष्टिकी रचना हो गई थी, शान्त वायु बहने लगा था; इस परिवर्त्तनको वह प्रत्यक्ष देख रहा था।

"बेटी !" वृद्धने गद्‌गद् कण्ठसे कहा—"तू बहुत साहसी है, किन्तु तू अकेली क्या करेगी ? रुपया कहाँसे लावेगी ?"

"पंड्याजी ! इसकी चिन्ता आप न करें। मेरेमें सब कुछ करनेकी शक्ति है। अगर आपरेशन हुआ तब शायद पैसेकी कमी पड़ेगी। प्रति दिनका खर्च तो मैं अपने मासिक वेतनसे चला लूँगी, मैंने दो-एक बालिकाओंको पढ़ानेका प्रबन्ध भी कर लिया है।

पंड्याजी बोले नहीं किन्तु उनकी आँखोंमेंसे टपटप आँसू गिरने लगे।

"काका ! क्या सेठ चन्दूलाल कुछ मदद नहीं करेंगे ?"

"अरे वह क्या करेगा ? गत मासका पूरा वेतन देते समय तो उसकी छाती फट गई। यद्यपि वह मेरा सम्बन्धी है फिर भी यदि मैं मर जाऊँ तब भी उसके पास जानेका नाम न लूँ, इसीसे कहता हूँ कि मुचकुन्दको गाँव ले जाना अधिक अच्छा है।

"नहीं, नहीं, पंड्याजी ! यह तो असम्भव है। अभी आप ही गाँव जाएं, वहाँ आप रुपयेका प्रबन्ध करनेका प्रयत्न कीजियेगा और यथाशक्ति मैं भी यहाँ कोशिश करूँगी।"

"तब मैं क्या कल चला जाऊँ ?"

"जी हाँ, आनन्दसे।"

"क्या काशी बहू यहीं रहेगी ?"

"जी हाँ।"

इस बीचमें बीमार मुचकुन्द बिछौने पर पड़ा पड़ा छटपटा रहा था। कभी कभी तो वह बेहोश हो जाता था, कुछ देर तक होशमें आकर बातें करता था, कभी रोता था पर सदैव मणिको सामने पाकर कुछ अधिक शान्त रहता था और काशीको देखकर उत्तेजित हो जाता था। पाप और पुण्यके बीच झोंका खाती हुई विवेक बुद्धिके समान शान्ति और उत्तेजनाके बीच मुचकुन्द का निर्बल मन झोंका खा रहा था।

मणि इस कठिन अवस्थामें मार्ग ढूँढ़ निकालनेके लिए तत्पर हो गई थी। समरांगणमें उतरनेवाले योद्धाके समान उसका लोहू उबल रहा था और उसकी बुद्धि नई नई युक्तियाँ सोच रही थीं। बीमारीसे पीड़ित मुचकुन्दका मुख उसे शौर्य प्रदान करता था।

दूसरे दिन पाणुं पंड्या चले गये और मणिने घरका कुल

कारबार अपने हाथमें ले लिया। काशी इससे बोलती न थी पर दूरसे घुड़का करती थी। उसी दिन काशीने अपने पिताको एक विस्तारपूर्ण पत्र लिखवाया, जिसमें बम्बईसे अपनेको बुला लेने का भी आग्रह किया। उसे मणि सौतके समान लगती थी जिससे वह भीतर ही भीतर ईर्षासे रोती थी।

१२

बिचारी काशी

उसी दिन दोपहरसे एकाएक मुचकुन्द चिल्लाने लगा। उसके कानके पीछेका शोथ बढ़ता जा रहा था, उसके माथेमें कठिन पीड़ा हो रही थी। मणि काशीको घर सौंपकर डाक्टरको बुलाने गई।

जब मणि डाक्टरको लेकर आई उस समय मुचकुन्दकी स्थिति बहुत ही नाजुक हालतमें थी। उसे अच्छी तरह देखकर, और आपरेशन करनेका अभिप्राय प्रकट कर पुलटिस बाँधनेका निर्देश कर डाक्टर साहब चले गये।

मुचकुन्दकी अव्यवस्थित संकटपूर्ण स्थिति देखकर मणिने काशीसे एक बार बात करना आवश्यक समझा। मणिने मुचकुन्दको शान्त किया, फिर काशीसे दो बात करनेके लिए चली।

"देखो बहन! बिना जरूरत मुचकुन्द भाईके पास मत जाया करो।"

"मैं जाऊँगी, इसमें तेरा क्या जाता है?"

"मेरा क्या जाना है ? जो जायगा वह तेरा। तुझे पता नहीं है कि मुचकुन्द भाईकी तबीयत कितनी खराब है ? तुझे देखकर वे कितना उत्तेजित हो उठते हैं ? किसी दिन इसका परिणाम बहुत ही खराब होगा।"

"खराब परिणाम ! दुष्टा ! पापिनी ! यह सब तेरी ही कारस्तानी है ......" गन्दे आक्षेप करते हुए काशीने कहा।

मणिको भी क्रोध आ गया। काशी जोर जोरसे बोल रही थी। मुचकुन्दके सम्मानार्थ एक बार उसने काशीकी बातें सह ली थी किन्तु इस समय असम्भव था। इन शब्दोंके बीमारके कानोंमें पड़ने पर रोगके बढ़जानेकी पूर्ण सम्भावना थी।

मणिका अंग प्रत्यंग क्रोधसे काँपने लगा, उसकी आँखोंसे ज्वाला निकलने लगी। क्रुद्ध बाघिनके समान छलांग मारकर काशीका कान पकड़कर उसने जोरसे मल दिया और—चीखनेके पूर्व ही—एक हाथसे उसका मुँह धरकर दबा दिया।

"चुप ! तुझे पता नहीं कि तेरी इस गालीगलौजसे मुचकुन्द भाई पर क्या बीतेगी ? तू अपना स्वार्थ भी नहीं समझती ? बस चुप रह ! नहीं तो कल सबेरे राँड़ होकर बैठ जायगी। जब तक नहीं बोलती तभी तक ?"

ऐसा क्रोध मणि करेगी इसका काशीको स्वप्नमें भी ख्याल नहीं था। वह अभी छोटी थी, अनुभवहीन थी और मणिकी अपेक्षा शारीरिक बलमें भी कम थी। वह लड़नेके लिए तैयार हुई किन्तु मणिने उसे दीवालमें दबा दिया।

"देख, चीर डालूँगी यदि तूने भाईके सामने जाकर जबान खोली तो" कहकर काशीका दोनों हाथ पकड़कर दीवालमें दबा दिया "यदि तूने मेरा कहा नहीं किया तो याद रख हाथ-पैर बाँधकर यहीं छोड़ दूँगी।"

"काशी डर गई, उसका सब क्रोध हवा हो गया। वह रो पड़ी" मैं अपने पतिके साथ बोलूँ भी नहीं ?"

"तू तो मूर्ख है। मुचकुन्द भाईकी व्याधि भयङ्कर है। यदि बच गये तो किसके लिए ? तेरे ही लिए या किसी दूसरेके लिए ? पर तू क्या देख नहीं रही है कि तुझे देखते ही उनका मस्तिष्क फिर जाता है ?"

मणि यह कहकर बाहर चली आई और काशी अकेली वहाँ बैठकर आँसू बहाती रही। जो कुछ मणिने कहा वह उसे सच मालूम हुआ। जब कभी वह पतिके पास जाती थी उनकी उत्तेजना बढ़ जाती थी फिर भी उन्हें देखे बिना, उनके साथ दो बात किए बिना रहा कैसे जाय ? जो भी हो वे उसके पति हैं। काशीने देखा कि जैसा अत्याचार और अन्याय मुझ पर हो रहा है वैसा आज तक किसी पर न हुआ होगा। सबने उसे मार डालनेका एक बड़ा षड्यन्त्र रच रखा है। उसे कोई रास्ता सुझाई नहीं दे रहा था, वह रो रोकर अपना दिन काटती थी। यह दुःख किसके पापसे भोगना पड़ रहा था ? मैंने तो आज तक कोई पाप किया नहीं, फिर भी ये लोग मुझपर क्यों इतना अत्याचार कर रहे हैं ? उसने यथाशक्ति पतिको प्रसन्न करनेका प्रयत्न किया था फिर भी मुझे देखकर वे क्यों इस प्रकार भड़क उठते हैं ? यह दोष किसका है ? ऐसे ही ऐसे विचार उसके मस्तिष्कमें चक्कर लगाया करते थे।

१३

दो सौ रुपये

दो सौ रुपये एक बहुत तुच्छ रकम मालूम पड़ती है। कोई भी धनवान महीनेमें दो सौ रुपयेका सिगार पी डालता है, दूसरा दो सौ रुपयेका पेट्रोल अपनी मोटरमें फूँक डालता है, तीसरा अपनी स्त्रीके लिए साड़ी खरीदनेमें इतना रुपया व्यय कर देता है, वही दो सौ रुपये प्राप्त करनेके लिए मणिकी दशा पागल जैसी हो रही थी। मुचकुन्दकी परिचर्या करते समय, पाठशाला में पढ़ाते समय, रातमें कुछ ही घंटेकी निद्रामें सदैव उसके मस्तिष्कमें दो सौ रुपये बने रहते थे। रास्तेमें जब कभी किसीके हाथमें रुपयेकी थैली देखती तो वह उसका कैसे हो सकता है इस पर विचार करती, यदि कोई धनवान दिखाई पड़ता तो उससे कैसे रुपया माँगा जाय इसकी युक्ति सोचती, डाक्टरको किसी प्रकार समझाकर मुफ्त आपरेशन करानेका उपाय ढूँढ़ती। पर रास्ते चलनेवाले अपने रास्ते चले जाते थे, धनवान अपनी अस्पर्श्यताकी धाक दिखाकर परास्त करते थे और डाक्टर दुनिया को देखे हुए अनुभवी और लोभी थे।

डाक्टरने ऑपरेशनकी अत्यधिक आवश्यकता बताई और केवल एक दिन या अधिकसे अधिक दो दिनकी मोहलत दी। अड़तालीस घंटेमें दो सौ रुपये कहाँसे लावे? दो सौ पाई भी मिलना मणिके लिए कठिन था। अन्तमें आत्माभिमानको तिलांजलि देकर सेठ चन्दूलालके यहाँ जानेका उसने निश्चय किया।

सेठ चन्दूलाल चतुर व्यापारी थे। मणि और मुचकुन्द दोनोंने मुझे बेवकूफ बनाया है ऐसा ख्यालकर वे अत्यधिक रोषसे भरे हुए थे। उसने कुछ भी मदद करनेसे साफ इन्कार कर दिया। भग्न हृदय हो मणि घर लौट आई। रोनेकी बहुत ही

इच्छा हुई किन्तु ऐसा करनेसे कहीं बचा-खुचा साहस भी जाता न रहे इस डरसे अपने मुँह पर तमाचा मारकर नित्यके नैमित्तिक कार्य करने लगी। घंटे पर घंटे निकलते चले जा रहे थे किन्तु दो सौ रुपयेमेंसे एक पाई भी मिलना कठिन मालूम पड़ रहा था।

उसकी दृष्टि अपने मामूली गहने पर गई। काशीके पास भी कुछ जेवर थे किन्तु उससे माँगा कैसे जाय? रोगी बिछौने पर पड़ा हुआ पीड़ासे कराह रहा था। उसके लिए इहलोक और परलोकमें अधिक अन्तर नहीं था। परलोकका द्वार उसके लिए खुला हुआ था उसे शायद दो सौ रुपया ही बन्द कर सकता था। किन्तु वह आये कहाँ से?

मणिने बहुत विचार किया किन्तु फल कुछ नहीं हुआ। सन्ध्या समयकी पुलटिससे भयानक बना हुआ मुचकुन्दका चेहरा वह देख रही थी। उसकी आँखमेंसे टपटप आँसू गिरने लगे। संसारकी विजनता उसे हृदयभेदक लगी। इस सुशिक्षित सज्जन युवकको बचानेवाला संसारमें कोई नहीं था—मात्र दर दर मारी मारी फिरनेवाली, त्याज्य, अनीतिके मार्गपर चलनेवाली, दुष्टा समझी जानेवाली, संस्कार भ्रष्ट एक विधवा ही थी। यह विधिका वैचित्र्य देखकर मणिको जरा हँसी आ गई।

सहसा उसने सिर उठाकर ऊपर देखा। उसके मस्तिष्कमें एकाएक एक विचार आया जिससे उसका चेहरा फक हो गया। उसके कपाल पर सिकुड़न पड़ गई, उसके दाँत कटकटाने लगे। वह किसी भयङ्कर संकल्पको निश्चय रूप देती हुई मालूम पड़ी।

उठकर उसने कपड़ा बदला और काशीको घरकी रखवाली का भार सौंपकर शीघ्रता पूर्वक काँदावाड़ीकी ओर चली। उसका सब अंग काँप रहा था पर उसके चेहरे पर दृढ़ता थी और

उसके होंठ एक पर एक बैठे हुए थे। वह तुंगभद्राके घरके पास आकर रुक गई। उसके चेहरेका रंग उड़ता जा रहा था। उसने आसपास चारो ओर नजर दौड़ाई और किसीके दिखाई न पड़ने पर भीतर गई।

मणि पहले चौकीदारके पास गई, उसने उसे तुरत पहचान लिया किन्तु कार्यपटु बना हुआ चौकीदार उसे पहचान कर भी न पहचाननेका ढोंग रंचने लगा। वह मणिको तुङ्गभद्राके पास तुरत ले गया। तुङ्गभद्रा बैठी हुई अपने झुर्री पड़े हुए चेहरे पर पाउडर व रंग भरकर उसे हरा भरा बनानेका प्रयत्न कर रही थी।

मणिको देखकर तुङ्गभद्रा फूली नहीं समाई।

"ओहो बेटी! तू आ गई? तेरे बिना तो मैं सूखी जा रही थी। तू व्यर्थ ही चली गई थी।"

"तुङ्गभद्रा!" जरा कठोरतासे मणिने कहा—"इस ढोंगकी जरूरत नहीं है, तुम मुझे फाँसना चाहती थी उस जालमेंसे निकल भागी, मुझे तुम्हारा धन्धा नहीं करना है।"

"तब तू आई क्यों है?"

"एक काम है।"

"क्या?"

"मुझे दो सौ रुपयेकी आवश्यकता है, क्या तुम मुझे दे सकोगी?"

"मैं क्या महाजनी या सराफीकी दूकान खोलकर बैठी हूँ?"

"मैं मुफ्त नहीं चाहती।"

तुंगभद्रा तिरस्कारसे हँसी।

"क्यों हँसती क्यों हो?" मणिने पूछा।

"दो सौ रुपयेके लिए जब तू मेरे पास आई है तब तेरे पास होगा ही क्या!"

"मैं पाठशालामें पढ़ाती हूँ, मुझे इस समय दो सौ रुपयेकी सख्त जरूरत आ पड़ी है। महीने महीने मासिक वेतनसे धीरे धीरे तुम्हारे सब रुपये चुका दूँगी।"

"हा हा हा' तुङ्गभद्रा जोरसे हँसी "इस प्रकार यदि मैं रुपया बाँटती फिरूँ तो दो ही दिनमें दिवाला निकालकर बैठ जाऊँ।"

"देखो, मेरे द्वारा तुमने कितना पैदा किया होगा ?" मणिने समझाते हुए कहा।

"यदि तू यहाँसे भाग न जाती तो कितना कमाती ?"

"तब तुम नहीं दोगी ?"

"नहीं।"

"एक काम करूँ तो ? मेरा कंठ बड़ा ही सुरीला है, तुमने एक बार ऐसा कहा था।"

"हाँ।"

"उस कंठको मैंने और भी सुरीला बना लिया है, यदि तुम इतना रुपया दे दो तो प्रति दिन आकर गा जाया करूँगी। प्रति दिनका दस रुपयेके हिसाबसे मेरा जमा करते जाना।"

तुङ्गभद्राके मुँहमें पानी आ गया। मणिकी मोहक आवाज भला किसे नहीं आकर्षित कर सकती ? मणिके भाग जानेके पश्चात् एक-दो युवतियोंको उसने रखा था किन्तु मणिकी आवाज जैसा आकर्षण उनके शरीर भरमें भी नहीं था।

"नहीं जी, यह भला मुझसे कैसे हो सकता है ? तुम्हारा गाना न जाने कैसा होगा ?"

मणि ऐसे सीधी तरह छोड़नेवाली नहीं थी "अच्छी बात है जैसी तुम्हारी इच्छा। मैं किसी दूसरीको तलाश कर लूँगी" यह कहकर जानेके लिए वह उठने लगी।

"नहीं, नहीं, बैठो, बैठो, अब तो हम और तुम सम्बन्धी हैं।

"ना, बिलकुल नहीं। मुझे रुपये की आवश्यकता है और तुम्हें मेरे सुरीले रागकी जरूरत है, बस इतना ही!"

"ऐसा ? तब मैं तीन रुपया प्रति दिनके हिसाबसे दूँगी।"

"पाँचसे कम तो मैं लूँगी ही नहीं। चली तब" कहकर मणि पुनः उठने लगी।

"अच्छा, अच्छा, रुपया कब चाहिये ?" मनमें प्रसन्न होती हुई तुङ्गभद्राने मणिको बाँध लेनेकी इच्छासे जल्दी करते हुए कहा।

"अभी, अभी। लो कहो तो लिखकर दे दूँ, लाओ रुपया।"

मणि हर्षित हुई। मुचकुन्द बच जाय तो तुच्छसे भी तुच्छ अधमसे भी अधम काम करनेमें उसे जरा भी संकोच नहीं था।

"जमादार" तुङ्गभद्राने आवाज दी। चौकीदारके ऊपर आने पर उसने कहा—जाकर देखो रेवतीके पास कोई है तो नहीं ?

"जी" कहकर जमादार चला गया और थोड़ी ही देरमें लौट आया। उसके लौटकर आने तक कोई कुछ नहीं बोला।

"वहाँ गम्भीरलाल सेठ बैठे हुए हैं" जमादारने जवाब दिया।

मणि यह नाम सुनकर चौंक उठी। उसने सुना था कि गम्भीरलाल किसी विशेष काम पर बम्बईमें नियुक्त हुआ है। हृदयमें बहुत दिनोंसे विस्मृत बेताला सुर फिर सुनाई पड़ने लगा। किन्तु उसने विचार किया कि गम्भीरलाल नामके बहुतसे व्यक्ति हो सकते हैं। यह उसके जीवनको भ्रष्ट करनेवाला गंभीरलाल ही है, इसीका क्या निश्चय ?

"किसी दूसरेका क्या काम है ?"

"तुम्हारे पत्र पर साक्षी कौन करेगा ?"

मणि नीचे देखने लगी। वह अपनी जातिको बेच रही थी; ऐसा उसे लगा। केवल अपनी कल्पना-शक्तिको उत्तेजित कर

मुचकुन्दका पीड़ासे पीला, विकृत मुख अपने सामने रखकर अपना साहस संचित रखनेका प्रयत्न वह बराबर किया करती थी।

"तुङ्गभद्रा ! पर एक शर्त तुम्हें स्वीकार करनी पड़ेगी।"

"क्या ?"

"मैं मुँहपर बुर्का डालकर गाऊँगी।"

"क्या पागल हो गई हो ? बिना मुँह देखे भला गानेमें कहीं रस आयेगा ?"

"तब मुझे कुछ नहीं करना है।"

"अच्छा, अच्छा, जिस प्रकार तुम्हारी इच्छा हो उसी प्रकार गाना।"

मणिने प्रतिज्ञा पत्र लिखकर उसपर हस्ताक्षर कर दिया।

"चलो मेरे साथ" कहकर तुङ्गभद्रा मणिको दूसरे मंजिलमें ले गई।

मणिकी दृष्टि कमरेमें पड़ी और तुरत वहाँसे भाग जानेकी इच्छा हुई। सामने ही मसनदका सहारा लगाए हुए रावसाहब बैठे थे ! पर मणिने देखा कि अब पीछे हटना निरर्थक है। गम्भीरलालने उसे देखकर पहचान लिया था जिससे उनका भी चेहरा उतर गया था।

"कौन . तुम ? यहाँ पर ? आश्चर्य चकित होकर गम्भीरलाल ने पूछा।

मणिके पैरके नीचेसे मिट्टी निकल गई, पर दूसरे ही क्षण वह कुछ स्वस्थचित्त हो गई और गम्भीरलालके प्रति उसकी तिरस्कार-वृत्ति पुनः प्रदीप्त हो उठी।

"जी हाँ ! और आप इस स्थितिमें ?" तिरस्कारपूर्ण स्वरमें

मणिने कहा—"हमलोग भी बहुत ही अच्छे अच्छे अवसरों पर मिलते हैं।"

"देखो भाई!" तुङ्गभद्रा बीचमें बाधा देकर बोल उठी "मेरे यहाँ एक नियम है, चाहे जैसे भी हेली-मेली जान-पहचानी हों लेकिन यहाँ उन्हें एक दूसरेसे अनजान ही बनना पड़ेगा। लीजिये! इस पर जरा हस्ताक्षर कर दीजिये।"

मणिके यहाँ आनेका कारण जाननेकी उत्सुकता गम्भीरलाल में इतनी बढ़ गई थी कि उसने मणिका प्रतिज्ञापत्र जल्दीसे लेकर पढ़ा पर साक्षी करनेसे साफ इन्कार कर दिया। "मुझे कोर्टमें पैर घसीटते नहीं फिरना है।"

"आप इतना घबड़ा क्यों रहे हैं? आपको कोर्टमें जाना नहीं होगा।" तुङ्गभद्राने कहा।

गम्भीरलालने सिर हिलाया। "यह नहीं हो सकता, यदि ऐसा ही विश्वास है तब साक्षीकी ही क्या जरूरत है? फिर ऐसे प्रतिज्ञापत्रों पर नियमतः कोई गवाहीकी आवश्यकता ही नहीं है"

तुङ्गभद्रा गम्भीरलालको क्रुद्ध करना नहीं चाहती थी। साथ ही उसने देखा कि ये दोनों पुराने परिचित हैं जिससे बात बढ़ानेसे परिणाम हानिकर होनेका अन्देशा है। अतः मणिको ले जाकर दो सौ रुपये देकर बिदा कर दिया।

१४

पश्चात्ताप

जब मणि तुङ्गभद्राके मकानसे बाहर निकली तब किसीने उसे पुकारा। चौंककर उसने पीछे फिरकर देखा। उसके पीछे

गम्भीरलाल खड़े थे।

"मणि ! तुम्हारी यह दशा देखकर मुझे बड़ा दुःख होता है"

' तुम्हें एक बाजारू रण्डीके यहाँ देखकर मुझे भी बड़ा दुःख होता है।"

"क्यों ?" गम्भीरलालने पूछा।

' इस संसारमें जहाँ तुम्हारे जैसे काले नाग बसते हैं वहाँ मेरे जैसी अनाथाका दुःखी होना स्वाभाविक है।"

"बीती बातोंको फिरसे उभाड़नेसे क्या लाभ ? मणि, इतनी तुच्छ रकमके लिए तुझे यहाँ ठोकर खाना पड़ता है।"

मणिने इसका कुछ भी उत्तर नहीं दिया।

"तुम्हें आवश्यकता हो तो मैं दो सौ रुपये देता हूँ, तुङ्गभद्राका रुपया लौटाकर अपना प्रतिज्ञापत्र वापस ले आओ" गम्भीरलालने बड़ी ही सादगीसे कहा। यह सुनकर मणिका खून उबल उठा। गम्भीरलालने उसे इधर-उधर घूमनेवाली वेश्या समझ रखा था और दो सौ रुपये पर उसे अब खरीदना चाहता था।

"तुम्हारे पैसेसे मुझे प्रयोजन ?"

रावसाहब हँस पड़े "यदि तुमने मेरा कहना माना होता तो तुङ्गभद्राके पास दो सौ रुपयेके लिए न आना पड़ता।"

"क्या तुम्हें खबर है कि तुम्हारे सोना, मोहरकी अपेक्षा तुङ्गभद्राकी कौड़ी मेरे लिए अधिक अच्छी है ?"

"वह कैसे ?"

'वह तो तुम्हारी आँखें ही बता रही हैं ? मुझे दो सौ रुपये पर अपना शरीर नहीं बेचना है न ?"

"तब यहाँ डेढ़ महीना क्या करोगी ? इतना अनुभव प्राप्त करनेके पश्चात् तू जैसीकी तैसी ही बनी रह गई। अब भी समझ जाओ ! मेरे साथ चलो। तुङ्गभद्राका रुपया लौटा दो। क्या

रास्ते चलनेवाले ऐरे गैरोंसे भी मैं गया गुजरा हूँ ?"

"रावसाहब ! चाहे मैं जैसी हूँ और चाहे जैसी भी हो जाऊँ किन्तु मैं तो तुम्हारे मुँह पर थूँकने भी नहीं जाऊँगी। तुम अपने रास्ते जाओ और मुझे अपने रास्ते जाने दो, नहीं तो तुम्हारे लिए अच्छा नहीं होगा।"

गम्भीरलाल मणिको अच्छी तरह पहचानते थे। क्रुद्ध हो जाने पर उसमें उनकी दुर्गति करनेकी पूरी शक्ति थी साथ ही साहस भी था, और दुर्गति होने पर गम्भीरलालकी इज्जतमें बट्टा लगे बिना नहीं रह सकता था। गम्भीरलाल अच्छी तरह जानता था कि लोगों पर उसका दबदबा केवल उसकी इज्जतके कारण ही बना हुआ है।

"जैसी तुम्हारी इच्छा" कहकर गम्भीरलाल एक भाड़ेकी गाड़ी करके वहाँसे चले गये। रावसाहब घरकी ओर चले किन्तु भीतरसे उनका मन तड़फड़ाने लगा। उनकी मानसिक दृष्टि अपने पूर्व जीवन पर पड़ी। एक बार पुनः स्वयं निराश्रय स्थितिमें, दुःखसे भटकती हुई अप्सराके समान तेजस्वी विधवा बालाको देखा, पुनः उसने उसकी तेजस्विता द्वारा प्रेरित प्रचण्ड उर्मियों का अनुभव किया; पुनः उसने उस बालाको ललचाया, उसे भला-बुरा कहा, उसे फँसाया। उसने उस सुकुमार बालाको समाज-सुधारकोंके हाथमें पड़कर झकझोरे जाते हुए भी देखा, पुनः उसके आवेशपूर्ण, रोषसे भरे हुए वाक्य सुनाई दिये। अन्तमें उस बालाको दो सौ रुपये पर अपना स्त्रीत्व बेचते हुए देखकर गम्भीरलाल काँप उठे। अपनी इज्जत, रोबदाबके लिए उनकी ही स्वच्छन्द विषय-वासनाकी भोग बनी हुई बालाको कैसी अधमसे अधम अवस्थामें ढकेल दिया था ! क्या इसका परिणाम उन्हें भोगना नहीं पड़ेगा ?

गम्भीरलाल के हृदय में दाह होने लगा, साथ ही कुछ पश्चात्ताप भी हुआ। यदि मैंने इस बालाको प्रलोभन देकर न फँसाया होता तो ? फँसाया ही था तो इससे विवाह कर लिया होता तो ? इसका फल क्या होता—उस बाला का विशुद्ध प्रेम या इस ढोंगी जीवन से एकत्र किया हुआ सम्मान—इन दोनों में से कौन श्रेष्ठ है ?

उनके हृदय का दाह बढ़ता ही गया, वे घर गये किन्तु किसी प्रकार चैन नहीं पड़ा। इस दाह को शमन करने का उन्हें एक मार्ग सूझा। बक्स में से दो सौ रुपये निकाल कर वे तुंगभद्रा के यहाँ तुरत गये।

१५

मोघाराम की मुक्ति

घर पहुँचतेही मणि अपना विषम अनुभव भूल गई। उसके हाथ में रुपये की थैली थी, इस रुपयेसे वह मुचकुन्दकी जीवन-डोरी बाँधने वाली थी—यह हर्ष मात्र उसके हृदय को साहस दे रहा था।

सबेरे डाक्टर के यहाँ जाकर ऑपरेशन का समय वह निश्चय कर आई। तीसरे पहर प्रायः मूर्च्छित मुचकुन्द को डाक्टर के आदमी उठा कर हॉस्पिटल ले गये। काशी और मणि दोनों फुक्का फाड़ कर रो पड़ीं। फिर क्या मुचकुन्द लौटकर घर आयेगा ? काशीको तो लगा मानो उसका वैधव्य ही प्रारम्भ

हो गया; विधवा मणि को ऐसा मालूम पड़ा मानों वह पुनः विधवा हो गई। सूना घर खाने दौड़ता था। दोनों पत्नियाँ—संसार द्वारा बनाई हुई, और हृदयसे वरण की हुई—अपना द्वेष और ईर्षा दूर कर एक साथ रोईं और दोनोंने एक दूसरे के आँसू से आँसू मिला दिये।

संध्या की डाक में तुंगभद्रा को लिखकर दिया हुआ प्रतिज्ञा-पत्र मणिको वापस मिल गया, साथ ही तुंगभद्रा का एक पत्र भ थी जिसमें उसने मणि को वह दो सौ रुपया पुरस्कार स्वरूप स्वीकार करने के लिए लिखा था। मणिको पत्र पाकर अत्यन्त आश्चर्य हुआ। तुंगभद्रा ऐसी उदारता कर सकती है, इसकी उसे स्वप्न भी धारणा नहीं थी। इस उदारता में उसे कुछ भेद छिपा हुआ मालूम हुआ पर मुचकुन्द की चिन्ता के कारण उस भेद के सम्बन्ध में विचार करने के लिये उसके पास अभी समय न था।

पर उस दिन की घटना की शृंखला अभी टूटी नहीं थी। रात्रि में वह सोने की तैयारी कर ही रही थी कि इतने में किसी ने दरवाजा खटखटाया। इस समय अब कौन होगा, यह समझ न पड़ने से मणि जरा घबड़ाई।

दरवाजा खोलते ही सामने मोघाराम को खड़ा देख कर वह चौंक पड़ी और बोली "कौन मोघाराम? आओ, आओ!"

गरीब बिचारा कैद से छुटकारा पाने पर सीधे यहीं आया था। बंदी-गृह में उसके चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ गई थीं और उसका शरीर व्याधिग्रस्त-सा लग रहा था।

"बहन मणि! मैं क्या कहूँ?" मोघाराम की आँखों से आँसू गिरने लगे "बहन मैं तुम्हारे उपकार का बदला किसी जन्म में भी नहीं चुका सकता। यदि तुमने रुपया न दिया होता

तो क्या मैं कभी छूट सकता था ? आखिर हाईकोर्ट ने न्याय किया और मुझे निर्दोष ठहराकर छोड़ दिया।

"आपने मेरे लिए क्या नहीं किया ?" कहकर मणि ने पहले मोघाराम को भोजन कराया पश्चात् इसके दोनों में बहुत देर तक बातें होती रहीं। मोघाराम कैद से छूटने के बाद मारुति से मिला था जिनसे मणि की उदारता का समाचार और उसका बंबई का पता उसे मिला। कृतज्ञ वृद्ध तुरत बंबई आया और उसका मकान जल्दी न मिलने से ढूँढ़ता हुआ इतनी देर बाद पहुँचा।

मणिने सुरेखाका हालचाल पूछा और मोघारामको यथाशीघ्र अपनी भाञ्जीके यहाँ जाकर उसे लानेका आदेश दिया। मणि और मोघाराम दोनोंने एक दूसरेसे आप-बीती आद्यन्त कहा और ऐसी विकट स्थितिमें एक साथ ही रहनेका निश्चय किया। मोघारामकी निराशामें भी आशाकी किरणें फूटीं। उसने कोई नौकरी कर यथाशक्ति मणिकी सहायता करनेका अपना निश्चय प्रकट किया। रात अधिक बीत जाने पर, आशा और भयके बीच जरा हँसते हुए दोनों सो गये।

सबेरे काशीका भाई आ पहुँचा, मणिको देखकर उसने नाक-भौं चढ़ाया और विवश दुःखी हृदयसे मणि और मोघाराम के साथ अस्पताल जाना स्वीकार किया। काशी भी उनके साथ गई। जिस समय ये लोग वहाँ पहुँचे, मुचकुन्द अचेत था।

१६

दुःख परम्परा

इधर मोघाराम सुरेखाको लेने गया और उधर काशीको उसका भाई लिवा ले गया ! मणि अकेली रह गई; तुङ्गभद्राने उसका रुक्का क्यों लौटाया, इसका पता लगानेका विचार कर वह तुङ्गभद्रासे मिली किन्तु उसने कोई सन्तोषजनक उत्तर नहीं दिया। उसके समान वेश्या जो जमाना देखते-देखते बुड्ढी हो गई थी इतनी उदारता दर्शावे, यह बात मणिके गलेके नीचे नहीं उतरी। गम्भीरलाल पर भी उसका सन्देह गया किन्तु उससे मिला कैसे जाय ? आखिर मुचकुन्दके स्वस्थ हो जाने तक अपना अनुसन्धान स्थगित रखनेका ही उसने निश्चय किया।

तीसरे दिन मणिकी चिन्तामें वृद्धि हुई। मोघारामका तार आया कि सुरेखा बीमार है। तारसे उसने पूछा था कि ऐसी स्थितिमें उसे बम्बई ले आये या नहीं ? मुचकुन्दको छोड़कर सुरेखाके पास जाय अथवा यात्राके कष्ट एवं उससे होनेवाले रोग-वृद्धिकी परवाह न कर सुरेखाको बम्बई बुला ले, यह विकट समस्या मणिके सामने उपस्थित हो गई जिसने उसे बहुत व्यग्र कर दिया। बम्बई जैसे डाक्टर गाँवमें नहीं मिलेंगे यह विचार कर अन्तमें उसने सुरेखाको लेकर बम्बई चले आनेके लिए मोघारामको तार दे दिया।

अपनी पुत्रीको देखनेके लिए मणि छटपटा रही थी। स्वप्न में अनेकों बार सुरेखाको उसने देखा था, उसके सुकुमार, छोटे गात्रका आलिङ्गन किया था; उसके गुलाब सदृश छोटे, रसिक मुखको चूमा था, उसे खिलाया-पिलाया और खेलाया था। जब

वह रोएगी तब कैसी लगेगी? वह जब हँसेगी और उसकी नवीन आई हुई दँतुरिया चमक उठेगी, उस समय कैसी लगेगी? ये सब विचार पुनः ताजे हो गये, यह स्वप्न वह पुनः देखने लगी; ये सभी बातें दो दिनोंमें सच हो जायँगी, ऐसा उसे विश्वास होने लगा।

मोघाराम आया और उसके आते ही हतभाग्य मणिका नवीन दुःखपूर्ण नाटक प्रारम्भ हुआ। मोघाराम जो ले आया, वह उसकी सुरेखा नहीं थी; उसकी धारणा-कृत स्वप्नमें खेलाई हुई, सुकुमार, पुष्पके समान कोमल सुरेखा न थी बल्कि रोगसे चिड़चिड़े मिजाजकी, काली पड़ गई हुई, सतत रोनेवाली, दैव की मारी हुई शरीरका एक ढाँचा मात्र थी। उसे देखते ही मणि काँप उठी। उसके हवाई किले सभी टूट गये। पुत्री बिना वह तड़प रही थी, अब पुत्री आने पर उसे देखकर वह तड़पने लगी।

निराशा विषाक्त है किन्तु आशा भंग होनेकी पीड़ा उससे भी अधिक विषमय है। मणि इस भयङ्करताका विष तुल्य अनुभव कर रही थी।

अपनी लालसाओंको दूर ठेल कर पुत्रीको उसने अपनी गोदमें लिया। बालिका रोकर ऊधम मचाने लगी। मणिने अपने खिन्न हृदयको दबा दिया, आँखमें आनेवाले आँसुओंको रोक दिया और सुरेखाको लेकर वह डाक्टरके पास चली। डाक्टरने उसे देखकर नाम मात्रकी आशा देते हुए अपना सिर हिला दिया।

पापकी परिणामरूप वह पुत्री मणिसे उसके पापका पूरा पूरा बदला लेने लगी।

कुछ हतभाग्य मनुष्योंके जीवनकी कुछ घड़ियाँ अतीत घटनाओंसे पूर्ण होती हैं। अपने जलनेवाले घरके सामने खड़े

होकर, भीतर जलनेवाले प्रियजनोंकी हृदयविदारक चीत्कार सुनना और एक पल मात्रमें जीवनका सत्यानाश देखना बहुतोंके भाग्यमें लिखा होता है। मणि भी ऐसे ही लोगोंकी श्रेणीमें गिनी जाने योग्य थी। जिस व्यक्तिको वह अपने सहोदर भ्रातासे भी अधिक चाहती थी वह मृत्यु और जीवन के बीच झोंका खा रहा था, अपने हृदय का आधार मानकर जिस बालिका के लिए वह कलपती रहती थी उसके सिर पर मौत नाच रही थी; और इस पर भी ये विपत्तियाँ अभी समाप्त नहीं हुई थी; उसके पाठशाला की प्रधानाध्यापिकाने बराबर छुट्टी लेने की शिकायत उच्च अधिकारियों के पास लिख भेजा था। मुचकुन्द, सुरेखा और मोघाराम उसके साहस पर जीवित थे, उसकी कमाई पर ही उनका आधार था। साहस और आय दोनों अपने हाथ से निकल जाता हुआ मणि को मालूम पड़ा। ऐसी भयङ्कर विपत्ति के समय सिंह जैसे पुरुष भी काँप उठते हैं तब बिचारी मणि जैसी एक अबला की बिसात ही क्या ?

१७

मुचकुन्दकी भ्रमपूर्ण उत्तेजना

हॉस्पिटल से रक्तहीन, निर्बल मुचकुन्द मणि के नवीन घर में आतेही बड़े विचार में पड़ गया था। उसके मस्तिष्कका ठौर ठिकाना नहीं था, उसकी आँखें ठहरती न थीं, ज्वर प्रतिदिन आता था, अधिक बोला नहीं जाता था, मिजाज चिड़चिड़ा हो गया था और हाथ पैर पटका करता था। यह घर किसका है ?

काशी कहाँ गई ? मेरे पिताजी कहाँ गये ? घरका खर्च कौन चलाता है ? घर में यह 'मोघाराम' बुड्ढा कौन है ? किसी छोटे लड़के की रुलाई क्यों सुनाई पड़ती है ? इन प्रश्नोंका निराकरण करने का वह कभी कभी प्रयत्न करता था पर उसका सिर चक्कर खाने लगता था, आँखें दुःखने लगती थीं जिससे बाध्य होकर वह सो जाता था। ज्यों ज्यों वह अधिकाधिक विचार करने का प्रयत्न करता था त्यों त्यों ये प्रश्न और भी जटिल होते जाते थे।

थोड़ी-थोड़ी देर पर इन विचारों के घटाटोप में बिजली चमक जाती थी। उसे दवा देने के लिए, तथा खिलाने के लिए मणि आया करती थी और उसका मुख देख कर मुचकुन्दको कुछ शांति मिलती थी। मुचकुन्द उससे पूछने का विचार करता था, एक-दो बार उसने प्रश्न भी किया पर सूखी हँसी हँसकर मणिने उसके प्रश्न को टाल दिया। उसे पहले स्वस्थ होने के लिए कह-कर हाथ दबाकर उसे मौन कर देती थी। मणि की उपस्थिति में मुचकुन्द गरीब गाय जैसा हो जाता किन्तु उसके हटते ही वे ही प्रश्न उसके मस्तिष्क में ऊधम मचाने लगते थे। मणि बिना वह बेचैन हो जाता और मणि कोई अनीतिपूर्ण कार्य कर रही है, इसका उसे विश्वास होने लगता। मुचकुन्द क्रुद्ध होता, व्याकुल हो उठता। पर था निराधार जिससे तकिया में जोरसे सिर दबाकर पड़ा रहता था। वह स्वयं अपंग था, दुनियाँ के सब लोग उसके शत्रु होकर उसे जला रहे थे; मणि कोई षड्यंत्र रच रही थी, उसके पिता और पत्नी को फुसलाकर किसी ने भगा दिया था—ऐसे ऐसे विचार उसके निर्बल मस्तिष्क को और भी रोगी बना रहे थे। इसी बीच अगर कहीं बगल के कमरे में से आनेवाला सुरेखा का दिनों दिन धीमा पड़नेवाला

रुदन उसके कान में पड़ जाता तब वह और भी अधिक क्षुब्ध हो उठता था।

एक दिन मणि उसके पास बैठी दवा दे रही थी कि सुरेखा रोने लगी! बीच का दरवाजा खुला हुआ था। मुचकुन्द की भौहें चढ़ गई।

"यह कौन चिल्ला रहा है?"

मणि के होश उड़ गये, उसने कहा—भाई! यह कोई पड़ोसी का लड़का होगा, जरा शांत रहो।

"पड़ोसी?" कहकर मुचकुन्दने चिल्लाना चाहा किन्तु निर्बलता के कारण उसके मुँह से आवाज नहीं निकली। क्रोध से वह काँप उठा और दवा का प्याला उसने हाथ से दूर फेंक दिया। चिंताग्रस्त मणिने उसे सह लिया और केवल झूठी हँसी से हँस भर दिया।

"भाई! इस प्रकार करने से क्या लाभ? देखो, ऐसा करने से कोई लाभ नहीं होगा।"

"मरा मैं और मरे सब संसार" क्रोध से खोखली बनी हुई आवाज में मुचकुन्द ने कहा "मुझे मेरे घर पहुँचा दो।"

माँ के सदृश अवर्णननीय स्नेह से उसे उठने से रोकने के लिए मणि उसके पास गई और धीरे से बोली—यह घर आपका ही है।

मुचकुन्द दाँत पीसने लगा। उसका हृदय क्रोधाग्नि से उछलने लगा। थोड़ी देर बाद वह बड़बड़ाया—मेरे घर में ऐसा कमरा कब था? मेरे पिता कहाँ गये? मेरी काशी कहाँ चली गई?

ये शब्द सुनकर मणि ने इस प्रकार अपना सिर नीचा कर लिया मानो उसके सिर पर सौ जूते पड़े हों; अपनी आँखों से

ढलकते आँसुओं को बड़ी कठिनता से रोकते हुए उसने अपनी हँसी जारी रखी।

"आपकी काशी अभी आ जायगी। ऐसा क्रोध करोगे तो जाकर डाक्टर से कह दूँगी।"

"डाक्टर गया जहन्नुम में, दुष्टा! यह सब तेरी ही कारसाजी है।"

"बहुत ठीक! किन्तु क्या आप चुप नहीं रहेंगे?" जरा तरेर कर कड़ाई से मणि ने कहा।

"हे भगवान, हे राम!" रोगी बड़बड़ाया "मेरा भी कैसा भाग्य है! मैं अपंग, निराधार हो गया हूँ इसी से!" कहकर मुचकुन्द रो पड़ा; मणि उसके पास जाकर बैठ गयी।

"भाई! यह कर क्या रहे हो? न तो आप अपंग हैं और न निराधार! किन्तु ऐसा करोगे तो अधिक बीमार अवश्य हो जाओगे।"

"मणि बहन!" मुचकुन्द का क्रोध रोने से कम हो गया, "क्षमा करो, मैं बहुत कमजोर हो गया हूँ, इससे तो मर जाना कहीं अच्छा है।"

"बस, ऐसी बातें न बकिये. अब सो जाइये।"

"बहन! वह वृद्ध घर में कौन है?"

"भाई! यह सब पंचायत इस समय जाने दो, पीछे सब बता दूँगी।"

"किन्तु उसे तुम मेरे पास आने मत देना।"

"बहुत अच्छा।"

"तुम रात में कहाँ जाती हो?"

"लड़की पढ़ाने, अब हुआ, सो जाइये" कहकर मणिने तकिया ठीक से रख दिया और थकावट से मुचकुन्द सो गया।

मणि उठी और अपने माथे पर हाथ रखा। शारीरिक और मानसिक पीड़ा मे उसका माथा दर्द कर रहा था। एक आरसी के सामने जाकर सिर की लटें ठीक की, मनको प्रफुल्लित करने के लिए एक भजन गाते हुए दूसरे कमरे में चली गई।

वहाँ मोघाराम धीरे-धीरे सुरेखाको झुला रहा था। सुरेखाके लिए यमराजकी बुलाहट आ रही थी और मणि जितना भी लगे उतना रुपया पैसा खर्चकर उसे बचानेका प्रयत्न कर रही थी। मणि झूलाके पास बैठ गई और उसे उठाकर कलेजेसे उसने चिपका लिया। मोघाराम चुपचाप यह देख रहा था।

सुरेखाका चुम्बन करते हुए मणिका कलेजा मुँहको आने लगा।

"बहन! हिम्मत कभी नहीं हारनी चाहिये।"

"काका! काका! क्या होने वाला है?"

"कुछ भी नहीं! ऊपर चार हाथ वाला प्रभु बैठा है उसे सबकी चिन्ता है। मुचकुन्द भाई क्या कह रहे थे?"

"क्या कहूँ? बीमारीने चिड़चिड़ा बना दिया है। शक्ति आने पर सब ठीक हो जायगा। काका! सुरेखाको लो। मैं तैयार हो जाऊँ, पीछे देर हो जायगी।"

मोघारामने चुपचाप बालिकाको ले लिया और मणि कपड़ा बदलनेके लिए चली गई।

दो घंटे बाद मुचकुन्दकी निद्रा भंग हुई, उसने धीरेसे 'मणि' का नाम लेकर पुकारा किन्तु उत्तर नहीं मिला। कमरे में एक छोटा सा दीपक जल रहा था और बगलके कमरेमेंसे चरड़ चरड़ झूलेकी आवाज आ रही थी। अकेला पड़ने पर मुचकुन्द पुनः विचार करने लगा। उसे विश्वास हो गया कि मणि कुछ उससे छिपा रही है, नहीं तो यह नया कमरा, यह मुलायम बिछौना

कहाँसे आया ? मणि कह रही थी कि काशी और पांशु पंडया अच्छी तरह हैं, पत्र लिखते हैं तब वे आते क्यों नहीं ? मणिने ही एक बार कहा था कि सेठ चन्दूलालने डाक्टरकी फीसका रुपया दिया है तब उनके यहाँसे कोई हालचाल पूछनेके लिए क्यों नहीं आता ? अवश्य मणिकी कुछ चालाकी है। क्या चालाकी है यह उसकी बुद्धि समझनेमें असमर्थ थी।

इस प्रकार वह बहुत देर तक विचार करता रहा, उसे समय का ख्याल नहीं रहा। एकदम घड़ीमें बजा ग्यारह ! मणिको उसने पुनः आवाज दी। कुछ उत्तर नहीं मिला। प्रति-दिन मणि रातमें कहाँ जाती है ? मुचकुन्दको मणिका पूर्व जीवन याद आया। ऐसी स्त्री क्या नहीं कर सकती ? एकदम एक विचार आया—सभी उलझनें दूर होती हुई मालूम हुई "अब मालूम हुआ कि यह घर किसका है" मुचकुन्द बड़बड़ाया "अवश्य उस वृद्ध का है ! और मणि ?...हाँ.. उसकी रखेली बन गई है... व्यभिचारिणी...पापीयसी। अब तेरा सब भेद खुल गया।"

मुचकुन्द हँसा "इसी लिए वह जवाब नहीं देती है। नीच !" यह विचार आते ही उसके रोंगटे खड़े हो गये। ऐसे अनीतिपूर्ण स्थलमें अधिक ठहरना उसे उचित नहीं जँचा। उसने जानेका विचार किया। इस स्थानमें रहकर जीनेकी अपेक्षा किसी निकृष्ट स्थानमें रहकर मरना उसे अधिक अच्छा लगा।

मुचकुन्द दाँत पीसते हुए उठा और पास ही में रखे हुए एक गरम कोटको उठाकर उसने पहन लिया, सिरमें एक मफलर बाँधा। चारपाई पकड़कर बड़ी कठिनतासे नीचे उतर कर वह खड़ा होने लगा किन्तु बड़ी कमजोरी मालूम हुई। होंठ दबाकर उसने स्वस्थता और बल प्राप्त करनेका प्रयत्न किया। "मर जाना ही अच्छा है...आज ही...मरण...कल...अद्यैव वा

मरणमस्तु युगान्तरेवा—यह किसका लिखा हुआ है ? भर्तृहरि ! उसके समान व्यक्तिने भी ऐसा कष्ट न देखा होगा !" कहकर वह बलपूर्वक खड़ा हो गया और दरवाजेकी ओर चला।

खुले हुए दरवाजेमें से बगलवाले कमरेमें उसने देखा। वह वृद्ध और मणि एक दूसरेके सामने बैठे हुए थे। "धिक्कार है !" उसने चिल्लाकर कहना चाहा, उसकी जीभ लड़खड़ा गई, पैर काँप उठा और वह जमीन पर धड़ामसे गिर गया।

सुरेखाको हिचकी आ रही थी, मोघाराम और मणि बैठे हुए उसका कष्ट निवारण करनेका प्रयत्न कर रहे थे, इतनेमें मणिकी दृष्टि प्रेतवत्, दरवाजेके बीच खड़े हुए मुचकुन्द पर पड़ी। मणि एकदम सुरेखाको मोघारामकी गोदमें देकर दौड़ी; पर उसके पहुँचनेके पूर्व ही वह पृथ्वी पर गिर पड़ा।

डाक्टरने उसे खड़े होनेकी सख्त मनाही कर दी थी। खड़े होनेके परिश्रमसे मुचकुन्दके घावका टाँका कुछ टूट गया जिससे सिरमें से लोहू भी बहने लगा। मोघाराम और मणिने उसे पकड़-कर चारपाई पर सुलाया। फिर मोघाराम डाक्टर बुलाने गया।

१८

मुचकुन्द या सुरेखा

मुचकुन्दकी तबीयत और भी बिगड़ गई। दो दिन तो वह बिलकुल ही बेसुध रहा। चौथे दिन कहीं जाकर वह कुछ पूर्ववत् जैसा स्वस्थ हुआ। डाक्टरने सख्त ताकीद कर दी थी कि वह

उठने न पाये, जिससे पल भर भी मणि उसे छोड़कर कहीं हटती न थी। मोघारामने कई बार स्वयं बैठनेके लिए कहा किन्तु इस भयसे कि कहीं उसका मिजाज फिर न खराब हो जाय वह स्वयं ही बैठी रहती थी। वह मुचकुन्दके स्वभावसे भलीभाँति परिचित हो गई थी जिससे किसी भी परिस्थितिमें वह उसे शान्त कर सकती थी। प्रायः सुरेखा और मुचकुन्द दोनोंके बीचमें खींचातानी होती थी पर उसमें विजय मुचकुन्दकी ही होती थी और मणिको विवश होकर मुचकुन्दके पास ही बैठी रहना पड़ता था।

मणि चिन्ता व जागरणसे दिनों दिन सूखती जा रही थी, उसके होंठ एक पर एक बैठे रहते थे, उसके कपोल पचक गये थे, आँखें बैठ गई थीं किन्तु उसकी इच्छाशक्ति वैसी ही अगम थी। उसीके द्वारा उसने निराशाके द्वारको बन्द कर दिया था। चौथे दिन सन्ध्या समय मुचकुन्दकी तबीयत कुछ अच्छी मालूम पड़ी लेकिन जरासा आराम मिलते ही उसका मस्तिष्क पुनः रोगी बन गया और पहलेके प्रश्न पुनः प्रेतवत् जैसे आकर खड़े हो गये। दूसरे ही दिन ये प्रेत अपना प्रताप दिखाने लगे। मुचकुन्द मणिको वाग्बाणसे बींधने लगा।

मणिको सबसे अधिक भय इस बातका था कि कहीं मुचकुन्द फिर न उठ बैठे। डाक्टरने कहा था कि दो दिन बाद यदि वह उठे तो कोई दुष्परिणाम होनेकी सम्भावना नहीं है इससे मणि सब प्रकारका कष्ट दो दिनके लिए सहनेके लिए तैयार थी और इसके बिना छुटकारा भी नहीं था। किन्तु ये दो दिन मणिको पहाड़के समान मालूम पड़ रहे थे। पागल और रुग्ण—की जीभ कौन रोक सकता है? मुचकुन्दकी जीभ निरकुंश बन गई।

"मुझे क्या? तू तो पिशाचिन है, मनुष्योंका लोहू पीनेके

लिए जन्मी है। पूर्व जन्मका न जाने कौन सा पाप मेरा उदय हुआ जो तुझसे मेरी भेंट हुई? मुझे क्यों व्यर्थ जलाती है? तू अपने रास्ते जा, देख वह तेरा बूढ़ा तेरी बाट जोहता होगा। तुझे क्या? तू कोईकी हुई है कि मेरी ही होगी? कौन जाने तूने कौन कौनसा कर्म किया होगा?...मुझे इस नरकमें लाकर पटक दिया! कुलटा! मेरी पढ़ाई चौपट की, नौकरीसे छुड़ाया, पितासे लड़ाया, हृदयको चकनाचूर कर दिया। इस पर भी तुझे सन्तोष नहीं हुआ, तूने अपना पापाचार दिखानेके लिए मुझे यहाँ ला रखा!.....हे प्रभु मौत दे! संसारमें इन्द्रायनके फल कितने होते हैं? प्रभुने यदि मुझे सत्ता दी होती तो तेरा सुन्दर मुँह तेरे हृदय जैसा बना देता .....हरामखोर ..! मेरी पत्नी कहाँ है? गरीब बिचारी चाहे जैसी भी हो लेकिन है तो वह पतिपरायणा, पतिव्रता! तूने ही उसे कहीं हटा दिया है। यदि तू न आई होती तो वह अवश्य मेरे घर पर रहती, अपने आर्यसंस्कारका सुख मैं अनुभव करता। पर तूने क्याका क्या कर दिया? ..घरको कैसा महल सा सरस बना दिया है। यह मेरे चारपाईके पास पुष्प! अहा हा! सेठ चन्दूलाल मालूम होता है जो वेतन देते हैं उसीसे मेरी गरीब बिचारी मणि मौज उड़ाती है। शाबाश......

इसी प्रकार जाग्रतावस्थामें मुचकुन्दकी जीभ कतरनीके समान चलती रहती थी। उसके एक एक शब्द मणिके हृदयको तीरके समान बेधते थे। मणिको असह्य अपमानसे रोना आता, वहाँसे भागजानेकी इच्छा होती किन्तु उसे विश्वास था कि मेरे हटते ही मुचकुन्द खड़ा होनेका अवश्य प्रयत्न करेगा जिससे उसकी स्थिति पुनः भयङ्कर हो जायगी। मौन धारण कर—मुँह पर बनावटी हँसी बनाए रखकर वहाँ पर वह बैठी रहती थी और सब प्रकारके प्रहारको शान्तिपूर्वक सहन करती थी।

मुचकुन्दके जाग्रत रहने पर मणि क्षणभरके लिए भी वहाँसे हटकर दूसरे कमरेमें नहीं जा सकती थी। परिणाम स्वरूप सुरेखाके पास मणि शायद ही कभी जाकर बैठ पाती। दूसरे दिन मोघारामने कहा—बहन ! आज तू अपनी पुत्रीके पास बैठ, इसका समय अब बिलकुल नजदीक आ गया है।

"काका ! काका ! मैं सब कुछ जानती हूँ" मणिने रो कर कहा—"पर मैं करूँ क्या ? सुरेखाको मरने दूँ या मुचकुन्दको ? जीवितावस्थामें भी कन्याको सुखी नहीं कर सकी और मृत्युके समय भी मैं उसके पास नहीं रह सकती। काका ! मेरे समान अभागिनी भी आपने देखा है ?"

"बेटी ! हिम्मत रख, इस प्रकार क्यों कायरके समान बोल रही है ?"

"काका ! क्या करूँ ? सभी बातोंकी एक सीमा होती है, यह तो अति हो गई। दोनोंमें से एक भी अच्छे होने पर मेरी ओर आँख उठाकर भी नहीं देखेंगे किन्तु पड़े पड़े तो मुझे बेमौत मार रहे हैं।" कहकर मणि जोरसे रो पड़ी और इसी प्रकार बहुत देर तक रोती रही। इतने ही में मुचकुन्द जाग गया।

"मणि ! कहाँ गई ? तुझे क्या परवाह है कि तू यहाँ बैठी रहे ? तू किसीकी हुई है कि मेरी ही होगी ?" मुचकुन्द ने पुनः दुहराया "नारी प्रत्यक्ष राक्षसी।"

दूसरे कमरेसे आनेवाली मुचकुन्दकी आवाज कानमें पड़ते ही मणि उठी और तुरत आँसू पोंछकर वहाँ जाने लगी। इधर सुरेखाका रुदन प्रारम्भ हुआ माँ...माँ...माँ।

"बेटी ! तू यहाँ बैठ। मैं मुचकुन्दके पास जाता हूँ।"

"नहीं काका, नहीं ! वह अभी उठ बैठेगा, मुझे ही जाने दो" कहकर मणि मुचकुन्दके पास चली गई।

मुचकुन्द अपना वाग्बाण छोड़ने लगा। उसे शान्त करनेमें आध घंटा लग गया। इतने ही में दरवाजे पर मोघाराम आकर खड़े हो गये।

"बेटी! जरा इधर आ जा तो।"

"ले! तेरा सगा बुला रहा है। जा...उठ .व्यर्थ क्यों मेरे प्राण ले रही है?"

"मैं तो लूँगी ही, और भी कुछ कहना है?" रोषसे मणिने उत्तर दिया "काका! अभी कैसे आऊँ?"

"अरे अब तो आ—वह दम तोड़ रही है।" मोघाराम घबड़ाहटसे कहा।

"हाँ, जा उठ, बिलकुल आखिरी समय आ गया है; दम तोड़ रही है। ठहर, जरा मुझे बैठ जाने दे।" कहकर मुचकुन्द उठने के लिए जोर करने लगा। मणिने बलपूर्वक उसका हाथ पकड़कर दबा दिया। उसकी छाती फटी जारही थी, आँखके नीचे अँधेरा छा रहा था। उसने देखा कि सुरेखा साँस तोड़नेकी तैयारी कर रही है पर मुचकुन्दको छोड़कर उसके पास जाय कैसे?

मणिके सामने मुचकुन्दका जोर नहीं चला अतः घूमकर वह मणिके हाथमें दाँत काटने लगा।

"लो, काट लो, अच्छी तरह काट लो!" किचकिचाकर मणि उसके सामने अपना हाथ बढ़ाते हुए बोली—"अभी भी कुछ बाकी रह गया है?"

"बेटी, ले यह चली!" मोघारामने अश्रुपूर्ण आवाजमें कहा।

"जाने दीजिये, जो हो जाय वह ठीक है। अरे बाप रे!" कहकर मणि चिल्ला उठी। मुचकुन्दने उसका हाथ काट खाया था और उसमें से लोहू बह रहा था।

मणिके कानमें मोघाराम द्वारा धीरे धीरे उच्चारित "राम

राम" का शब्द सुनाई पड़ा, उसने अपनी आँखें बन्द कर लीं, उसकी आँखोंमें से झर झर आँसू गिरने लगे।

"रो ले! अच्छी तरह रो! बहुत अच्छा हुआ, मेरे चित्तको किसी प्रकार जरा शान्ति तो मिली" मुचकुन्द बड़बड़ाया- "डाकिनी कहीं की!"

आध घंटेमें बड़बड़ाहट कम होने पर मुचकुन्द सो गया तब उसे छोड़कर मणि दूसरे कमरेमें गई। सुरेखा तो इहलोकसे सिधार चुकी थी और उसका छोटा सा शरीर लकड़ी जैसा हो गया था। मणि उसे गोदमें लेकर छाती पीट पीटकर रोने लगी।

१६

मोघाराम का क्रोध

दूसरे दिन मुचकुन्द जरा शान्त रहा। या तो उसकी तबीयत कुछ अधिक अच्छी थी या मणिका म्लान वदन और सूजी हुई आँखें देखकर उसमें दयाका अंकुर फूट गया था जिससे आज मणि पर उसने वाग्बाण नहीं छोड़ा। मात्र सन्ध्या समय मणिको आँसू बहाते हुए देखकर वह बोल उठा—रो ले! अच्छी तरह रो ले! हाँ, अब चित्तको कुछ शान्ति मिली?

ये शब्द सुनकर मणिको अपना दुःख और सुरेखा पुनः याद आ गई। गला फाड़कर वह रोने जा रही थी पर कुछ सोचकर बड़ी कठिनतासे धैर्य धारणकर उसने अपनेको रोका।

रात्रिमें जब वह जागा तो मणिको मोघारामके साथ दूसरे कमरेमें बातचीत करते हुए उसने सुना। उसे बड़ा अचम्भा हुआ; बहुत दिन बाद आज मणिको घरमें रात्रिके समय देखकर वह विचार करने लगा।

रोगसे पीड़ित मनुष्य पशु हो जाता है। उसकी इच्छाएँ पशुके समान अल्पजीवी बन जाती हैं, उसकी वासनाएँ प्रबल हो जाती हैं। वह अपनी दुर्बलतामें भी समस्त संसार पर क्रुद्ध रहता है, अपनी सेवा-शुश्रूषा करनेवालोंको जलानेमें ही उसे आनन्द मिलता है, जरा जरामें प्रसन्न होता है अथवा रोता है। संस्कार-जनित नियमित स्वभाव ऐसे अवसरों पर नष्ट हो जाते हैं और जानवरकी योनिसे अवतरित मनुष्य ऐसे अवसरों पर अपने पूर्वजोंके स्वभावको ग्रहण कर लेता है। मुचकुन्द रोगसे निर्बल और चिड़चिड़ा स्वभाव वाला हो गया था और बराबर एक ही व्यक्ति—मणि—को देखनेसे उसका पशु-क्रोध उसी पर निकलता था। मणि बिना एक क्षण चलता भी नहीं था और उसे देखते ही उसका क्रोध आपेमें भी न रहता।

इस समय पशुकी श्रवण-शक्तिसे कान लगाकर वह उनकी बातचीत सुनने लगा।

"काका ! आप मत आइये ! वह बाट जोहती होगी। यह दासता कब मिटेगी ?"

दासता !" मुचकुन्द मनमें बड़बड़ाया "मेरी सेवा करना दासता है ! देखो कुलटा का ! मेरे मालिकसे पैसा लेकर मौज उड़ाती है और ऊपरसे रोब भी गाँठती है।"

"बेटी !" मोघारामके बोलनेका शब्द सुनाई दिया "घबड़ाती क्यों है, दो एक दिनमें यह चंगा हुआ कि तुम्हें छुटकारा मिला।

"देखो ! इसका नाम नमकहरामी है। गली गली मारी मारी फिरनेवाली इस भिखारिनको मैंने रखा और इससे इतना भी नहीं हो सकता !" मुचकुन्द बड़बड़ाया।

"कौन जाने कब छुटकारा मिलेगा ?" रोते हुए मणिने कहा "सब मर जायँगे लेकिन मुझे मौत कहाँ ?" दुःखी बिचारी

मणिके मुँहसे यह असह्य वेदनापूर्ण उद्‌गार निकल पड़ा।

"मेरी मृत्यु कामना कर रही है! हरामखोर! ठीक है, मैं तो जीवित ही रहूँगा, घबड़ा मत! मुझे एक बार ज़रा आरोग्य तो हो जाने दे" कहकर मुचकुन्द दाँत पीसने लगा।

इसके बाद कुछ सुनाई नहीं दिया, केवल सिसकनेकी आवाज सुनाई दी। आज मुचकुन्दको एक बात और नई मालूम पड़ी—उस छोटे बालककी रुलाई आज नहीं सुनाई दे रही थी। मुचकुन्दको यह बहुत ही विचित्र लगा।

दूसरे दिन सबेरे अपनी हालत उसे पहिले दिनकी अपेक्षा और भी अधिक अच्छी मालूम हुई। मणिकी अनुपस्थितिमें वह उठकर बिछौने पर बैठ गया पर उसका सिर आज पहिलेकी तरह घूम नहीं रहा था। शारीरिक शक्ति कुछ बढ़नेसे वह कुछ अधिक सुचारु रूपसे विचार कर सका किन्तु उसके सभी विचार मणिकी दिशामें ही जा रहे थे। रातमें मणि और मोघारामकी जो कुछ बातचीत उसने सुनी थी उसके क्रोधाग्निमें उसने आहुति के समान काम किया जिससे उसके क्रोधने उग्रतर रूप धारण कर लिया। जिस प्रकार एक रसिक व्यक्तिको खटमल धीरे धीरे तड़पा तड़पा कर मारनेमें ही आनन्द मिलता है वैसे ही मुचकुन्द मणिको तड़पाने लगा।

मुचकुन्दकी बातें धधकते हुए अँगारेके समान जलती थीं। अचूक शब्द, गूढ़ पर मर्मभेदक कटाक्ष, कलेजेको कँपा देनेवाली उपमाएँ—इन सबका उपयोग अविचार पूर्वक वह करने लगा। मणि त्रस्त हो उठी—दूसरे कमरेमें मोघारामका रोम रोम खड़ा हो गया।

इसी प्रकार संध्या वेला आ पहुँची। सावन-भादोंकी वर्षाके समान आँसू गिराती हुई मणि अदृष्ट हुई। मुचकुन्दने भी देखा

कि जहाँ कहीं भी मणि प्रति दिन जाती थी वहाँ वह चली गई। वह गई कहाँ? यह वृद्ध कौन है? वह बालक कौन है? सतत उठनेवाले प्रश्नोंका निर्णय एक बार कर लेनेका उसने निश्चय किया। घरमें शान्ति विराज रही थी—तब क्यों न उठकर जरा घूम फिर कर सब प्रश्नोंका पता लगा लूँ ?

धीरेसे वह उठकर बैठ गया, नीचे पैर रखकर और चारपाई पकड़कर वह खड़ा हो गया। उसका पैर काँपा पर अधिक निर्बलता नहीं मालूम हुई। हाथ छोड़ देने पर भी वह गिरा नहीं। उसे हिम्मत आई। धीरे-धीरे दूसरे कमरेकी ओर वह जाने लगा, पूरा घर निर्जन, सूनसान-सा था।

दूसरे कमरेमें उसने मोघारामको एक कोनेमें बैठकर संध्या करते हुए देखा। मुचकुन्द हँसा। वह वृद्ध मणिका मित्र है अतः इसे भी खिझानेसे आनन्द मिलेगा ऐसा उसके मस्तिष्कमें विचार उत्पन्न हुआ। वह दीवालके सहारे उसके पास गया। मोघाराम आँखें बन्द कर गायत्रीका जप कर रहा था। किसीके पैरकी आहट सुनकर उसका ध्यान भंग हो गया, पीछे घूमकर देखने लगा और मुचकुन्दको देखकर वह चौंक उठा। मुचकुन्दके मुँह पर—एक पशुके—राक्षसके मुँह पर जैसी हँसी होती है वैसी ही हँसी थी। वह मोघारामको छूनेके लिए आगे बढ़ता चला आ रहा था।

"ऊँ हुँ हुँ हुँ..." मोघारामने मना करते हुए कहा।

"अरे ऊँहुँ वाला!" तिरस्कारसे हँसते हुए मुचकुन्द ने कहा। "इतना घबड़ाता क्यों है? क्या मैं उससे भी गया बीता हूँ?" कहता हुआ वह और भी पास आ गया।

"अरे मूर्ख! पीछे लौट जा नहीं तो अभी अपनी जानसे हाथ धो बैठेगा। कुछ ज्ञान है या नहीं?...अरेरे...खबरदार!

जो तूने मुझे छूआ तो समझ रखना !"

मोघारामको घूरकर मुचकुन्द ठट्ठा मारकर हँसा।

किसी यज्ञके भंग हो जानेसे क्रोधवश हुए मुनिके समान मोघाराम कूदकर खड़ा हो गया, उसके हाथकी गौमुखी काँपने लगी। "हरामखोर !" मोघारामने दाँत पीसते हुए कहा किन्तु वह मणिका अक्रीतदास था, उसकी इच्छा पूर्ण करनेके लिए अपने प्राण तक अर्पण करनेके लिए तैयार था और उसीके लिहाज से आज तक मुचकुन्दके प्रति वह अपना रोष प्रदर्शित न कर सका था। पर इस समय मुचकुन्दके सीमोलंघन पर मोघाराम अपने क्रोधको वशमें रख नहीं सका।

"वह तेरी गई कहाँ ? मुचकुन्दने उपहासपूर्ण हँसीसे पूछा।

"अरे ठहर तेरी और तेरा वाला ?" कहते हुए गौमुखी फेंककर मुचकुन्दका हाथ पकड़कर दूसरे कमरेकी ओर उसे घसीटकर ले जाते हुए वह बोला--"जब तक नहीं बोलता तभी तक क्या ? मैं मणि बहन नहीं हूँ कि तेरी बकझक सुनता रहूँगा, समझ गया या नहीं ? चल चुपचाप बिछौने पर सो जा, नहीं तो तू जानना उसने जबरदस्ती मुचकुन्दको बिछौने पर बैठा दिया।

"हाँ, मैं तो जानूँगा ही किन्तु वह जाती कहाँ है यह तो बताओ ? मेरे मालिकके पैसेसे खूब मौज उड़ानेको मिलता है।

मोघाराम दाँत पीसने लगा। यदि मुचकुन्द बीमार न होता, एवं मणिका डर न होता तो उसने मुचकुन्दको अवश्य पीट दिया होता।

"अरे मूर्ख ! जरा अपनी जीभ संभालकर बोल। मैं तेरी एक भी बात न सहूँगा। खा पीकर बिचारीकी जान ले रहा है और ऊपरसे रोब झाड़ता है ?"

"यह भी ठीक है ! मुफ्तका खाना और मसजिदमें..."

"चल बस चुप भर रहना। क्या करूँ मणि बहन तेरे पीछे जान देती है नहीं तो मैं अभी तेरा कचूमर निकाल देता। तेरा पूर्व-जन्मका कोई पुण्य उदय हुआ जो मणिसे तेरी भेंट हो गई, नहीं तो छटपटा छटपटा कर कभी मर गया होता।"

मुचकुन्दका चेहरा तिरस्कारसे विकृत हो गया "पैसा ˙ "

मोघाराम चिग्घाड़कर बोला—"पैसा तेरा पैसा, भिखारी! तू मनुष्य है या पशु? वह बिचारी जो कुछ कहती है उसीको सच मानकर तू फूला नहीं समाता है! यह सब खर्च तेरा बाप ही तो मानो भेज देता है?"

"बाप नहीं तो और कौन भेजता है? तू या तेरी मणि?"

"तेरा बाप नहीं, तेरा सेठ नहीं, मैं भी नहीं बल्कि मणि बहन लाती है। कृतघ्न! तेरी अपेक्षा तो एक कुत्ता अधिक समझदार होगा। यह बिछौना, यह डाक्टर, यह दूध सब कौन पूरा करता है? तेरा सेठ? मूर्ख बीमार पड़ते ही तेरा बाप भाग गया, तेरी पत्नी चलती बनी, और तेरे सेठने तो आज तक मुँह भी नहीं दिखाया। यह तो परमेश्वरका उपकार मान कि तुझे मणि बहन मिल गई जो अपना खून पानी एक कर, जहाँ तहाँस पैसा लाकर तेरी दवा-दारू करती है और व्यंग-वचन सहकर भी अपने दुःखकी परवाह न कर तेरी सेवा-शुश्रूषा करती है।"

"हूँ!" मुचकुन्द स्तब्ध होकर देखने लगा।

"हूँ क्या करता है? तुझे कुछ खबर भी है? तेरे लिए बिचारीने नौकरी छोड़ी, वेश्याके घर जाकर गाना शुरू किया, तेरे ही लिए इकलौती पुत्रीको मर जाने दिया और मृत्युके समय भी उसके पास तक नहीं गई। तेरे मनमें इन सबका कुछ विचार ही नहीं है। बड़े धन्नासेठके नाती हो न? आज कितने दिन हो गये तेरी सेवा करनेसे, कमाकर तेरे लिए पैसा लानेसे और तेरे

व्यंग-वचन सुननेसे बिचारीको एक क्षणके लिए भी विश्राम करनेका अवकाश नहीं मिलता, बिचारी सूखकर काँटा हो गई। वह तो पागल है, उसके स्थान पर यदि मैं होता तो दो तमाचा लगाकर एक दिनमें तुझे सीधा कर देता।"

"मणि गानेका धन्धा करती है?"

"जी हाँ; आपके लिए वह क्या क्या करती है इसकी जनाब को कुछ खबर भी है?"

"तब कोई बताता क्यों नहीं था?" दबी जबानसे मुचकुन्द बोला।

"आप फूलके समान सुकोमल जो हैं, कहीं कुम्हला न जायँ, इसी डरसे।"

"यह जो रोती रहती थी वह उसकी सुरेखा थी।"

"जी हाँ, याद है कि परसों सुरेखा मर रही थी उस समय भी जनाबने उस बिचारीको जाने नहीं दिया। मरते समय भी पुत्रीका मुँह वह देख नहीं सकी। तू मनुष्य है?—राक्षस है राक्षस।"

"मेरा बाप कहाँ है?"

"अपने गाँव पर—दो महीना हुआ किसीने उसका मुँह भी देखा है?"

"और मेरी पत्नी?"

"अपने नैहर। चलिये अब आप चुपचाप सो जाइये, बहुत लपड़-सपड़ करोगे तो दो-चार लगा दूँगा। न मालूम कहाँसे ऐसे भाड़के टट्टू पैदा होते हैं?" कहकर मोघाराम वहाँसे चला गया। जो कुछ उसे कहना था वह कह चुका था।

सिर पर चोट पड़नेसे जैसे मनुष्य अचेत हो जाता है वैसे ही मोघारामके शब्द-प्रहारसे मुचकुन्द बेसुध हो गया—विचार-

शक्ति जाती रही। थोड़ी देरमें इसी उधेड़-बुनमें वह सो गया।

तीन चार घंटे बाद उसकी नींद खुली; मोचारामके शब्द पुनः प्रहार करने लगे। उसने घबड़ाकर चारो ओर आँखें दौड़ाईं। दूर जमीन पर मणि पड़ी सो रही थी। दीपक धीमा धीमा जल रहा था। मुचकुन्द थोड़ी देर तक उसकी ओर देखता रहा। निद्रामें भी मणि उसासें ले रही थी।

अपने शब्द, मणिकी देवाङ्गना सदृश सेवा, उसका भगीरथ आत्मत्याग, उसकी असाधारण सहनशीलता—यह सब याद कर मुचकुन्द अपनेको धिक्कारने लगा। ज्यों ज्यों उसने अधिक विचार किया त्यों त्यों अपना राक्षसी और स्वार्थी स्वभाव तथा मणिकी प्रेमपूर्ण निःस्वार्थ सेवा उसे अधिक कोसने लगी। कहाँ स्वार्थी, आत्मसन्तोषी, कायर, विचारमें जीवन व्यतीत करनेवाला स्वयं वह और कहाँ भीष्म कर्त्तव्यपरायणताकी शिखर पर पहुँची हुई वीर मणि? भला कहीं दोनोंमें तुलना हो सकती है।

ज्यों ज्यों वह अधिक विचार करता गया त्यों त्यों मणिके प्रति उसकी पूज्य भावना और अपनी कायरता पर घृणा बढ़ती गई।"

क्यों मैंने उसे छोड़ दिया? क्यों नहीं उसकी पाद-वन्दना करते हुए अपना समय व्यतीत किया? यह कायरता, यह अस्थि-रता कहाँसे आई? वह अपने स्वभावको, संस्कारको एवं समाजको दोष देने लगा।

उसने पुनः नीचे देखा—मणिका चेहरा बिलकुल पीला पड़ गया था, उसकी निद्रा निःश्वासपूर्ण थी। उसे दुःखी देखकर मुचकुन्द व्याकुल हो उठा। उठकर मणिसे क्षमायाचना करनेकी—उसके चरण पर माथा रख देनेकी उत्कट इच्छा हुई। उसने सोचा यह स्त्री है या देवी?

घण्टों इस प्रकार विचारमें बीत गये। घड़ीमें तीन बजा। मणिने अँगड़ाई ली; मुचकुन्दको दवा देनेका समय हो गया था। आँखें मीचती हुई मणि उठकर बैठ गई।

२०

खींच-तान

मणिको उठते हुए देखकर मुचकुन्दने अपनी आँखें—लज्जा से, मणि क्या करती है यह देखनेके लिए—आधी बन्द कर ली। मणिने उठकर दीपक तेज किया। मुचकुन्दने बहुत दिन बाद आज ध्यान-पूर्वक उसका चेहरा देखा। मोहकता दूर होकर उससे मुँह पर उदासी आ गई थी; उसके चेहरे पर चिन्ता, दुःख और खिन्नताके चिन्ह स्पष्ट दिखाई दे रहे थे। उसकी आँखों में—सूर्यके सदृश रश्मि फेंकनेवाली तेजस्वी आँखोंमें—थकावट और दुःखका मिश्रण था। उसके सुदृढ़, भरे हुए वर्तुलाकार अंगोंमें गड्ढे पड़ गये थे। अतिशय थकावटके कारण एकाएक मणिके मुखसे निकल जाने वाले 'हाय' शब्दको सुनकर मुचकुन्द का हृदय फटने लगा, उद्वेगसे कलेजा उछलने लगा। इन सब दुर्दशाओंका कारण कौन? स्वार्थी, वहमी, क्रूर स्वयं मैं!

उठकर मणिने टेबुल परसे दवा उठाई, उसे ग्लास में उड़ेला और मुचकुन्दकी चारपाईकी ओर बढ़ी। मुचकुन्दके रोंगटे खड़े हो गये उसका स्नेह, उसकी कार्यदक्षता और प्रेम-परायणता कैसी अनुपम और सराहनीय है! क्षणभर अनिर्वचनीय, ग्लानि-पूर्ण स्नेहसे खड़ी रहकर मणि उसकी ओर देखती रही। मुच-कुन्दके रग-रगमें अग्नि व्याप गई उसे अपना सिर अवर्ण्य तरंगों

से, अपरिमाण शोकातिरेकसे, अगाध प्रेमसे फटता हुआ सा ज्ञात हुआ।

"भाई! जागते हो?" मणिने पूछा। उसकी आवाजमें कैसी मृदुता थी, कैसा प्रेम और खेद था।

मुचकुन्द न तो कोई उत्तर दे सका और न उसकी आँखें ही खुल सकीं। बिलकुल आधार रहित सा उसने केवल अपना हाथ बढ़ा दिया। उसे हटाकर मणि चारपाई पर बैठ गई और नीचे झुकी। प्रति दिनके समान आज भी मुचकुन्द मणिको अपने पास बैठते हुए देखकर काँप उठा पर आज उसका कम्पन भिन्न प्रकारका था।

"भाई जरा दवा पी लो!"

मुचकुन्दने अपनी आँखें आधी खोल दीं, मणि उसका सिर उठानेका प्रयत्न करने लगी, और ग्लास उसके मुँहके पास ले गई। मुचकुन्द घबड़ाहटमें जरा ऊपर उठा, उसके सिरके पास मणिका सुकोमल हाथ था, उसकी आँखोंके सामने उसकी प्रेम-पूर्ण आँखें थीं। मुचकुन्दने अनजानमें अपना मुँह खोलकर दवा पी किन्तु वह गलेके नीचे नहीं उतरी। उसे मणिकी आँखें भय-भीत सी प्रतीत हुईं, प्रति दिन जिन गालियोंकी वह बौछार करता था उसीकी वह प्रतीक्षा करती हुई सी मालूम हुई। अपने पर उत्पन्न तिरस्कारसे मुचकुन्द ज्ञान-शून्य होकर केवल स्वर्गकी अप्सराके समान मणिके अलौकिक मुखको देखता रहा।

सहसा उसकी रगें उमंगसे फड़क उठीं, आँखें चमक उठीं दवा ढुलक गई, इसकी उसने तनिक भी परवाह नहीं की; उसका यह रंग देखकर, सन्निपातका पुनः दौरा आया समझकर मणि घबड़ा उठी। इस ओर भी उसने ध्यान नहीं दिया, घावके फट जानेकी भी चिन्ता उसने नहीं की। अनुपम, अवर्णनीय भावसे

उसने अपना हाथ मणिके कन्धे पर रखा, रखा क्या वह स्वतः रखा गया; मणिका मुँह थोड़ा और पास खींचा और असह्य वेदनापूर्ण दृष्टिसे अन्तरकी आत्मकथा व्यक्त कर दी।

मणि घबड़ा उठी, नीचे झुके हुए प्रत्येक पल युगके समान उसे बीतने लगे।

मुचकुन्दसे इस प्रकार अधिक देर तक बैठा नहीं जा सका, उसने अपना सिर तकिया पर रख दिया। उसीके हाथके सहारे मणि और भी नीचे झुक पड़ी।

मणि! क्या मुझे क्षमा नहीं करोगी?" मुचकुन्दने भर्राए हुए स्वरमें पूछा।

मणिने क्या समझा, क्या अनुभव किया, कौन जाने? जन्मके पश्चात् अपने माता-पिताके उल्लासपूर्ण स्नेहकी पराकाष्ठा उसने देखा न था। मुचकुन्दको उत्तर उसकी सिसकियोंने दिया। न कोई बोला, न कोई चाला। चारो ओर गोपीजन-वल्लभकी अदृष्ट मधुर मुरलीका मद-प्रेरक आलाप गूँज रहा था, उसने इन दोनोंके हृदयोंको एक अलौकिक देशमें पहुँचा दिया।

इसी प्रकार पाँच मिनट—दस मिनट व्यतीत हो गये। मणिने सिर उठाकर देखा। मुचकुन्द ऊँघ रहा था। धीरेसे उसका हाथ हटाकर वह खड़ी हो गई। पुनः बैठ जानेकी इच्छा हुई पर उसने इस इच्छाको दबा दिया। मुचकुन्दका चादर ठीक किया—पर उसका एक कोना पकड़े रही—वह छूटा नहीं। थोड़ी देर बाद रजाईके उस छोरको हृदयसे लगाकर उसके कानमें कुछ सन्देशा कहा—और तब उसे छोड़ दिया।

जीवन-साफल्यके गगनस्पर्शी गौरीशंकर-शिखर पर वह पहुँच गई हो ऐसा उसे लगा।

———

चतुर्थ खण्ड

१

मुचकुन्दके नये सिद्धान्त

तीन सप्ताह शीघ्रता से निकल गये। मुचकुन्द रोग से मुक्त, पर सूखा और कपास जैसा सफेद, जमीन पर तकिया रख कर लेटा हुआ था। उसके हाथ में खुली हुई एक पुस्तक थी। सामने इसी तीन सप्ताह में चिन्ता से मुक्त होने पर पुनः कुछ स्वस्थ होकर तेजस्वी बनी हुई मणि कमर पर हाथ रखे हुए खड़ी थी। उसके मुख की सुन्दर गढ़न में अद्भुत पंछी ने गौरव और दृढ़ता की वृद्धि कर दी थी। बाहर की प्रचंड धूप की प्रतिबिंब पड़ने से, श्वेतवस्त्र से सुसज्जित मणि, अपने लालित्य, अपने स्वतंत्र अनुपम खड़े रहने के विचित्र ढब से एक नवयौवना मदमाती रानी के समान प्रतीत हो रही थी।

पुस्तक बंद कर मुचकुन्द ने उसकी ओर देखा। उसकी आँखों में अनिवार्य्य तेज—जैसा कि परम भक्त अथवा परम प्रणयी की आँखों में ही केवल देखने में आता है—दिखाई पड़ा।

यह तेज देखकर मणि के मधुर होंठ कठोर हो गये, उसकी आँखें चिन्ताग्रस्त दिखाई दीं।

"मुचकुन्द! अब काशी को कब बुलाओगे?" ऊपर से बिजली गिरने से अथवा पास ही में रखी हुई कुर्सी के हँस पड़ने से भी वह इतना न घबड़ाता जितना कि यह प्रश्न सुनकर

घबड़ा उठा। उसने ऊपर सिर उठाकर देखा, हठात् ठंढा पड़ गया। वह आँखें फाड़ फाड़कर देखता ही रहा। दोनों ने कुछ दिन के लिए सांसारिक झंझटों की बातें करना छोड़ दिया था। आज मणि ने यह बात छेड़ी। मुचकुन्द ने भौहें चढ़ाकर पूछा—आज यह प्रश्न क्यों उठा ? इसका कारण ?

"कारण साफ है; अब आपको इसका विचार करना चाहिए" खेदपूर्ण आवाज में मणि ने कहा "आप अब स्वस्थ हो चले कॉलेज में अब आपको 'प्रोफेसर' की जगह मिलनेवाली है। काशी को बुलाना चाहिए।"

"और तू ?"

"मैं ?" मणि ने दृढ़ता से कहा "मैं अपने रास्ते जाऊँगी। अब मेरा तो कुछ काम दिखाई नहीं देता।" मणि ने दहला देनेवाली हँसी हँसते हुए कहा।

बहुत देर तक मुचकुन्द देखता रहा फिर बोला—यह बेवक्त की हँसी कैसी ? मैं तो समझ रहा था कि हमने उसे भुला दिया है।

"किसने कहा ? काशी कितनी दुःखी होती होगी इस पर आपने कभी विचार किया ?"

"इस सुखमय जीवन में तुम्हें वह कैसे याद आ गई ?"

"मैं सदैव उसे याद किया करती हूँ। मुझे अब ज्ञान हो गया है कि स्वच्छंदता का नाम सुख नहीं है।"

"तब जीवन को दासता की जंजीरों में भी नहीं जकड़ा जा सकता।" मुचकुन्द ने कहा "इतने दिन सतत मैं इसी पर विचार करता रहा हूँ।"

"क्या ?"

"यही कि जो दुर्बलता मेरे में थी वह कहाँ से आई और उसे कैसे दूर किया जाय।"

"यह विचार आया कहाँ से ?"

"तुम्हें—कर्तव्यपरायणता की अवतार को—देखकर। इतने दिनों तक—मेरा स्वभाव कहो, अथवा मेरा संस्कार कहो—मैं कायर था। अब मैंने मनुष्यत्व पाया है। इतने दिनों के विचार के उपरान्त मैंने अपना जीवन-सिद्धान्त बदल दिया है।"

"क्या ?"

"मैं अपने विचार के अनुसार ही रहूँगा, किसी की दासता स्वीकार नहीं करूँगा।"

"अर्थात् आप अपने विचारानुसार काशी को मायके में सड़ने देंगे, क्यों ?"

"नहीं तो क्या तुम्हारे विचारानुसार मैं अपने स्वातंत्र्य को भी काशी को अर्पण कर दूँ ? मणि ! मणि ! क्यों बेकार की बातें करती हो ? तुम चाहे कहो अथवा न कहो—हम दोनों का जन्म एक दूसरे के लिए हुआ है, एक साथ रहने से ही हम दोनों जीवित रह सकेंगे, और विलग होने से मर जायँगे। मुझे यह करना नहीं है। जीवन है तो उसे पानी के मोल बेचना नहीं है।"

"पहले मैं भी ऐसा ही सोचा करती थी किन्तु यह आपकी भूल है।"

"कैसे ?"

"जीवन केवल सुख लूटने के लिए ही नहीं बल्कि दूसरों को सुख पहुँचाने के लिए भी है। काशी आपकी परिणीता पत्नी है, उसे दुःख देने से क्या कभी सुख मिल सकता है ?"

मुचकुन्द हँसकर बोला—पहले मैं इसे स्वीकार कर भी लेता लेकिन अब नहीं।

"क्यों ?"

"तू क्या देख नहीं रही है ? मेरी नसों में आर्य महात्माओं

का पवित्र लोहू बह रहा है, इसी लोहू की उग्रता ने दिग्विजय किया, पृथ्वी को क्षत्री-विहीन कर दिया, अनंत काल तक विद्यमान रहने वाली संस्कृति उत्पन्न की। मैं क्या था, क्या हो गया? परशुराम, द्रोणाचार्य, चाणक्य के वंशज की यह दुर्दशा! आधार-रहित, निर्बल, कायर मैं क्यों हुआ, इस पर भी तुमने कभी विचार किया?

मणि आश्चर्य से उसकी ओर देखती रही, उसने अपना सिर हिला दिया।

जिस रात्रि में मोघाराम काका ने मुझे धिक्कारा—उसी रात्रि में मेरी मदांधता जाती रही; जिस रात्रिको हमने एक दूसरे के हृदय को परखा—उसी रात्रि में मैंने इसकी खोज की।

"क्या?"

"ऐसे तेजपूर्ण बीजमें से ऐसा निर्बल फल क्यों उत्पन्न हुआ।"

"क्यों हुआ?"

"काशी जैसी स्त्रियों ने बनाया। मणि! मैं इस समय चेतना शून्य, बेसुध नहीं हूँ। घबड़ा मत। सतत विचार कर मैं इसी निर्णय पर पहुँचा हूँ। हजारों वर्षों से इसी प्रकार का बेमेल, अयोग्य स्त्री-पुरुष का जोड़ा मिला मिलाकर हमारा यह सत्यानाश किया गया है। काशी जैसी स्त्रियाँ ही मुझ जैसे भिखारी उत्पन्न करती हैं! किस लिए? मणि! समस्त सृष्टि में आँखें घुमा कर देखो; जहाँ सौंदर्य, शौर्य, प्रताप पूर्ण विकसित दिखाई देता है उस स्थल को देखो। गहन वन में वनराज की भव्यता और प्राणभेदक नाद सिंहनी ढूँढ़ती है, सरोवर के जल-तरंग में पौढ़ने वाली हंसिनी विशुद्ध शुभ्र वर्ण पंखवाले और सुन्दर गले वाले हंस को वरण करती है; जिस देश में सत्ता है विचार-स्वातंत्र्य है वहाँ प्रत्यक्ष शोध करती हुई अभिमानी दृष्टि पर

नरसिंह चढ़ते हैं। मणि! पर इस गरीब पंगुल देश में ज्योतिषियों की लालसा पर, गवांधों के घमंड पर, बुड्ढी स्त्रियों के प्रबंध से वर-पत्नी का जोड़ा मिलाया जाता है। इसके पश्चात् मेरे जैसा कपूत उत्पन्न करने पर देश का यदि अधःपतन हो तो इसमें नवीनता ही क्या है? जिस क्षण से हमारे यहाँ से स्वयंवर प्रथा उठ गई उसी क्षण से हमारे सांसारिक जीवन का सत्यानाश प्रारंभ हो गया। मणि! मेरा जन्म काशी के लिए नहीं हुआ है और न न तुम्हारा ही जन्म इस प्रकार भयङ्कर एकान्त में जीवन व्यतीत करने के लिए ही हुआ है।'

मणि अब तक आधा मुँह खोले हुए मुचकुन्दका भाषण सुन रही थी। उसका अन्तिम शब्द सुनते ही उसका मुँह बन्द हो गया, उसके कपाल पर सिकुड़न पड़ गई।

"मुचकुन्द भाई! आप क्या कह रहे हैं इसकी कुछ खबर है? यद्यपि आपके विचारानुसार सब लोग करने लगें—" उसने बहुत ही खेदमय स्वर में कहा—"तो संसार और नीतिकी क्या दशा हो? आपकी भाषा-सौन्दर्य निकाल देने पर एक अधम, पतित विषय-कामांधने जो कुछ मुझसे कुछ दिन पहले कहा था वही रह जाता है। उस समय वह अर्थ सच्चा लगा था किन्तु आज अनुभवसे वह झूठा प्रमाणित होता है। संसारसे सच्चरित्रता और नीतिका लोप हो जाय?"

"ऐसा कौनसा अनुभव हुआ?" अविचारसे मुचकुन्दके मुँहसे स्वतः निकल गया।

"मैं कौन हूँ यह क्यों भूल जाते हो?" रुद्ध कण्ठसे मणिने पूछा "मैं बाल-विधवा हूँ—संसारने कोमल वयमें मुझे अपनी मर्यादासे च्युत कर दिया। जो कुछ आप आज कह रहे हैं उसी अभिप्रायको व्यक्तकर एक पापीने मुझे लुभाया—मैं उसके फेरमें

आ गई। परिणाममें मैं अपना अस्तित्व ही खो बैठी होती, यह तो पूर्व जन्मके कुछ पुण्यसे आपसे भेंट हो गई जिससे पुनः मुझे मनुष्यत्व प्राप्त हो गया।"

"मणि! कामांधता भिन्न वस्तु है। मैं तो विश्व के महान् आकर्षण की बात करता हूँ—प्रेम का गूढ़ माहात्म्य स्पष्ट करना चाहता हूँ।"

"सभी क्या मुचकुन्द हैं? सामान्य, संस्कारहीन मनुष्य इन दोनों में क्या अन्तर देखेगा? और इसके परिणाम की ओर भी क्या दृष्टिपात किया है? काशी को दुःखी कर हम दोनों मौज उड़ावें यही या और कुछ?

"नहीं, बल्कि दो सुशिक्षित जीवों के जीवन की सफलता सिद्ध कर अपने भविष्य के जीवनको विकसित करना है।"

पर आपके सिद्धांत तो शारीरिक सुख और विकास की बातें ही करते हैं।"

नहीं, मैंने सिंह और हंस की उपमा अवश्य दी किन्तु जिस प्रकार पशु से मनुष्य अधिक सुन्दर और बुद्धिमान है वैसे ही उसे केवल शरीर ही आकृष्ट नहीं कर सकता बल्कि सुशिक्षा और बुद्धि की भी उसको आवश्यकता पड़ेगी। नहीं तो एक दूसरे पर विजय कैसे प्राप्त कर सकेंगे?"

"आपके कथन का यह परिणाम निकलता है कि दुनियाँ में जहाँ चाहे भ्रमण करें और अपनी इच्छित जोड़ी को पकड़ लावें। यदि यह बात सच हो तो कल ही विलायत जाकर एक हृष्ट-पुष्ट बाघ जैसी मैडम ला रखने से ही सभी नियम पूरे हो जायँगे। मुझे तो मालूम पड़ता है अभी आपका मानसिक सन्निपात दूर नहीं हुआ है।" मणि ने हँसकर कहा।

मुचकुन्द ने भी हँसकर उत्तर दिया—तू उलटा समझ रही है मणि ! मेरी धारणा यदि ठीक हो, यदि विवाह—संस्कार और शक्ति बढ़ाने का ही साधन हो और यदि वह साधन समान संस्कार और शक्ति धारण करनेवाले स्त्री-पुरुष में जो स्वाभाविक आकर्षण हो उसी के संयोग से फलीभूत हो तो भिन्न भिन्न संस्कारवाले स्त्री-पुरुष के संयोग से उत्पन्न दुःख और अधोगति संसार से नष्टप्राय हो जायँ ! हजारों वर्षों से वंश परंपरागत संस्कारिता नष्ट हो जाने पर क्या दशा होगी ? 'धर्मे नष्टे...... हो तो वर्ण संकर ?"

उलझन में मणि ने सिर हिला दिया "वाद-विवाद में आपको मैं जीत नहीं सकती, पर आपकी बात गलत मालूम पड़ती है। सभी यदि आपके मत के हो जायँ तो नवयौवना सुन्दरियोंको देखते ही सब पागल होकर उनके पीछे दौड़ने लगें।"

"अब भी तुमने नहीं समझा। शारीरिक मोह क्षणिक है; व्यक्ति का मोह जीवन में एक ही बार आता है और सदा बना रहता है।

"और यदि ऐसा कोई व्यक्ति न मिले तो—पर-स्त्री हो तो..."

"न मिले तो अनगिनती फलों से पृथ्वी भरी पड़ी हुई है, अस्पर्श्य सुन्दरी के लिए जीवन पर्यन्त सन्यासी बनकर रहना कहीं अच्छा है। या तो सृष्टि का साम्राज्य या संन्यास।"

"अर्थात् यदि मैं रहना स्वीकार न करूँ तो भी काशी को न बुलावेंगे, क्यों ? तब विवाह क्यों किया ?"

"मूर्ख था इसलिए। पर अब मैं वैसा नहीं हूँ "भूख प्यास से मृगपति मर जाय पर कभी वह तृण नहीं चर सकता—तब मेरी सिंहनी..."

"सिहली गई घर ! अपनी कहावत अपने पास रहने दीजिये !" मणि ने बीच में ही टोंका।

"तब क्या करूँ ?"

"काशी को बुलाइये।"

"मुचकुन्द ने सिर हिलाकर कहा—मेरा कहना उलटे घड़े पर पानी सदृश हुआ ?

"प्रायः वैसा ही।"

अच्छी तरह विचार करो, दो दिन बाद फिर बात करूँगा। यदि मुझसे पूछा जाय तो इसी प्रकार यदि प्रभु रहने दें तो स्वर्ग की भी क्या परवाह है ?''

मणि की आँखें चमक उठीं "क्या मेरे मनमें ऐसे विचार उत्पन्न नहीं होते ? पर कर्त्तव्य-विहीन स्वर्ग ! वह किस कामका ?"

२

अन्तिम निश्चय

दिन भर दोनों व्यक्ति मूक इधर से उधर घूमते रहे। वे दोनों एक ऐसे गंभीर, मर्मस्पर्शी प्रश्न का निराकरण करने में संलग्न थे जिसपर उनके भविष्य, जीवन की आशा एवं सुख-समृद्धि निर्भर करती थी।

सन्ध्या समय मोघाराम किसी काम से बाहर चले गये। आज मणिकी दासता का अंतिम दिवस था। दूसरे दिन वह तुङ्गभद्रा की नौकरी छोड़नेवाली थी। जिस कार्य के लिए उसने वेश्या की नौकरी की थी वह कार्य सफल हो गया था। मुचकुन्द

पूर्ण आरोग्य हो गया था। भोग विलास अथवा अपने सुख के लिए पाँच रुपये प्रतिदिन पर अपना राग बेचने के लिए वह तैयार नहीं थी। मणि विचार में मग्न खड़ी थी, पीछे से मुचकुन्द ने उसके कंधे पर हाथ रख दिया जिससे वह चौंक पड़ी।

"मणि! तुमने क्या निश्चय किया ?"

"क्या निश्चय करूँ ? मेरे मस्तिष्क में से काशी नहीं जाती। हमें कोई निर्णय झटपट कर लेना चाहिये।

"निर्णय क्या ?" कंधा दबाते हुए उसने कहा हम एक साथ रहेंगे और क्या !"

मणि ने सिर हिलाकर अपनी अस्वीकृति प्रकट की।

"क्यों ? तू अपने हृदय की बात प्रकट क्यों नहीं करती ?

"मैं क्या कहती हूँ ? जैसा आप कह रहे हैं वैसा आचरण बहुत ही निन्दित होगा। आपको भले ही सृष्टिकर्त्ता द्वारा रचित मैं आपकी अर्धांगिनी मालूम पड़ती होऊँ पर संसार द्वारा दी हुई दूसरी ही है।

"इसमें तुमने नवीन कौन सी बात कही ?"

"सब कुछ। आप मुझे रखना चाहते हैं पर आपने अपनी आँख की चमक, अपने हृदय की धड़कन पर भी ध्यान दिया है ? जैसा आप कह रहे थे वैसे शुद्ध और सात्विक प्रेम से मुझे रख सकेंगे ?" मुचकुन्द ने कुछ उत्तर नहीं दिया। मणि आगे कहने लगी "नहीं, देखिए स्नेह की सरिता में तैरना अच्छा है पर ज्ञान खो बैठने पर अवश्य डूब जाना पड़ेगा। आप मदोन्मत्त हैं, मैं भी मदमाती हूँ—परिणाम क्या होगा ? जो पतितावस्था प्राप्त करने से आपके कारण बची, वही पतिता पुनः आपके ही द्वारा मुझे बनना होगा—किसी प्रकार भी इससे बच नहीं सकती। क्या ऐसी पतिता होने से आप मुझे बचा नहीं

सकोगे ?" करुणोत्पादक दीन स्वर से मणि बोली "जो कुछ आप कह रहे हैं वह सच है।"

"क्या ?"

"सृष्टिक्रम से देखा जाय तो प्रभु ने हम दोनों को एक दूसरे के लिए ही उत्पन्न किया है। यदि आज हम दोनों का विवाह हुआ होता तो कितना आनन्दमय जीवन होता ?"

"इसी से मैं कह रहा हूँ मणि ! इसीसे कहता हूँ।"

"मैं भी इसी से कहती हूँ। ऐसी सरस युगल मूर्ति,—ऐसा रसिक, समझदार वर-कन्या की विषय-वासना को वेदी पर बलि चढ़ा दी जाय ? यह विचार मेरे मन में बैठता नहीं बल्कि उसे दग्ध कर रहा है।"

"अपने विचार प्रकट करने की तुम्हारी रीति ही कुछ विचित्र है !"

"जी हाँ। अनंत काल की सीमा पर पहुँचने तक हम अर्द्धांग बने रहेंगे—किस बात में ? विषय-तृप्ति में ? मुचकुन्द, आपकी विद्वत्ता और मेरे अनुभवों का क्या यही अंतिम परिणाम होगा कि संसार की दृष्टि में मैं पतिता समझी जाऊँ और आप लंपट गिने जायँ ? ऐसा ख्याल भी भीषण है ! भयङ्कर है !" काँपती हुई आवाज में मणि बोली।

"तब किया क्या जाय ? मणि ! बिलग होकर रहा कैसे जायगा ?"

"एक मार्ग है।"

"क्या ?"

"विकट है—पर है। मैं आपके साथ रहूँगी—आपकी सेवा करूँगी—जब तक काशी जीवित रहेगी तब तक, शुद्ध और

सात्विक प्रेम से।"

"मैं भी तो यही कहता हूँ।"

"नहीं, आप जाकर काशी को ले आवें।"

मुचकुन्द पुनः चौंका—"काशी!"

"आप अपने आदर्श का पालन करें, मैं अपना आदर्श पालन करूंगी। मुचकुन्द! मैंने लंपटों को, बड़े बड़े ढोंगी महाराजों को, सुधारकों को देखा है—मैं आपको सबसे निराला देखना चाहती हूँ।"

"किस प्रकार?"

"अपने त्याग से, अपनी स्वाधीनता से निराला, पवित्र और अपूर्व बनकर। मैं आपके मनुष्य-स्वरूप को चाहती हूँ, क्या देववत् पूजा करने नहीं दोगे? बस इतना कर दो। इस अभाव को सहन कर, मेरी उपस्थिति में ही, काशी को पत्नी-परायण स्वामी का सुख अर्पित करो। वह विचारी मूर्ख है पर है तो मनुष्य।"

मुचकुन्द ने एक गहरी सांस ली। उसने सिर उठा कर देखा, उसकी आँखें चमक उठीं, उसने दाँत पीस कर मणि का दोनों हाथ पकड़ लिया। मणि भी समझ गई—सचेत हो गई—उसकी आँखों में, चेहरे पर भव्यता छा गई।

"मुचकुन्द! आखिर यही निर्णय रहा! लो मैं खड़ी हूँ—आपकी सेवा में हाजिर हूँ;—पर याद रखना कल सवेरे एक दूसरे के सामने अथवा मृत भावना के सामने देखने योग्य हम दोनों नहीं रह जायँगे।" मणि की सात्विक, तेजस्वी आवाज गूँज उठी। क्षण भर भयङ्कर शांति विराजमान रही, मणि निश्चल गौरव की अवतार बनी खड़ी रही।

मुचकुन्द ने मणि का हाथ छोड़ दिया। उसकी आँखें डब-डबा आईं। वह बैठ गया।

"मणि ? तू ईश्वर का कोई अवतार है" वह बोला। उसकी मदांधता ज्वर के समान उतर गई थी। मणि उसके पास बैठ गई और अवर्णननीय स्नेह से उसका हाथ अपने हाथ में लेकर दबाते हुए बोली—मुचकुन्द ! उस दिन आपने कहा था आज मैं कहती हूँ: 'इसी प्रकार यदि प्रभु रहने दे तो स्वर्ग की भी इच्छा इसके सामने तुच्छ है ?'

× × × ×

दूसरे दिन मुचकुन्द काशी के बुलाने को लिए गाँव चला गया।

उपसंहार

बम्बई के एक छोटे पर स्वच्छ, हवादार मकान में मुचकुन्द, मोघाराम, मणि और काशी सब एक साथ रहने लगे। काशी का मणि के प्रति द्वेष क्रमशः कम होते होते निर्मूल हो गया।

दिन पर दिन, महीने पर महीना और वर्ष पर वर्ष बीतने लगे; मुचकुन्द और मणि दोनों एक दूसरे के साथ रहते थे। एक दूसरे के हृदय में निवास करते थे—फिर भी उनमें कोसों का अन्तर था। एक साथ हँसना, उठना-बैठना, विचार-विनिमय करना, कभी-कभी एक दूसरे के हाथ को स्पर्श करना—इतना ही उनके जीवन का आनन्द था। वे सुखी दिखाई देते थे, तरंगे शांत पड़ गई थीं; पर उनके जीवन में करुण-रस का स्वर बजना प्रारम्भ हो गया था।

चार वर्ष बाद एकाएक काशी बीमार पड़ी, फिर उठी नहीं; परलोक सिधार गई। मुचकुन्द और मणि दोनों रोए, पर साथ ही उन्हें सुख-स्वप्न दिखाई पड़ने लगे; कर्तव्यपरायणता का तप फलीभूत हुआ।

मणि और मुचकुन्द का विवाह हो गया। लोगों ने विधवा-विवाह के विरुद्ध बहुत वितंडावाद खड़ा किया। पुराने विचार वाले मोघाराम ने दोनों को आशीर्वाद दिया। उसने दोनों के जीवन को देखा था, दोनों का मूल्य आंका था। दोनों को वह अपने मन में प्रभु का अवतार मानता था।

× × × ×

कितनी ही मणियाँ, कितने ही मुचकुन्द असमान जोड़े के कारण समाज द्वारा लादे हुए अत्याचार को सहन करते हुए, नरक के समान संसार में कटु अनुभव करते हुए जीवन व्यतीत करते हैं! इसमें दोष किसका? यह किसका अभिशाप?

॥ समाप्त ॥

चुनी हुई पुस्तकें

उपन्यास		स्त्रियोपयोगी	
अभिशाप (के० एम० मुंशी)	५)	आपकी पत्नी	३)
प्यासी तलवार	२)	भाभी के पत्र	२)
प्यासी आँखें	२॥)	अभागे दम्पति	२)
त्याग	३॥)	सुहाग रात की कहानियाँ	३)
चन्द्रनाथ ,,	१॥)	पाक चन्द्रिका	६)
श्रीकान्त ,,	६)	सुखी जीवन	१)
बिन्दो का लल्ला ,,	१॥)	महिलाओं से (म० गांधी)	३)
बड़ी दीदी ,,	॥)	नारी धर्म शिक्षा	१॥)
मझली दीदी ,,	१॥)	**युवकोपयोगी**	
नाव दुर्घटना (टैगोर)	४)	बन्दी की चेतना	४॥)
त्याग का मूल्य ,,	५)	नव भारत	५)
गुरु-घण्टाल	३)	खण्डित भारत	८)
पूर्णिमा	३)	समाजवाद (संपूर्णानन्द)	२)
वे तीनों	३)	नेताजी सुभाष	३)
संसार की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ	३)	नेताजी	२)
कपालकुण्डला (बंकिम)	१)	झांसी की रानी	३।)
दुर्गेशनंदिनी ,,	१)	आकर्षण शक्ति (गुलाब)	३)
सीताराम ,,	१)	नयी रोशनी ,,	२॥)
हाहाकार	२)	स्त्री-पुरुष ,,	३॥)
दिल की आग	६)	गुरु-शिष्य-संवाद	३)
साहसी राजपूत	१॥)	लफ्टंट पिगसनकी डायरी	३॥)
जवानी का नशा	३।)	टत्राटन	१॥)

मँगाने का पता—श्रीनाथ ब्रदर्स, बनारस ।